आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में अमरता की समस्या

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत)

शोध प्रबन्ध

प्रस्तुति

श्रीमती सीमा श्रीवास्तव
(प्रवक्ता दर्शनशास्त्र विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
अगस्त्यमुनि रूद्रप्रयाग, उत्तरांचल)

निर्देशक

श्री० श्यामकिशोर सेठ
अवकाश प्राप्त रीडर, दर्शनशास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

दर्शनशास्त्र विभाग,

इलाहाबाद विश्व विद्यालय, इलाहाबाद

2001

विषयानुक्रमांक सारणी

प्राक्कथन

मृत्यु मानव जीवन का अनिवार्य और कटु सत्य है, जिसने आदिकाल से ही मानव जीवन को ग्रसित किया हुआ है। यही कारण है कि मृत्यु का भय हम सभी में विद्यमान रहता है और विश्व की प्रत्येक चेतन सत्ता, चाहे वे छोटे से कीट पतंग हों या विश्व का सर्वाधिक विकसित और बुद्धिशील प्राणी मनुष्य, सभी मृत्यु से बचाव का प्रयास करते हैं। लेकिन हम यह जानते हैं कि अंततः मनुष्य तथा अन्य चेतन सताओं द्वारा किया गया यह प्रयास विफल होता है।

मृत्यु के इस आदिकालीन भय के साथ ही अमरता विषयक विचार भी जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि मानवीय सभ्यता के इतिहास में तथा दार्शनिक जगत में हमें प्राचीन काल से ही अमरता की समस्या पर विचार करने वाले दार्शनिक दिखलाई पड़ने लगते हैं। साथ ही हम देखते हैं कि विभिन्न प्रचलित धर्मों में भी अमरता की समस्या को केन्द्रीय स्थान दिया गया है।

इस प्रकार यदि अमरता की समस्या को सार्वभौमिक और सार्वकालिक कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। अतः मुझे लगता है कि अमरता के विषय पर शोध करके मैंने एक सार्वभौमिक समस्या पर चिंतन किया है। यद्यपि मेरे शोध प्रबन्ध का विषय "आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में अमरता की समस्या" है। फिर भी मैंने पाश्चात्य जगत में अमरता की समस्या पर विचार करने वाले सभी दार्शनिकों के विचारों को प्रस्तुत करने का हर संभव प्रयत्न किया है। साथ ही कहीं-कहीं अमरता का भारतीय दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त विश्व के प्रचलित धर्मों में अमरता की स्थिति को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

इस शोध प्रबन्ध को मैं अपने पिता स्व० श्री संगम लाल (भू० पू० आयकर अधिकारी) को समर्पित करती हूँ, जिन्होंने मेरे चरित्र निर्माण और भविष्य निर्माण में मुख्य भूमिका निभायी है तथा जिनके संस्कार जीवन पर्यन्त मेरा मार्ग दर्शन करते रहेंगे।

अपने इस शोध प्रबन्ध के लिए मैं सर्वप्रथम अपने निर्देशक, श्री श्याम किशोर सेठ (अवकाश प्राप्त रीडर, इला० वि० वि०, इलाहाबाद) के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करना चाहूँगी, जिन्होंने अत्यन्त विषम परिस्थितियों में भी अपने सानिध्य और निर्देशन की क्रमबद्धता को निरंतर बनाए रखा। आपके शिष्यत्व को प्राप्त कर मुझे अध्ययन-अध्यापन से संबंधित बहुत से नवीन अनुभव प्राप्त हुए जिन्हें शब्दों में व्यक्त करना संभवन नहीं है।

अपने शोध कार्य को पूरा करने में मुझे डॉ० मृदुलारविप्रकाश, विभागाध्यक्षा, दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद का भी सहयोग प्राप्त हुआ जिनके प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ।

साथ ही अपने शोध प्रबन्ध के लिए मैं भारतीय दार्शनिक अनुसन्धान परिषद् लखनऊ तथा उसके कर्मचारियों को भी धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ, जहाँ से मुझे आवश्यक अध्ययन सामग्री उपलब्ध हुई। लेखन सामग्री के पुनर्लेखन हेतु, मैं श्री रतन खरे, जय दुर्गे माँ कम्प्यूटर प्वाइंट, कटरा इलाहाबाद एवं उनके सहयोगियों को साधुवाद देती हूँ।

शोध कार्य को पूरा करने में मैं अपनी माता श्रीमती सुशीला श्रीवास्तव, सास श्रीमती माधुरी श्रीवास्तव और ससुर श्री बिमल कृष्ण श्रीवास्तव जी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किए बिना नहीं रह सकती, जिनके आशीर्वाद और निरन्तर सहयोग के बिना यह कार्य पूर्ण होना असंभव था।

इसके अतिरिक्त में अपनी दस माह की बेटी बेबी खुशी (आयुषी) के प्रति आभार व्यक्त करने के साथ ही उससे क्षमा भी चाहती हँ, क्योंकि शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने की अवधि में मैं उसके प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह पूर्ण रूप से न कर सकी।

साथ ही मैं अपने परिवार के सभी सदस्यो के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मुझे अपना सहयोग प्रदान किया।

अंत में, मैं अपने पति श्री अम्बुज कुमार के प्रति अपना आभार और धन्यवाद व्यक्त करती हूँ, जिन्होनें इस शोध प्रबन्ध के प्रारम्भ से अंत तक प्रत्येक स्तर पर मेरा मार्गदर्शन किया तथा हर संभव सहयोग प्रदान किया। उनके अमूल्य योगदान के बिना इस शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकती थी।

Seema Srivastava

दिनांक : 21.12.2001

श्रीमती सीमा श्रीवास्तव

(प्रवक्ता दर्शनशास्त्र

राज० स्ना० महावि० अगस्त्यमुनि, रूद्रप्रयाग,

उत्तरांचल)

अध्याय-एक

अमरता का विचार एक परिचय

१.१ भूमिका

आज के वैज्ञानिक युग में लोग जीवन के सभी सुखों का आनन्द ले रहे हैं। प्रत्येक चीज का सर्वोत्तम उपभोग कर रहे हैं, साथ ही इस विषय में भी चिन्तित प्रतीत होते हैं कि मृत्यु के पश्चात् हमारा क्या होगा? पृथ्वी पर छोटे से जीवनकाल में हमारी कुछ आकांक्षाएं और अपेक्षाएं अधूरी रह जाती हैं। बार-बार यह प्रश्न मन में उठता है कि क्यों मानव इतने कम समय के लिए जीवित रहता है, अपनी कुछ इच्छाएं पूरी करता है, उत्कृष्ट कार्य करता है, अपनी क्षमताओं का उत्तम प्रदर्शन करता है और अचानक ही अपने कार्य और योजनाओं को अधूरा छोड़कर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है? कोई नहीं चाहता कि उसका अंत जल्दी हो। ऐसा कहा जाता है कि ''कला दीर्घ है और जीवन अल्प है'' अपने अल्पजीवन काल में कोई भी व्यक्ति न तो अपनी समस्त इच्छाएं पूरी कर सकता है, न ही अपने आदर्शों को प्राप्त कर सकता है। 'अमरता' संपूर्ण मानवता की एक प्रबल और सदा बनी रहने वाली आकांक्षा है। अतः वैज्ञानिकों, दार्शनिकों एवं धर्मशास्त्रियों को परस्पर मिलकर मृत्यु के रहस्य को सुलझाकर अमरता के लिए स्थान सुरक्षित करना होगा।

सामान्य तौर पर आत्मा की अमरता से हमारा अभिप्राय व्यक्ति के अस्तित्व के सदैव बने रहने से है। जिससे में अपने जीवन में सभी भौतिक सुखों का उपभोग कर सके और अपने आदर्शों को प्राप्त कर सकें।

प्रश्न उठता है कि यदि आत्मा व्यक्ति के रूप में सदैव बनी रहती है तो मृत्यु के पश्चात उसके अस्तित्व का रूप क्या होगा? क्या उसकी अन्तिम परिणति होगी? इस प्रश्न का उत्तर देना सामान्य मानव के लिए कठिन है। यहां तक कि आधुनिक विज्ञान भी इस विषय में हमारी कोई विशेष मदद नहीं कर पाता।

'अमरता' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। किन्तु 'आत्मा की अमरता' का प्रयोग जिस अर्थ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है वह है 'मानव के व्यक्तित्व की सम्पन्नता की अनन्त संभावनाओं के साथ सदैव व्यक्तिगत अस्तित्व में बने रहना।' इसका अभिप्राय यह है कि मानव का व्यक्तित्व, अपने वर्तमान चारित्रिक विशेषताओं (Character Complex) तथा सिद्धान्त रूप में स्मृति के साथ, मृत्यु के पश्चात भी बना रहे।

चूँकि 'अमरता' शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है, अतः हमें उसके विभिन्न अर्थों का एक दूसरे से अंतर करना होगा। अधोलिखित सारणी अमरता के विभिन्न अवधारणाओं की एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करती है जिससे अमरता के भिन्न-भिन्न अर्थों को स्पष्ट रूप से जाना जा सके।

अमरता (Immortality)
Personal
व्यक्तित्व पूर्ण
Non Personal
व्यक्तित्व रहित
जैविक
(Genetic)
सामाजिक
(Social)
निर्वैयक्तिक
(Impersonal)
(1)
शारीरिक
स्थूल
सूक्ष्म
अशारिक
(2)
सीमित (Conditional)
असीमित (Un Conditional)
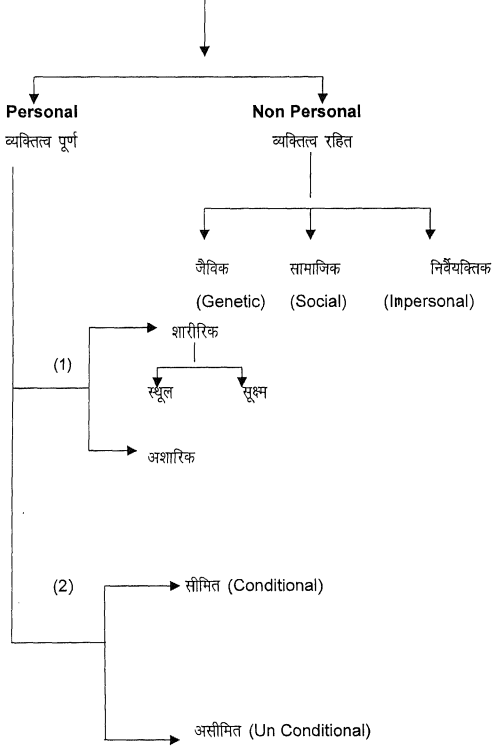
प्रारंभिक वर्गीकरण में अमरता का अर्थ प्रथमतः मानव का उसके व्यक्तित्व की अनिवार्य विशेषताओं (Characterstics) के साथ मृत्यु के बाद भी अस्तित्व में बने रहना है जिन विशेषताओं द्वारा उसको मौलिक रूप में पहचाना जा सके। यह वैयक्तिक (व्यक्तित्वपूर्ण) अमरता है। दूसरी अमरता का अभिप्राय व्यक्ति के रूप में जीवित बने रहना (Survival) नहीं वरन् व्यक्ति के किसी विशेष भाग या पक्ष का बिना किसी वैयक्तिक अनन्यता (Identity) के बने रहना है। इसे व्यक्तित्वरहित अमरता कहा जाता है।

१.२ व्यक्तित्वरहित अमरता

सर्वप्रथम हम व्यक्तित्वरहित अमरता पर विचार करेंगे। कुछ विचारकों का मानना है कि मृत्यु के समय शरीर के समाप्त हो जाने के बाद व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं रहता। फिर भी इन विचारकों ने अमरता के सिद्धान्त को एक नए ढंग से स्वीकार किया है। इसे व्यक्तित्वरहित अमरता कहा जाता है। व्यक्तित्वरहित अमरता को पुनः निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।

व्यक्तित्वरहित अमरता का प्रथम प्रकार जैविक अमरता का है। इसके अनुसार व्यक्ति, मृत्यु के समय शरीर नष्ट होने के पश्चात स्वयं तो नष्ट हो जाता है किन्तु अपने बच्चों के रूप में वह अमर रहता है। इस प्रकार व्यक्ति स्वयं व्यक्ति के रूप में अस्तित्व में न होकर अप्रत्यक्ष रूप से अपने बच्चों के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी अमर रहता है। अमरता का यह प्रकार मानव

जाति से भिन्न जातियों में भी संभव है। इसलिए इस प्रकार की अमरता पशुओं को भी प्राप्त होगी।

अमरता की इस अवधारणा में कुछ कठिनाइयां हैं। यह सही है कि यद्यपि बच्चे अपने माता-पिता से साम्यता रखते हैं फिर भी उनमें बहुत सी विषमताएं भी होती हैं। इस कारण बच्चों के रूप में किसी व्यक्ति के बने रहने का कोई विशेष अर्थ नहीं रह जाता। फिर इस विचार से जो अविवाहित है या जिनके बच्चे नहीं है वह अमरत्व प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

पुनः जब तक व्यक्ति स्वयं व्यक्तित्व की कुछ अनिवार्य विशेषताओं के साथ अस्तित्व में न रहे तब तक उसे कोई मनोवैज्ञानिक संतोष प्राप्त नहीं होता है। जैविक अमरता के विचार में एक और कठिनाई यह भी है कि यह मानव में मृत्यु के प्राकृतिक भय को समाप्त नहीं करता जिसमें वो अपनी सभी अपेक्षाएं और आकांक्षाएं अपूर्ण देखता है।

इस प्रकार जैविक अमरता की अवधारणा पूरी तरह असंतोषजनक है।

व्यक्तित्वरहित अमरता में दूसरे प्रकार की अमरता सामाजिक अमरता है। सामाजिक अमरता को स्वीकार करने वाले विचारकों का मानना है कि मृत्यु के साथ व्यक्ति का शरीर भले ही नष्ट हो जाता है, फिर भी व्यक्ति अपने विचारों, कार्यों, आदि के प्रभावों नाम और प्रसिद्धि के द्वारा समाज में जीवित रहता है। कहा जा सकता है कि व्यक्ति आने वाली पीढ़ियों के मन में या सामाजिक परिवर्तनों में बना रहता है। इस प्रकार वह अमर रहता है।

उदाहरण के लिए, यद्यपि प्लेटो आज सशरीर हमारे बीच नहीं है फिर भी उनके विचार आज भी हमारे विचारों और जीवन को प्रभावित करते हैं। और इस रूप में वह हमारे लिये जीवित है। संसार में ऐसे अनेकों महान व्यक्तित्व हुए हैं जिन्होंने इस अर्थ में सामाजिक अमरता प्राप्त की है। बुद्ध और महावीर ईसापूर्व शताब्दियों के दार्शनिक विचारक थे, किन्तु उनके सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त और विचार आज भी, न केवल बौद्ध और जैन सम्प्रदायों में वरन् समस्त मानवता के बीच अमर हैं। दूसरी तरफ साहित्य के क्षेत्र में कालिदास और शेक्सपीयर जैसे व्यक्तित्व अपनी अमरकृतियों, 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' और 'जूलियट सीजर' के माध्यम से मृत्यु के पश्चात् आज भी हमारे बीच हैं। आज के युग में इन सबके अतिरिक्त सहस्रशताब्दी के व्यक्तित्व महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह के विचारों की प्रासंगिकता सार्वभौम और शाश्वत है। यही कारण है, अनेक व्यक्ति आज के गाँधी नामित किए जा रहे हैं जैसे नेल्सन मण्डेला अफ्रीका के, आंगसांग सू ची म्यानमार की मार्टिन लूथर किंग अमरीका के आदि।

निःसंदेह सामाजिक अमरता मानवीय मूल्यों को समृद्ध करने में अपनी भूमिका का निर्वाह करती है तथापि यह वैयक्तिक अमरता का अच्छा विकल्प नहीं है। सामाजिक अमरता बहुत कम ही लोग अर्जित कर सकेंगे, क्योंकि इस प्रकार के विचारों, सिद्धान्तों को या अमर कृतियों को देने वाले बहुत कम ही लोग होते हैं । फिर, बहुत बार यह सामाजिक अमरता शाश्वत नहीं होती, समय के साथ-साथ विचार बदलते भी रहते हैं। पुनः सामाजिक अमरता भी मानवीय मन में मृत्यु के भय को कम करने में अक्षम है जिस भय में वह अपनी आकांक्षाएं पूरी न होना देखता है।

व्यक्तित्व रहित अमरता का एक भिन्न प्रकार निर्वैयक्तिक अमरता है। निर्वैयक्तिक अमरता में दो प्रकार के विचार समाहित किए जाते हैं। पहला विचार यह है कि व्यक्ति अपने व्यक्तित्व और अहं को (कठिन प्रयास द्वारा अपने में आध्यात्मिक गुणों का विकास करके) किसी अंतिम सत्ता या ब्रह्म में विलीन कर देता है और चूँकि वह अंतिम सत्ता अमर है, इस रूप में वह व्यक्ति भी अमर हो जाता है। इस प्रकार की अमरता का एक प्रबल दृष्टान्त शंकराचार्य के दर्शन में देखने को मिलता है। शंकराचार्य ने अपने विचार को श्लोकार्द्ध में ही व्यक्त कर दिया है - ''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैव नापरः''[1] अर्थात् ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या है तथा जीव (आत्मा) और ब्रह्म एक ही है।

सत् का लक्षण आचार्य शंकर ने तीन प्रकार से दिया है-

''त्रिकालाऽबाध्यत्वं सत्त्वम्'' अर्थात् जो तीनों कालों अर्थात् भूत वर्तमान और भविष्य तीनों में बाधित नहीं होता वह सत् है।

''यद्विषया बुद्धिर्नव्यभिचरति तत् सत्''[2] अर्थात् जिसके विषय में बुद्धि में व्यभिचार न हो अथवा जिसके विषय में बुद्धि सदैव एक सी बनी रहे वह सत् है।''

1 ब्रह्मज्ञानावलीमाला, जगद्गुरु शंकराचार्य-२०

2. शंकर भाष्य १ : १, ४ तैत्तीय उपनिषद २ : १, गीता भाष्य, १६

"एकरूपेण हि अवस्थितोयोऽर्थः स परमार्थः"[3] जो सदैव एक ही रूप में रहता है वह ही परमार्थ है अथवा सत् है।

इन तीनों ही कसौटियों पर खरी उतरने वाली एक मात्र सत्ता ब्रह्म ही है। यही कारण है कि शंकराचार्य ने ब्रह्म को एकमात्र सत् कहा है और सधे अर्थ में मात्र उसे ही अमर कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त शंकराचार्य ने सभी प्रकट और संभाव्य विषयों को अप्रकट असत् (बंध्यापुत्र) से पृथक करके तीन प्रकार की सत्ताओं (कोटियों) में विभाजित किय है-

प्रतिभासिक सत्ता - वे विषय जो क्षण भर के लिए प्रकट होते हैं (जैसे स्वप्न या भ्रम) किन्तु स्वाभाविक जाग्रत अवस्था के अनुभवों से बाधित होते हैं।

व्यवहारिक सत्ता - वे विषय जो स्वाभाविक जाग्रत अवस्था में प्रकट होते हैं (जिसे परिवर्तनशील घट, पट आदि जो हमारे दैनिक जीवन और व्यवहार के विषय है) परन्तु जो तार्किक दृष्टि के विरोधात्मक या बाधित होने की संभावना रहने के कारण पूर्णतः सत्य नहीं कहे आ सकते।

पारमार्थिक सत्ता - शुद्ध सत्ता जो सभी प्रतीतियों में प्रकट होती है और जो न बाधित होती है न बाधित होती है और न जिसके बाधित होने की कल्पना ही की जा सकती है।

---

3. ब्रह्म सूत्र भाष्य, शंकराचार्य, २.१.६१

जिसका कारण माया है। माया ब्रह्म की शक्ति है। उसके उस माया के कारण ही ब्रह्म विभिन्न रूपों में आभासित होता है। जीव इसी माया अथवा अविधा के कारण अज्ञानता से ग्रसित रहता है और अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात् ब्रहमत्व को नहीं जान पाता है। इसी को शंकराचार्य बन्धन की अवस्था कहते हैं जिसका मुख्य कारण अज्ञान है जब जीव, माया और अविधा बाधित हो जाती है तब जीव को अपने ब्रहमत्व का ज्ञान होता है।, और तब उसे आवागमन के बन्धन चक्र से मुक्ति मिल जाती है। अर्थात् शंकराचार्य अज्ञान के बन्धन तथा ज्ञान से मोक्ष को संभव मानते हैं, जिसके लिए साधन चतुष्टय (नित्यानित्य वस्तु विवेक, इहामुत्रार्थभोगविराग, शमदमदिसाधन सम्पत् एवं मुमुक्षुत्वं) के अतिरिक्त श्रवण, मनन और निदिध्यासन को आवश्यक मानते है, जिसके पश्चात् - 'तत्त्वमसि' अर्थात् 'वह तुम ही हो' इस तथ्य का ज्ञान होता है।

शंकराचार्य का मानना है कि आत्मा, मोक्षावस्था में ब्रम्ह में उसी प्रकार विलीन हो जाती

है जिस प्रकार जल की कोई बूँद सागर में विलीन हो जाती है। अर्थात् शंकराचार्य के मत में मोक्षावस्था में व्यक्तित्व का पूर्णतः विनाश हो जाता है। इसी कारण शंकराचार्य के मत की समीक्षा करते हुए कहा जाता है कि यद्यपि यहाँ मोक्ष की भावात्मक व्याख्या करते हुए आनन्द को स्वीकार किया है किन्तु व्यक्तित्व समाप्त हो जाने से आनन्द की अनुभूति कौन करता है? क्योंकि ब्रम्ह तो पहले से ही आनन्दमय है और जीव ब्रम्ह में विलीन हो जाता है। अमरत्व ब्रम्ह की विशेषता है न कि व्यक्ति की।

निर्वैयक्तिक अमरता में दूसरा विचार इस प्रकार है कि मानव इस रूप में अमर है कि वह ऐसे मूल्यों को स्थापित करता है या अनुभव करता है जो शाश्वत है जैसे सत्य, शुभ, सुंदर आदि। व्यक्ति अपने प्रयासों द्वारा स्वयं में विशिष्ट गुणों का विकास करके शाश्वत मूल्यों को आत्मसात कर लेता है और इन शाश्वत मूल्यों में भागीदार के रूप में वह अमर हो जाता है। निर्वैयक्तिक अमरता की इस अवधारणा में मूल्यपरक गुणात्मक जीवन दीर्घ जीवन (Quantilative) से अधिक महत्वपूर्ण है। यहां जीवन का मापदण्ड आदर्श की मानव द्वारा किये गए कार्यों, उसके द्वारा स्थापित मूल्यों एवं प्राप्त किए गए आदर्शों के रूप में होता है न कि इस रूप में कि वह कितने वर्ष जीवित रहा।

निर्वैयक्तिक अमरता सामाजिक अमरता से भिन्न है। क्योंकि सामाजिक अमरता में लगातार सामाजिक प्रभाव बना रहना चाहिए और यह अमरता मृत्यु के बाद प्राप्त होती है जबकि निर्वैयक्तिक अमरता गुणात्मक और मूल्यात्मक अमरता है जिसे मृत्यु से पूर्व ही पूर्णता की स्थिति में प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ व्यक्ति शाश्वत मूल्यों में भागीदार बनता है जबकि किसी अन्य को इसका ज्ञान भी नहीं होता।

उदाहरण के लिए कला, विज्ञान, साहित्य, दर्शन, धर्म आदि के क्षेत्र के किसी भी महान कार्य के सम्पन्न होने में समय लगता है किन्तु एक बार स्थापित होने के बाद यह शाश्वत हो जाता है। कोई भी इसके स्थापित होने में लगे समय के विषय में प्रश्न नहीं करता। जैसे कला क्षेत्र की महान कृति देश, काल, व्यक्ति से परे होकर शाश्वत बन जाती है जिसका सभी लोग आनन्द ले सकते हैं।

गैलीलियो, लियोनार्डो, आइन्सटीन, शंकराचार्य, गांधी आदि महान हस्तियों ने अपने समय की सांस्कृतिक विरासत से निश्चित रूप से लाभ ग्रहण किया किन्तु अपने योगदान द्वारा उसे समृद्ध करने का कार्य भी किया। न्यूटन न केवल गैलीलियो और केपलर के अनुसन्धानों से लाभान्वित ही हुआ वरन् उसने गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की रचना करके अपने युग के वैज्ञानिक ज्ञान को और समृद्ध किया। इस प्रकार वह शाश्वत वैज्ञानिक मूल्यों के निर्माण का एक साधन बना। इस प्रकार न्यूटन ने वैयक्तिक अमरता तो प्राप्त नहीं की फिर भी उसे अमर इस अर्थ में स्वीकार किया जाता है कि वह शाश्वत मूल्यों के निर्माण और उपभोग (आनन्द) में भागीदार बना। ऐसे अमरत्व का भागीदार कोई भी व्यक्ति, विज्ञान या कला, साहित्य आदि क्षेत्रों के शाश्वत मूल्यों के सृजन या अनुभव के माध्यम से हो सकता है।

किन्तु किसी भी प्रकार की व्यक्तित्व रहित अमरता सामान्य जन को पूर्ण संतोष नहीं पदान कर पाती। यहां तक कि निर्वैयक्तिक आमरता में भी, जहाँ व्यक्ति का व्यक्तित्व ही परमसत्ता में विलीन हो जाता है, अमरता का विचार प्रासंगिकता खो देता है। क्योंकि जब व्यक्तित्व ही नहीं होगा तो अमरत्व किसे प्राप्त होगा सामान्य व्यक्ति अपने लिए अमरता चाहता है। पुनः जहां तक शाश्वत मूल्यों की स्थापना या उपभोग का प्रश्न है तो यह भी सामान्य जन की पहुंच से परे है।

अतः व्यक्तित्वरहित अमरता की कठिनाइयों को देखते हुए हम अपना ध्यान व्यक्तित्वपूर्ण अमरता पर केन्द्रित करते हैं जो सामान्य जन की आकांक्षाओं के अधिक अनुरूप होगी।

१.३ व्यक्तित्वपूर्ण अमरता

व्यक्तित्वपूर्ण अमरता की धारणा में व्यक्ति मृत्यु के पश्चात भी अस्तित्व में रहता है इस रूप में कि उसकी वैयक्तिकता अक्षुण्ण रहती है। इस का विभाजन शारीरिक एवं अशारीरिक अमरता की धारणाओं में किया जाता है। इन दोनो धारणाओं में कुछ महत्वपूर्ण भेद है, लेकिन इनकी यह सामान्य मान्यता है कि मानव दो भिन्न कारकों शरीर और आत्मा, प्रकृति एवं पुरूष से मिलकर बना है । जहां शरीर मूर्त हैं वहीं आत्मा अमूर्त है।

अशारीरिक व्यक्तित्वपूर्ण अमरता में मृत्यु के समय शरीर का नाश हो जाता है, किन्तु आत्मा का अस्तित्व विशुद्ध आध्यत्मिक रूप में मृत्यु के बाद भी बना रहता है। आत्मा अविनाशी है इसलिए इसका नाश नहीं किया जा सकताः। [4]

न जायते म्रियते वा कदाचिन्, नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणों न हन्यते हन्यमाने शरीर।। (गीता २/२०)

अर्थात् यह आत्मा कभी भी जन्म नहीं लेता और न ही मृत्यु को प्राप्त होता है न ही यह होकर फिर होने वाला ही है। जन्म न लेने वाला नित्य, शाश्वत, पुरातन यह आत्मा शरीर के मारे जाने पर भी नहीं मरता। [5]

4 श्री मद्भगवद्गीता , II, 20
5 श्री मद्भगवद्गीता , II, 24

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोश्य एव च।

नित्यं सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।। (गीता २/२४)

यह आत्मा न काटा जाने वाला है, न जलाया जाने वाला न गीला किया जाने वाला और न सुखाया जाने वाला ही है। यह आत्मा, नित्य है, सब पदार्थों में व्याप्त है स्थिर रहने वाला है अचल है और सनातन है।

प्लेटो के दर्शन में भी अशारीरिक व्यक्तित्वपूर्ण अमरता का विचार मिलता है। आत्मा व शरीर के विषय में चर्चा करते समय प्लेटो ने शरीर की अपेक्षा आत्मा को अधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया है और साथ ही शरीर को वह परमतत्व के साक्षात्कार में बाधक भी मानता है। प्लेटो का कहना है कि शरीर का संबंध स्थूल ज्ञानेन्द्रियों से होता है तथा इसके कारण ही हम विभिन्न वासनाओं के वशीभूत होते हुए मिथ्या को यथार्थ मानकर आचरण करते रहते हैं। 'फीडो' नामक संवाद में प्लेटो ने आरम्भ से अन्त तक इस तथ्य पर बल दिया है कि शरीर आत्मा के लिए भार के समान और आत्मा को बुराई की ओर प्रवृत्त करने वाला तथा ज्ञान की प्राप्ति में बाधक बनाया गया है। इसी कारण दार्शनिक अपनी आत्मा को शरीर के सम्पर्क से सामान्य जनों की अपेक्षा पृथक कर लेता है। प्लेटो ने तो शरीर को आत्मा का बंदीगृह तक कह दिया है और साथ ही यह भी कहा है कि इसी कारण दार्शनिक मृत्यु का स्वागत करता है ओर शरीर से छुटकारा पाते समय प्रसन्न रहता है। प्लेटो का मानना है कि मृत्यु के पश्चात् आत्मा विशुद्ध रूप

में (अशरीरी) शाश्वत बनी रहती है। अतः प्लेटो ने अशरीरी व्यक्तित्वपूर्ण अमरता को स्वीकार किया है।

आत्मा की अमरता में विश्वास प्रायः मानव की द्वैतवादी व्याख्या पर आधारित है जिसके अनुसार मानव भौतिक शरीर और आत्मा से मिलकर बना है और अशारीरिक अमरता की अवधारणा में अमरता इसी विशुद्ध आत्मा की अमरता होगी, शरीर की नहीं। लेकिन यहां हम किसी मानव की अमरता की बात नहीं कर सकते जब तक कि हम मानव के पूर्ण व्यक्तित्व निर्माण में उसकी आत्मा को उसके शरीर के साथ बराबर का साथी मानेंगे (क्योंकि इस स्थिति में व्यक्ति की अमरता उसके केवल आधे भाग की अमरता की होगी) अतः यह आवश्यक है कि केवल आत्मा को वास्तविक मानव (Real Person) मानना चाहिए शरीर को कदापि नहीं। दूसरे शब्दों में, आत्मा वास्तविक व्यक्ति के रूप में पहचानी जानी चाहिए और व्यक्तित्वपूर्ण अमरता इसी आत्मा की अमरता होगी। यह आत्मा इस संसार में शरीर से युक्त होती है लेकिन यह शरीर के बिना भी अस्तित्व में रह सकती है।

व्यक्ति की अशारीरिक अमरता को स्वीकार करने में कई कठिनाइयां आती हैं। अशरीरी आत्मा या व्यक्ति में ज्ञानेन्द्रियों और मष्तिष्क का अभाव होगा और ऐसी स्थिति में वह कोई अनुभव कैसे कर सकेगा, कैसे अपने अनुभव दूसरे तक पहुंचा सकेगा। इन सबसे बढ़कर मुख्य समस्या यथार्थ पहचान (Meaningful Identification) की होगी । कैसे हम एक अशरीरी आत्मा को व्यक्ति के रूप में पहचानेंगे? मानव का अस्तित्व ऐसा अस्तित्व है जिसमें वह क्रिया प्रतिक्रिया करता है। चलता है, दौड़ता, पढ़ता है, लिखता है, खेलता है, दूसरों को वैसा करते हुए

देखता है, एक दूसरे से लड़ता है, बात करता है, संगीत सुनता है, धुन बजाता है, शायद ही अशरीरी आत्मा में यह सब संभव हो। इसलिए ऐसी आत्मा को व्यक्ति मानना संदेहपूर्ण है। कठिनाई तब और बढ़ जाती है जब हम किसी अशरीरी आत्मा को किसी विशेष नाम के व्यक्ति के रूप में पहचानने का प्रयास करते हैं। यह पहचान (Identification) उस स्थिति में अनिवार्य हो जाती है जबकि अशरीरी आत्मा के अस्तित्व को मानव की व्यक्तित्वपूर्ण (वैयक्तिक) अमरता के लिए आवश्यक माना जाता है। कठिनाई यह है कि विशिष्ट मानव केवल शरीरी रूप में ही स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है।

अशारीरिक व्यक्तित्वपूर्ण अमरता की कठिनाइयों को देखते हुए कुछ धर्मों या दर्शनों में शारीरिक अमरता की अवधारणा को स्वीकार किया है। शारीरिक अमरता को स्वीकार करने वाले विचारकों का मानना है कि मृत्यु के पश्चात् भी अमर आत्मा किसी न किसी शरीर से जुड़ी रहती है। यह शरीर सूक्ष्म अथवा स्थूल किसी भी प्रकार का हो सकता है, जीवित अवस्था के भौतिक शरीर से भिन्न, जो स्पष्ट ही मृत्यु पर नष्ट हो जाता है।

पुनरुत्थान (Resurrection) का सिद्धान्त जो कि प्रायः यहूदी और ईसाई धर्म के विचारकों ने स्वीकार किया है स्थूल शारीरिक अमरता का एक अच्छा उदाहरण है। पुनरुत्थान का सिद्धान्त इस विचार पर आधारित है कि मृत्यु के समय व्यक्ति का शरीर समाप्त (विलीन) हो जाता है किन्तु न्याय दिवस (Day of Judgement) के दिन ईश्वर पुनः शरीर की सृष्टि करता है और पुनः व्यक्ति के अच्छे बुरे कर्मों के अनुसार उन्हें ईश्वर स्वर्ग या नरक में भेजता है। शुभ

कार्य करने वाले स्वर्ग का आनन्द लेते हैं जबकि अशुभ कार्य करने वाले नरक में अनन्त कष्टों को भोगते हैं।

प्रश्न उठता है कि पुनरुत्थान में यह जानने का हमारे पास क्या आधार है कि जिस व्यक्ति (शरीर) को पुनरुत्थान में ईश्वर ने सृष्ट किया वह वही मौलिक व्यक्ति है जिसकी मृत्यु हुई थी। परन्तु यह प्रश्न संत पॉल के विचारों के संदर्भ में ही उठता है। सामान्य ईसाई विचारकों के मत के संबंध में नहीं है। सेंट पॉल का मानना था कि पुनरुत्थान के बाद ईश्वर जिस शरीर का निर्माण करता है वह भौतिक न होकर आध्यात्मिक शरीर होता है। ऐसी स्थिति में 'पहचान' (Identification) एक समस्या है, किन्तु सामान्य धारणा में माना जाता है कि पुनरुत्थान के समय भी समान भौतिक शरीर की सृष्टि होती है इसलिए यहां 'पहचान' कोई समस्या नहीं है।

अब संक्षेप में हम पुनरुत्थान के आधार की चर्चा करेंगे। किस आधार पर अथवा क्यों यहूदी अथवा ईसाई विचारक मृत्यु के पश्चात् पुनरुत्थान को स्वीकार करते हैं। यहां दो संभाव्य आधार हैं- पहला, श्रुति पर आधारित है इन विचारकों का मानना है कि ईसाईयों के धार्मिक ग्रन्थ 'न्यू टेस्टामेंट ईश्वरीय वाक्य के तुल्य है। पुनरूत्थान की चर्चा यहूदियों के धार्मिक ग्रन्थ 'ओल्ड टेस्टामेंट' में भी की गई है।

दूसरा, तर्क पर आधारित है। इन विचारकों का तर्क इस प्रकार है कि ईश्वर दयालु है, प्रेमी है और सर्वशक्तिमान है। मानव की रचना उसका उद्देश्य है। ईश्वर मृत्यु से सीमित नहीं होता। वह हमें प्राकृतिक मृत्यु के बाद भी नियंत्रित करता है। यदि हम पुनरुत्थान को न स्वीकार

करें तो यह ईश्वर के प्रेमी स्वभाव (Loving Nature) के विपरीत होगा, क्योंकि प्रेमी ईश्वर कभी भी स्वरचित कृति मानव को नष्ट नहीं होने देगा।

अभी तक हमने स्थूल शारीरिक व्यक्तित्वपूर्ण अमरता के विषय में चर्चा की है और अब हम सूक्ष्म शारीरिक व्यक्तित्वपूर्ण अमरता पर विचार करेंगे। यह विचार प्रायः बहुत से भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में स्वीकार किया गया है। सूक्ष्म शारीरिक व्यक्तित्वपूर्ण अमरता का विचार पुनर्जन्म से संबंधित है जिसे अधिकांश भारतीय विचारक मानते हैं।

यहां तीन प्रकार के शरीर की चर्चा मिलती है जो आत्मा के साथ जुड़े रहते हैं- प्रथम स्थूल शरीर, द्वितीय सूक्ष्म शरीर, संस्कार शरीर अथवा लिंग शरीर और अंतिम कारण शरीर। जहाँ तक पुनर्जन्म (जो अमरता के विचार से जुड़ा हुआ है) का संबंध है हम अंतिम दो को एक साथ सूक्ष्म शरीर के रुप में लेते हैं। स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर में भेद है। स्थूल शरीर भौतिक है जिससे हम सभी परिचित है जिसका गर्भ धारण के साथ बनना आरंभ होता है और मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है। किन्तु सूक्ष्म शरीर मृत्यु के बाद भी जीवित रहता है जो अगले पुनर्जन्म और उसके भौतिक शरीर के विकास का कारण है। यह शरीर कहलाता है किन्तु यह सामान्यतः भौतिक ईकाई नहीं है, क्योंकि न तो यह हमारा भौतिक स्थान घेरता है न ही इसका कोई आकार है। यह भौतिक अथवा जड़ (Material) मात्र इस संदर्भ में है कि यहां चेतना का अभाव है। इसलिए इसे प्रकृति भी कहा गया है।

जहां तक पुनर्जन्म में सूक्ष्म शरीर की भूमिका का प्रश्न है लिंग शरीर किसी विशेष अर्थ में एक मानसिक ईकाई (Mental Entity) है जिसे परिवर्तित होने वाले द्रव्य के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार के सूक्ष्म शरीर के परिवर्तनों को संस्कार कहते हैं जो आत्मा के संसर्ग में मानव के जीवन में नैतिक, सौन्दर्यात्मक, आध्यात्मिक और बौद्धिक प्रवृत्तियों को जन्म देते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म शरीर मानव के जीवन यापन क्रम में घटित होने वाले इन आध्यात्मिक भावनात्मक, सौंदर्यात्मक, नैतिक, और बौद्धिक परिवर्तनों का आधार है।

लिंग शरीर (सूक्ष्म शरीर) का यह विचार पाश्चात्य विचारक सी०डी० ब्रॉड के 'मानसिक कारक' (Psychic Factor) के विचार से साम्यता रखता है। उनका मानना था कि मृत्यु के पश्चात भी व्यक्ति के मानसिक पक्ष का अस्तित्व पूर्ण चेतन व्यक्तित्व के रुप में नहीं वरन्, उसकी मनोवृत्तियों, इच्छाओं और स्मृति आदि मानसिक तत्वों के समूह के रूप में बना रहता है। ये मानसिक तत्व ही मानसिक कारक को बनाते हैं। पुनर्जन्म की अवधारणा के विषय में ब्रॉड का कहना है कि मृत्यु के समय स्वयं को शरीर से अलग कर लेने वाला मानसिक कारक बाद में चलकर मानव भ्रूण की अविकसित जीवन संरचना में विलीन हो जाता है और पुनः यह उस भ्रूण के विकास को प्रभावित करता है।[6] बौद्ध दर्शन में भी जहां नित्य आत्मा का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया गया है पुनर्जन्म के विचार को स्वीकार किया गया है। यहाँ पुनर्जन्म को विज्ञानों द्वारा संभव बताया गया है जिस प्रकार एक दीपशिखा दूसरी दीपशिखा को प्रज्जवलित करती है उसी प्रकार एक विज्ञान दूसरे विज्ञान को जन्म देते हैं और इस प्रकार पुनर्जन्म संभव होता है।

---

[6] C.D. Broad, The Mind and its place in nature (London : Routledge & Kegan Paul Ltd. 1925 and New York : Humanities Press, 1976) P.P. 536 P.F.

प्रश्न उठता है कि पुनर्जन्म में विश्वास का आधार क्या है? इस विषय में तीन उत्तर दिए जाते हैं। प्रथम यह वेदों का उद्घाटित सत्य है। दूसरा पुनर्जन्म मानवीय जीवन के कई पहलुओं की व्याख्या भी करता है। जैसे मानवीय जीवन में बहुत सी ऐसी विषमताऐ देखने को मिलती हैं जिसके लिए व्यक्ति स्वयं जिम्मेदार नहीं है। दैनिक अनुभव में अक्सर हम देखते हैं कि कुछ लोग गरीब जन्म लेते हैं, जबकि कुछ अमीर के रूप में जन्म लेते हैं, कोई विकलांग है तो कोई पूर्णशरीर वाला है, कुछ लोग अच्छे मानसिक स्तर के हैं तो कुछ नहीं, कुछ अर्द्धविक्षिप्त हैं, कुछ लोग कलात्मक रूचि के होते हैं, तो कुछ वैज्ञानिक रूचि के। कोई अच्छा लेखक है, दूसरा अच्छा खिलाड़ी है। ये विषमताएं केवल पुनर्जन्म के माध्यम से ही स्पष्ट की जा सकती है कि पूर्वजन्म के कर्मों के परिणाम स्वरूप हमें वर्तमान जीवन मिलता है। तीसरा आधार उन लोगों के अनुभव हैं जिन्हें पूर्वजन्म की अपूर्ण स्मृति होती है कई बार ऐसे तथ्य सुनने में आते हैं कि किसी व्यक्ति को अपने पूर्वजन्म की स्मृति होती है। वह बताता है कि मैं पिछले जन्म में कौन था, कहां रहता था कैसे मेरी मृत्यु हुई और बाद के सर्वेक्षणों से यह सत्य पाया गया । साथ ही मोक्ष के पथ पर कुछ ऐसे लोग (ज्ञानी) होते हैं जिन्होंने यौगिक शक्ति विकसित कर ली है उन्हें पूर्व जन्म की स्मृतियां होती हैं। साथ ही यह दावा भी किया जाता है कि पूर्णता की प्राप्ति होने पर योगी के अपने सभी पूर्वजन्मों का स्मरण आ जाता है और ऐसी स्थिति में वह वाह्यय रूप से भिन्न-भिन्न तथा असंबंधित जीवनों की निरन्तरता के दौरान घटित होने वाले कर्म के संबंध को स्वयं अपने विषय में देखता है। अनेक भारतीय विद्वानों की दृष्टि में पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास के आधार के रूप में तीसरा उत्तर ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

शैडोमैन या एस्ट्रल बॉडी (Shadow man or astral body) का सिद्धान्त भी सूक्ष्म शारीरिक अमरता के सिद्धान्त का ही एक उदाहरण है। इस सिद्धान्त के अनुसार मृत्यु के समय एक छाया शरीर भौतिक शरीर से अलग होती है। इस विषय में प्रामाणिक साक्ष्य के अभाव में आधुनिक विचारक इस सिद्धान्त को अधिक महत्त्व नहीं देते हैं।

व्यक्तिपूर्ण अमरता के सिद्धान्त का एक भिन्न दृष्टिकोण से भी विभाजन, किया गया है। यहां व्यक्तित्वपूर्ण अमरता के दो प्रकार माने गऐ हैं- सीमित अमरता और असीमित अमरता। सीमित अमरता की अवधारणा के अनुसार अमरता केवल कुछ ही लोगों को प्राप्त होती है वहीं असीमित अमरता के विचार के अनुसार सभी लोगों को अमरता प्राप्त है।

वी०पी० वर्मा के अनुसार सामान्यतः कुछ ईसाई विचारक सीमित अमरता में विश्वास करते हैं और उनके मत से केवल वे ही अमरत्व प्राप्त करेंगे जिन्होंने शुभ कर्म किए हैं, अशुभ कार्य करने वालों को अमरता नहीं प्राप्त होगी।[7] जहाँ तक असीमित अमरता का प्रश्न है यह सिद्धान्त अधिकांश भारतीय सम्प्रदायों में स्वीकार किया जाता है।

गीता में कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिए गए उपदेशों का आधार भी यही है कि सभी आत्मा अमर है और कोई भी आत्मा का विनाश नहीं कर सकताः।[8]

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृहणाति नरोऽपराणि।

---

7 डा० वी०पी० वर्मा, धर्मदर्शन की मूल समस्याएं, पृ० ३२४

8 श्रीमद्भगवद्गीता II, 22

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नावानि देही।। (२/२२)

जैसे कोई मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर दूसरे नये वस्त्र को ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नये शरीर प्राप्त कर लेती है।[9]

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। (२/३३)

इस आत्मा को न शस्त्र काट सके हैं, न अग्नि इसे जला सकती है, न जल इसको गीला कर सकते हैं और न वायु इसे सुखा सकती है।

किन्तु असीमित अमरता के सिद्धान्त को संपूर्ण दर्शन का विचार स्वीकार करना कठिन है। क्योंकि भारतीय दर्शन में बहुत से ऐसे विचारक भी है जिनका मानना है कि अमरता सबको प्राप्त नहीं है। केवल वे ही अमरत्व को प्राप्त करते हैं जिन्होंने स्वयं में कुछ नैतिक आध्यात्मिक गुणों का विकास कर लिया है। अधोलिखित प्रार्थना में ईश्वर से अमरत्व प्राप्ति के लिए उसकी कृपा की अपेक्षा की गई है।

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतंगमय

ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः (वृहदारण्यक उपनिषद् १.३.२८)[10]

---

9 श्रीमद्भगवद्गीता II, 23

10 वृहदारण्यक उपनिषद 1.3.28

इस प्रकार अमरता वह आदर्श या लक्ष्य है जिसे अपने प्रयत्नों द्वारा स्वयं में नैतिक आध्यात्मिक गुणों का विकास करके प्राप्त किया जाना चाहिए।

अभी तक हमने अमरता की विभिन्न अवधारणाओं की चर्चा की जिनमें आपस में विरोध भी हैं। किन्तु अपने शेध प्रबनध के लिए जिस अवधारणा को हमने महत्व देकर स्वीकार किया है वह है व्यक्त्विपूर्ण अमरता की आवधारणा जिसके अनुसार जहां व्यक्ति का व्यक्तित्व किसी न किसी रूप में सदैव बना रहता है और उसे पहचाना भी जा सकता है।

इस शोध प्रबन्ध में हम व्यक्तित्वपूर्ण अमरता को सिद्ध करने के लिए प्रमाणों का विवेचन विवेचन आगे करेंगे। इससे पूर्व हम पश्चात्य दर्शन में आत्मा की अमरता की समस्या के एतिहासिक विकास की संक्षिप्त चर्चा करेंगे। यह हमारे अगले अध्याय का विषय होगा।

अध्याय : दो

पाश्चात्य दर्शन में अमरता की समस्या का ऐतिहासिक विकास

२.१ पाश्चात्य दर्शन में विभिन्न दार्शनिको के मत

पाश्चात्य दर्शन में आत्मा की अमरता की समस्या के ऐतिहासिक विवेचन के लिए हमें प्राचीन ग्रीक युग से आरंभ करना होगा। आत्मा की अमरता के संबंध में प्राचीन ग्रीक विश्वास अनिश्चित था। होमर (छठीं श० ई० पू०) ने एक 'छायाओं के साम्राज्य' (Kingdom of Shades) की चर्चा की है जहाँ मृत्यु के बाद आत्मा रहती है। किन्तु उसने इस साम्राज्य को अंधकार मय स्वीकार किया है।

इसके विपरीत पिंडार का अमरता संबंधी विचार अधिक निश्चित एवं आध्यात्मिक प्रतीत होता है। इनका विश्वास है कि ''पृथ्वी के नीचे भी एक राज्य है, जहां अच्छे बुरे का न्याय होता है। जो ईमानदारी से अपने कर्तव्य एवं धार्मिक दायित्वों का निर्वाह करते हैं वह शांतिपूर्ण एवं

निर्मय जीवन व्यतीत करते हैं" (Jules Girard, Le Sentiment Religieux Chez les Grecs P. 528)[11]

छठीं शताब्दी ई०पू० में ग्रीक दार्शनिक एनेक्सेमेनीज (588-524 ई०पू०) का मानना था कि प्रत्येक मानव की आत्मा 'हवा' के समान है जिसे वास्तव में न तो देखा जा सकता है न छुआ जा सकता है, किन्तु यह दूसरों को छू भी सकती है और उन्हें गतिशील भी बनाये रखती है। इनका विश्वास था कि जिस प्रकार हवा हमारे और अन्य वस्तुओं के साथ ब्रह्मांड में रहती है उसी प्रकार आत्मा मानवीय आकारों (Human Form) में रहती है।

एनेक्सेमेनीज के विपरीत एक अन्य ग्रीक विचारक हेरेक्लाइट्स (535-425 ई०पू०) का मानना है कि व्यक्ति की आत्मा एक विशेष प्रकार की आग के समान है, जो ब्रह्मांड की सभी वस्तुओं के समान एक 'परिवर्तन की स्थिति' (State of Transition) में रहती है। यह आग कभी समाप्त न होने वाली अर्थात् निरन्तर जलती रहने वाली है। जिस प्रकार एक आग दूसरी आग से कम अथवा अधिक ऊष्ण हो सकती है, उसी प्रकार एक आत्मा दूसरी आत्मा से अच्छाइयों में कम या अधिक हो सकती है। अधिकतम ऊष्ण आत्मा पूर्णता के निकट होती है और ये पूरे ब्रह्मांड के सार का प्रतिनिधित्व करने वाली आग से भिन्न नहीं है। हेरेक्लाइट्स का कथन है कि "देवता अमर मनुष्य है और मनुष्य मर्त्य देवता है : हमारा जीवन देवता की मृत्यु है

---

11 P. Jannet & G. Seailles - History of the Problem of Philosophy Vol. II, P. 351.

और हमारी मृत्यु उसका जीवन है।"[12] वो विश्वास दिलाता है कि "जिनकी सम्मानपूर्ण मृत्यु होती है वे विशुद्ध जीवन (Pure life) के लिए पुरस्कृत किये जाते हैं।"[13]

आत्मा की अमरता के संबंध में पाइथागोरस (जिनका जन्म 580 ई०पू० में हुआ) ने पुनर्जन्म का सिद्धान्त दिया जिसे आत्मा के आवागमन का सिद्धान्त (Transmigration of the soul) अथवा मेटेमसाइकोसिस (Metempsychosis) कहा है। इस सिद्धान्त के अनुसार मृत्यु के पश्चात मानव की आत्मा दूसरे शरीर में प्रवेश करती है। यह शरीर मानव का हो सकता है अथवा किसी अन्य प्रजाति का। आत्मा पूर्वजन्म की गलतियों के कारण शरीर से बंधी हुई है। यदि आत्मा सम्मान्य या श्रेष्ठ (Worthy) है तो शरीर से अलग होने के बाद अमूर्त जीवन में प्रवेश करती है, अन्यथा अपनी बुराई के कारण 'टारटेरस', जिसे ग्रीक पौराणिक कथाओं में जगत के नीचे का हिस्सा कहा गया है (जैसा हिन्दू मान्यता में नरक की अवधारणा है) के दण्ड की प्रतीक्षा करती है।

एम्पीडाक्लीज (495-45 ई०पू०) की कहना है कि मानव का जीवन केवल इस भौतिक जगत तक सीमित नहीं है जिससे हम सब परिचित है। इस भौतिक जगत के परे भी मानव जीवन की निरंतरता बनी रहती है। एम्पीडाक्लीज ने अपने विचार 'ऑन द नेचर ऑफ थिंग्स' नामक कविता में व्यक्त किये हैं। एम्पीडॉक्लीज़ का कहना है कि जिस प्रकार मूल तत्वों

[12] Fragments 60,
[13] Fragment 120.

(Elements) को नष्ट नहीं किया जा सकता उसी प्रकार मानव को भी नष्ट नहीं किया जा सकता।

भौतिकवादी अणुवादी ग्रीक दार्शनिक डोमोक्रिट्स (460-370 ई०पू०) ने आत्मा की अमरता के सम्बन्ध में कुछ भिन्न विचार दिये हैं। डेमोक्रिट्स का मानना है कि जगत छोटे-छोटे अणुओं से निर्मित है, जिन्हें किसी भी इंद्रिय द्वारा जाना नहीं जा सकता है। इन्हीं अणुओं की निरन्त क्रिया प्रतिक्रिया से ब्रह्मांड बना हुआ है। आदमी और औरत की आत्मा भी ऐसे ही अणुओं से बनी है। जब यह अणु विशिष्ट आकार में संगठित होते हैं तो मानव निर्मित होते हैं और उस विशिष्ट आकार के नष्ट होने के पश्चात् यह अणु पुनः संगठित होने के लिए मुक्त हो जाते हैं। यह अणु नश्वर न होकर शाश्वत है। किन्तु आत्मा नश्वर है।

प्रमुख ग्रीक दार्शनिक सुकरात (470-400 ई०पू०) के आत्मा की अमरता संबंधी विचारों का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इनके विचारों को अप्रत्यक्ष रूप से प्लेटो के संवादों के माध्यम से ही जाना जा सकता है। वस्तुतः प्लेटो और सुकरात के विचार आपस में इतने मिले-जुले हैं कि यह कह पाना कठिन है कि अमुक विचार सुकरात का है अथवा प्लेटो का। प्लेटो के संवादों में मुख्य वक्ता सुकरात ही हैं। अतः हम सुकरात और प्लेटो के विचारों के अलगाव में न पड़कर यह मान लेते हैं कि उनके विचार समान है।

प्लेटो (427-347 ई०पू०) पाश्चात्य दर्शन के महानतम दार्शनिकों में से एक है जिसमें संपूर्ण ग्रीक विचारों का समायोजन है इसीलिए उन्हें 'पूर्ण ग्रीक' की संज्ञा दी है। समकालीन

दार्शनिक ए०एन० ह्वाइटहेड ने यहां तक कहा है कि "संपूर्ण पाश्चात्य दर्शन प्लेटो के विचारों पर धारावाहिक टिप्पणी है।" प्लेटो के लिए आत्मा की अमरता का प्रश्न उसके दर्शन का एक प्रमुख अंग है इसलिए प्लेटो ने इस पर व्यवस्थित ढंग से विचार किया है। अत्यन्त महत्वपूर्ण होने के कारण उनके विचार को हम कुछ विस्तार से प्रस्तुत करेंगे।

आत्मा के ऊपर विचार करते समय प्लेटो ने आत्मा को ही 'व्यक्ति' कहा है। इस बात को पुष्ट करते हुए सुकरात और अलकेबेडीज़ का संवाद प्रस्तुत किया जा सकता है। इस संवाद में प्रश्न यह है कि हम क्या हैं? और कौन किससे बात कर रहा है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि "हम अपनी आत्मा ही है" इस बात को सिद्ध करने के लिए युक्ति इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है- "प्रयोगकर्ता और प्रयोग की जाने वाली वस्तु सदैव भिन्न-भिन्न होती है। हम न केवल अपने हाथों आंखों का प्रयोग करते हैं वरन् संपूर्ण शरीर का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार मैं अपना शरीर नहीं हो सकता और साथ ही 'मैं' शरीर और आत्मा दोनों भी नहीं हो सकता, क्योंकि प्रयोगकर्ता और प्रयोग की जाने वाली वस्तु में भिन्नता होती है। अतः 'मैं' अपनी आत्मा ही हूँ।"[14]

आत्मा पर चर्चा करते हुए प्लेटो ने आत्मा के तीन भाग बताये हैं जिन्हें वास्तव में आत्मा की क्रियाओं के स्तर समझना चाहिए न कि आत्मा के अवयव। सबसे निचले स्तर पर आत्मा की एन्द्रिक क्रियाएं अथवा क्षमताएं आती है जिसका नियंत्रण भावनाओं या इन्द्रियों के द्वारा होता है। इससे ऊपर मध्य स्तर अथवा स्पिरिटेड स्तर (Spirited Level) होता है जिसका नियंत्रण साहस

[14] Alcibiades1 129B - 130C

जैसे सद्गुणों के माध्यम से होता है। इन दोनों के ऊपर अर्थात् सर्वोच्च स्तर पर आत्मा का बौद्धिक स्तर होता है जिसका नियंत्रण प्रज्ञा और सत्य के प्रेम द्वारा होता है।

मानवीय आत्मा में तीनों का मिश्रण रहता है। किसी मनुष्य में कोई पक्ष ज्यादा किसी में कोई पक्ष कम हो सकता है।

प्लेटो ने रिपब्लिक में कहा है कि मानव की मृत्यु के बाद जो अंश अवशिष्ट रहता है वह आत्मा है। यह आत्मा अशरीरी है अर्थात् प्लेटो ने आत्मा को अमर माना है। आत्मा की अमरता को सिद्ध करने के लिए प्लेटो ने अपने संवादों फीडो, मेनो आदि में अनेक तर्क प्रस्तुत किये हैं। फ्रैंक थिली ने इन तर्कों को तीन शीर्षकों के अन्तर्गत रखा है–[15]

(i) ज्ञानमीमांसीय तर्क

(ii) तत्त्वमीमांसीय तर्क

(iii) नैतिक तर्क

ज्ञानमीमांसीय तर्कों में मुख्यतः दो तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं-

1. प्लेटो ने आत्मा के अतिरिक्त आत्मा के अतिरिक्त ने जगत में दो प्रकार की सत्ताएं मानी थीं- दिव्य प्रत्यय और भौतिक वस्तुएं। आत्मा शरीर पर शासन करने के साथ ही साथ प्रत्ययों का ज्ञान भी प्राप्त करती है। प्लेटो के अनुसार यह तभी संभव है जब आत्मा

[15] Frank Thilly, A History of Philosophy, P.88

दिव्य प्रत्ययों के समान गुण रखती है। और उसी के समान सरल, अमिश्रित और शाश्वत है।

2. एक प्रमुख ज्ञानमीमांसीय तर्क प्लेटो ने फीडो और मेनो दोनों ही संवादों में दिया है। प्लेटो का मानना था कि ज्ञान स्मृति जन्य है। स्मृति उसी वस्तु की हो सकती है जिसका हमें पूर्व ज्ञान हो किन्तु जो कालक्षय के कारण विस्मृत हो गई हो। प्लेटो का कहना था कि प्रायः हमें ऐसी बातों का ज्ञान होता है जो अनुभव से संभव नहीं है जैसे दो समान वस्तुओं को देखकर समानता का ज्ञान होता है वह समानता समान वस्तुओं से भिन्न है। वस्तुतः समानता का ज्ञान हमें इंद्रियानुभव से पूर्व ही रहता है और समान वस्तुओं को देखकर उसका स्मरण हो जाता है। इस ज्ञान की प्रथम प्राप्ति के लिए पूर्व जन्म अनिवार्य है। इसी प्रकार अन्य ज्ञान को भी प्लेटो स्मृतिजन्य सिद्ध करने का प्रयत्न करता है और उसके आधार पर जन्म के पूर्व आत्मा के अस्तित्व का। ज्यामिति में पूर्ण रेखा और त्रिभुज इत्यादि के प्रत्यय है किन्तु इन प्रत्ययों के अनुरूप कोई भी ऐसी रेखा नहीं खींची जा सकती जिसमें चौड़ाई न हो और कोई भी ऐसा त्रिभुज नहीं है जिसके तीनों कोणों का योग ठीक-ठीक दो समकोण के बराबर हो। प्रश्न है इन पूर्ण प्रत्ययों का ज्ञान मानव को कैसे हुआ क्योंकि आनुभविक निरीक्षण से इन प्रत्ययों का ज्ञान नहीं होता है।

प्लेटो ने बौद्धिक ज्ञान और एन्द्रिक ज्ञान में भेद किया है। आधुनिक तर्कशास्त्र की भाषा में इसे क्रमशः अनिवार्य सत्य और आपातिक सत्य कहा गया है। बौद्धिक ज्ञान ही अनिवार्य ज्ञान है और प्लेटो के अनुसार यही ज्ञान का आदर्श है। उदाहरण के लिए गणित और ज्यामिति के

सिद्धान्त अनिवार्य ज्ञान है, क्योंकि इसका खण्डन वदतोव्याघात होगा। जैसे "दो और दो मिलकर चार होते हैं" या "त्रिभुज के तीनों कोणों का योग दो समकोण के बराबर होता है", ऐसे ही ज्ञान है। जबकि एन्द्रिक ज्ञान तथ्य की दृष्टि से सत्य हो सकता है, किन्तु यह अनिवार्य नहीं है जैसे 'सोना पीला होता है।' इनके विरूद्ध सोचना व्याघात नहीं होता है। अनिवार्य ज्ञान न तो अनुभवजन्य है न ही अनुभव द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है। यह सहज अनुभवनिरपेक्ष है । इससे प्लेटो ने यह निष्कर्ष निकाला कि इसकी उपलब्धि पूर्व जन्म में हुई होगी।

इसी प्रकार 'मेनो' (Meno) नामक संवाद में प्लेटो ने स्मृति जन्य ज्ञान के पक्ष में एक उदाहरण दिया है। वहां सुकरात एक अशिक्षित दास से वार्तालाप करते हैं जिसे गणित के विषय बिल्कुल ज्ञान नहीं था। फिर भी चातुर्यपूर्ण प्रश्नों द्वारा वह उस बालक को पाइथागोरियन प्रमेय का ज्ञान करा देते हैं। यह ज्ञान न तो शिक्षा जन्य है न ही अनुभवजन्य। अतः वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उपर्युक्त ज्ञान स्मृति जन्य ही हो सकता है जिसे जन्म से पूर्व आत्मा द्वारा प्राप्त किया गया था।

अतः प्लेटो मानते हैं कि सभी सच्चा या आदर्श ज्ञान हमारे अन्दर सर्वदा विद्यमान रहते हैं। अनुभव अथवा प्रत्यक्षों के द्वारा हमें केवल उनका अनुस्मरण होता है और इस अनुस्मरण की वास्तविकता के आधार पर कहा जा सकता है कि आत्मा अमर है।

'And if the truth about reality is always in our soul, the soul, the soul must be immortal and one must take courage and try to discover-that is, to

recollect what one doesn't happen to know, or, more correctly, remember, at the moment.' –[6]. Meno, 86b

किन्तु यदि ज्ञान अनुस्मरण मात्र है तो सभी मानव को सभी ज्ञान क्यों नहीं अनुस्मृत हो जाता? प्लेटो के अनुसार सर्वप्रथम मानव जड़ या भौतिक पदार्थों को ही सत् समझता है और अपना आत्मसात इन्द्रिय सुख के साथ कर लेता है जिसके कारण वह ज्ञान के अनुस्मरण में असमर्थ हो जाता है। दूसरे सही अवसर मिलने पर ही अनुस्मृति होती है।

इन ज्ञानमीमांसीय तर्कों के बाद प्लेटो ने 'फीडो' नामक संवाद में तत्वमीमांसीय तर्क भी दिए हैं। पहला तत्त्वमीमांसीय तर्क आत्मा की सरलता के आधार पर दिया गया है। प्लेटो ने आत्मा को सरल और निरवयव द्रव्य स्वीकार किया है इसलिए आत्मा अमर है। क्योंकि जो वस्तु मिश्रित है केवल उसी का उसी वस्तु के टुकड़ों में विभाजन हो सकता है और इस विभाजन को उस वस्तु का विनाश कहा जा सकता है। सरल का विभाजन नहीं हो सकता, अतः वह अविनाशी है।

दूसरा तत्त्वमीमांसीय तर्क आत्मा को जीवन स्वरूप मानने पर निर्भर है। जीवन रूप आत्मा ही शरीर को जीवित बनाती है। मृत्यु जीवन का विरोधी है और दो विरोधी वस्तुएं एक साथ एक समय में नहीं रह सकती। इसलिए जीवन मृत्यु भी एक साथ नहीं रह सकते। आत्मा चूँकि जीवन है इसलिए उसकी मृत्यु नहीं हो सकती और वह अमर है।

किन्तु यदि ज्ञान अनुस्मरण मात्र है तो सभी मानव को सभी ज्ञान क्यों नहीं अनुस्मृत ह जाता? प्लेटो के अनुसार सर्वप्रथम मानव जड़ या भौतिक पदार्थों को ही सत् समझता है औ अपना आत्मसात इन्द्रिय सुख के साथ कर लेता है जिसके कारण वह ज्ञान के अनुस्मरण ां असमर्थ हो जाता है। दूसरे सही अवसर मिलने पर ही अनुस्मृति होती है।

इन ज्ञानमीमांसीय तर्कों के बाद प्लेटो ने 'फीडो' नामक संवाद में तत्वमीमांसीय तर्क भ दिए हैं। पहला तत्त्वमीमांसीय तर्क आत्मा की सरलता के आधार पर दिया गया है। प्लेटो ने आत्मा को सरल और निरवयव द्रव्य स्वीकार किया है इसलिए आत्मा अमर है। क्योंकि जो वस् मिश्रित है केवल उसी का उसी वस्तु के टुकड़ों में विभाजन हो सकता है और इस विभाजन कं उस वस्तु का विनाश कहा जा सकता है। सरल का विभाजन नहीं हो सकता, अतः वह अविनार्श है।

दूसरा तत्त्वमीमांसीय तर्क आत्मा को जीवन स्वरूप मानने पर निर्भर है। जीवन रूप आत्मा ही शरीर को जीवित बनाती है। मृत्यु जीवन का विरोधी है और दो विरोधी वस्तुएं एक साथ एक समय मैं नहीं रह सकती। इसलिए जीवन मृत्यु भी एक साथ नहीं रह सकते। आत्म चूँकि जीवन है इसलिए उसकी मृत्यु नहीं हो सकती और वह अमर है।

प्लेटो ने आत्मा की अमरता को सिद्ध करने के लिए 'फीड्रस' नामक संवाद में गति संबंधी तर्क भी प्रस्तुत किया है। प्लेटो का कहना है कि 'आत्मा एक ऐसी सत्ता है जो स्वतः संचालित होती है और अन्य सभी वस्तुओं को संचालित करती है।'[16] जिन वस्तुओं में गति किसी अन्य वस्तु अथवा वाह्य कारण से आती है वह वस्तु नश्वर मानी जाएगी क्योंकि वाह्य कारण के समाप्त होते ही उस वस्तु की गति भी समाप्त हो जाएगी। किन्तु वह अस्तित्व जो किसी अन्य वस्तुओं पर निर्भर न रहकर अपने आप संचालित होता रहे वही वास्तव में शाश्वत और नित्य है। यह आत्म संचालित अस्तित्व आत्मा है। चूंकि गति का अन्त कभी नहीं होता, इसलिए स्वतः संचालित आत्मा अमर कही जा सकती है।

"That which moves itself is precisely identifiable with soul, it must follow that soul is not born and does not die."[17] - Phaedrus, 244 e-246 a.

इसके अतिरिक्त प्लेटो ने 'फीडो' नामक संवाद में मूल्यपरक अथवा नैतिक तर्क की भी चर्चा की है जो सर्वोच्च मूल्य और न्याय की माँग पर आधारित है। नैतिक तर्क प्लेटो की कृति रिपब्लिक में भी उल्लिखित है।

प्लेटो का मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्मानुसार फल प्राप्त होना चाहिए। 'फीडो' में कहा गया है कि यदि आत्मा अमर न हो तो मृत्यु अशुभ कर्म करने वालों के लिए वरदान होगी। क्योंकि इस प्रकार तो आजीवन दुष्ट कर्म करने वाले व्यक्ति मृत्यु से मुक्त हो

---

[16] Plato, Phaedrus, 245 c.d.e., Laws, 894.
[17] Plato, Phaedrus, 244e-246a

जाएंगे। किन्तु आत्मा शरीर के नाश के बाद पुनः शरीर धारण कर व्यक्ति को कर्मफल अवश्य दिलाती है।

प्लेटो ने 'पुनर्जन्म' अथवा 'आवागमन के सिद्धान्त' को भी माना है जिससे आत्मा की अमरता को सिद्ध करने में सहायता मिलती है। 'ट्रांसमाइग्रेशन ऑफ द सोल' (Transmigration of the soul) अथवा 'मेटेमसाइकोसिस' (Metempsychosis) कहा जाता है। प्लेटो ने यह सिद्धान्त पाइथागोरस के दर्शन से लिया है। प्लेटो का कहना है कि जगत में उच्चतर निम्नतर प्राणियों में भेद है। स्त्री-पुरूष में भी भिन्नता है। कुछ उच्चकोटि के पुरूष है जिन्हें वासनाएं भी उद्वेलित नहीं करती जबकि दूसरी ओर कुछ वासनाओं में लिप्त है। जगत में व्याप्त विभिन्नताओं से प्लेटो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस प्रकार का जीवन वर्तमान जीवन का परिणाम नहीं है। यदि वर्तमान का परिणाम होता तो सभी स्त्री-पुरूष व प्रकृति की अन्य वस्तुएं एक सी रहती। अतः वर्तमान जीवन से पूर्व भी आत्मा का अस्तित्व रहा होगा जहाँ कुछ ने साधनामय जीवन व्यतीत किया होगा जो इस जन्म में उच्चकोटि के पुरूष बने।

प्लेटो का मानना है कि यदि किसी ने शुभ जीवन व्यतीत किया है विशेषतः प्रत्ययों का ज्ञान अर्जित किया है अथवा दर्शन का आचरण किया है तो मृत्यु के बाद उसकी आत्मा अपने आनन्दमय स्थान, प्रत्ययों के जगत में लौट जाएगी और वहाँ दीर्घकाल तक रहकर शरीर में प्रविष्ट हो पृथ्वी पर लौट आएगी। यही क्रम चलता रहेगा। जो लोग अशुभ जीवन व्यतीत करेंगें उन्हें मृत्यु के बाद कठोर यातनाएँ सहनी पड़ेंगी और तदनन्तर अपने से निम्नतर प्राणियों के शरीर में जन्म लेना पड़ेगा।

किंतु प्लेटो का यह 'आवागमन का सिद्धान्त' अधिकांशतः कपोल कल्पित लगता है। ऐसा लगता है कि उन्होने इसे गम्भीरता पूर्वक नहीं लिया है क्योंकि उनके विभिन्न संवादों में इससे संबंधित विवरण परस्पर असम्बद्ध और भिन्न हैं।

इसके अतिरिक्त आत्मा की अमरता की सिद्धि के लिए प्लेटो फीडो में एक अन्य तर्क भी देता है। प्लेटो का कहना है कि जहाँ दो अवस्थाएँ सापेक्ष हों तो एक के रहने पर दूसरी की भी अपेक्षा की जाती है। A pair of opposites एक विरोधों का युग्म जीवन-मरण है। यहाँ जन्म होगा वहाँ मृत्यु भी, और जहाँ मृत्यु वहाँ जन्म भी रहेगा। प्लेटो के कहने का अभिप्राय यह है कि सापेक्ष प्रत्यय बिना एक दूसरे के सम्भव नहीं है। जन्म-मरण सापेक्ष हैं। अतः आत्मा का जन्म मरण का चक्कर चलता रहता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आत्मा अमर है।

'फीडो' में प्लेटो ने ऐसा ही कहा है कि "What they say is this that the soul of man is immortal. At one time it comes to an end........ and at another is born again, but is never finally exterminated."[18]

इन तर्कों से स्पष्ट है आत्मा मृत्यु के साथ नहीं मरती, इसलिए अमर है वस्तुतः आत्मा का कोई आरंभ भी नहीं है और जिसका न कोई आरम्भ है न अंत, वह शाश्वत है। इस प्रकार प्लेटो ने न केवल आत्मा की अमरता की, वरन् उसकी शाश्वतता की बात भी की है। आत्मा मानव शरीर के पहले भी अस्तित्व में थी जो शरीर को जीवन देती है। आत्मा का न तो आदि है और न ही अंत है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्लेटो ने शाश्वतता की बात विश्वात्मा के

[18] Plato, Phaedo, 81b

संदर्भ में की है और मानवीय आत्मा विश्वात्मा में भाग लेती है इसलिए मानवीय आत्मा विश्वात्मा के गुणों के समान हो जाती है। विश्वात्मा शाश्वत है अतः मानवीय आत्मा भी शाश्वत है।

प्लेटो के शिष्य अरस्तू (३८४ से ३२२ ई० पू०) के अमरता विषयक विचार उससे बिल्कुल भिन्न हैं। १६वीं शताब्दी में (Alexandrians and Averroists) एलेक्जेन्ड्रियन और एवेरोइट्स में इस विषय पर मतभेद था कि अरस्तू ने आत्मा की अमरता पर विचार दिया था अथवा नहीं। जहां पहले का मानना था कि अरस्तू ने अमरता का विचार नहीं दिया वहीं दूसरे का मानना था कि अरस्तू ने इस विचार को स्वीकार किया है। यहाँ हम दोनों मतों का संक्षिप्त परिचय ही देंगे।

अरस्तू ने विश्व की सभी वस्तुओं की व्याख्या 'पदार्थ एवं आकार' (Matter and form) प्रत्यय के माध्यम से की। मनुष्य में भी अरस्तू ने शरीर को 'पदार्थ' तथा आत्मा को उसका 'आकार' कहा है। इस विचार से ऐसा प्रतीत होता है कि शरीर के नष्ट होते ही उसका आकार अथवा आत्मा भी नष्ट हो जाएगी किन्तु यह निर्विवाद सत्य नहीं है। पॉल जेनेट का मानना है कि इस विषय पर दो मत मिलते हैं।[19]

पहले मत को स्वीकार करने वाले विचारकों का कहना है कि ऐसा नहीं है कि शरीर के साथ आत्मा समाप्त हो जाती है। क्योंकि इन विचारकों ने आत्मा के ऊपर 'एन्टेल्की' (Entelechy of the body) की बात भी की है। यह प्राणियों के शरीर को व्यवस्थित और नियंत्रित करने वाले आकार अथवा आत्मा की ही शक्ति है। इसे नाउस (Nous) भी कहा गया

[19] P.Jannet & G.Seailles, A History of the Problems of Philosophy Vol. II, P. 356

है। नाउस विचार, शुद्ध एवं तर्कबुद्धि (Intellegence) है। यह विशुद्ध होने के कारण हम तक बिना किसी माध्यम (Door) के पहुंचता है। यह आत्मा का ही अंग है कोई भौतिक वस्तु नहीं है। यह मनुष्य का सर्वाधिक दिव्य (Divine) भाग है और इसी के द्वारा वह दिव्यता (Divinity) में भाग लेता है।

"But a life which realized this life would be something more than human; for it would not be the expression of man's nauture, but of something divine in that nature the excercise of which is as far superior to the excercise of the other kind of virtue (i.e. practicsal or moral virtue) as this divine element is superior to our compound human nature..... Never the less, instead of listening to these who advise us as men and mortals not to lift our thoughts above what is human and mortal, we ought rather, as far as possible, to put off our morality and make every effort to live in the excercise of the highest of our faculties; for though it be but a small part of us, yet in power and value it far surpasses all the rest. And, indeed, this part would ever seem to constitute our true self, since it is the sovereign and better part." [20](Nic. Ethics, x,7).

अतः निःसंदेह अररतू ने अमरता का गुण नाउस (nous) को प्रदान किया यही ऐसा द्रव्य है जिसे नष्ट नहीं किया जा सकता और इसी का अस्तित्व मृत्यु के बाद तक बना रहता है। पूरी आत्मा नहीं वरन् मन और बुद्धि ही मृत्यु के बाद शरीर से अलग होती है और यही अमर

---

[20] Aristotle, Nic. Ethics, X7.

तथा शाश्वत है। यह pure intellegence सभी मानव में समान है तथा स्मृति, संवेग, तर्क से रहित है।

कुछ विचारक मानते हैं कि शुद्ध बुद्धि मानव का हिस्सा न होकर स्वयं ईश्वर का भाग है और वही इसे मानव को देता है और जब इसे वापस लेता है तो मानव समाप्त हो जाता है अतः मानवीय आत्मा की अमरता ईश्वर की शाश्वतता ही है। किन्तु अमरता के पक्ष में इस विचार के विपरीत Zeller का मानना है, जैसा कि यह पहले की कहा जा चुका है, कि आत्मा शरीर का आकार है। इसलिए यह शरीर के समाप्त होने के साथ ही समाप्त हो जाता है और आत्मा के साथ ही व्यष्टित्व एवं व्यक्तित्व (Individuality and personality) की सभी विशेषताएं भी समाप्त हो जाती है और शरीर की एन्टेल्की, आत्मा शरीर के बिना संभव नहीं हो सकती। आत्मा शरीर नहीं है, किन्तु शरीर का ही एक भाग है। जिस प्रकार आँख में दृष्टि (Vision) और पुतली (pupil) दोनों होते हैं वैसे ही जीव में आत्मा और शरीर दोनों होते हैं। आत्मा को अनिवार्यतः शरीर में होना चाहिए। प्रत्येक विशेष आत्मा को विशेष शरीर में होना चाहिए। पाइथागोरस की तरह नहीं की कोई भी आत्मा किसी भी शरीर में प्रवेश कर सकती है। इस प्रकार शरीर के बिना आत्मा का अस्तित्व संभव नहीं है और न केवल निचले संस्थान (Lower faculties) जैसे संवदेन आ पोषण वरन् नाउस भी नाशवान है और बिना निचले संस्थानों के इसके विषय में सोचा नहीं जा सकता। प्रेम, घृणा सक्रिय बुद्धि की क्रिया नहीं वरन् यौगिक जीव। Composite being की क्रियाएं हैं और इस यौगिक जीव के समाप्त होते ही मन, प्रेम, स्मृति जैसी गतिविधियां बंद कर देता है जो यौगिक शरीर के गुण हैं।

स्टोइक (300 ई०पू०) का अमरता संबंधी विचार भी बिल्कुल अनिश्चित सा था। उनका भौतिकशास्त्र का जड़वादी दृष्टिकोण अमरता के पक्ष में नहीं था। फिर भी वे पूर्णतः इसके विरोधी नहीं थे। स्टोइक्स के नैतिक सिद्धान्त अमरता संबंधी नैतिक तर्क को अस्वीकार करते हैं। स्टोइक्स ने एक मात्र शुभ सद्गुण को स्वीकर किया है और उनका मानना है कि सद्गुण सम्पन्न व्यक्ति अनिवार्य रूप से सुखी भी होगा इसलिए अन्य किसी पुरस्कार की आवश्कता नहीं है। इसी तरह दुर्गुणी व्यक्ति अनिवार्यतः दुःखी होगा इसलिए उसे किसी अन्य दण्ड की आवश्यकता नहीं है।

पेनेटियस ने आत्मा की अमरता का कड़ा विरोध किया है। किन्तु सभी स्टोइक्स ने अमरता का विरोध नहीं किया है। धार्मिक प्रभाव के कारण बाद के स्टोइक्स विचारकों का झुकाव अमरता के पक्ष में बढ़ा।

जेनो कहता है आत्मा स्वभावतः नाशवान है किन्तु वह सार्वभौम आत्मा, जिसका व्यक्तिगत आत्मा केवल एक भाग है, अविनाशी है।[21]

सिसरो का कहना है कि ''स्टोइक आत्मा को अधिक समय तक रहने वाली तो मानते हैं लेकिन शाश्वत नहीं'' (Persitence nor permanent existence of soul)।[22]

सामान्यतः स्टोइक्स वे मानते हैं कि आत्मा तभी तक अस्तित्व में रहती है जब तक विश्व है अर्थात प्रलय होने तक। अमरता संबंधी कुछ बातों में स्टोइक्स के बीच मतों में भिन्नता है।

---

[21] Zeno, Diag, Leart, 84
[22] Cicero, Tusculans 31-32

क्लीन्थस (Cleanthes) ने सभी व्यक्तियों के अक्षुण्णता (Persistence) को स्वीकार किया है जबकि क्रिसिपस का मानना है अच्छी आत्मा (Wise Soul) की निरन्तरता बनी रहती है।

रोमन स्टोइक्स और विशेष रूप से सेनेका (Seneca) में अमरता संबंधी विचार धार्मिक रूप ले लेता है जो ईसाई मत से साम्यता रखता है। सेनेका के कई लेख बिल्कुल वैसे ही है जैसे ईसाई विचारकों के। "Consider without fear that decisive hour which will be the last for the body but not for the soul..... That day which you regard as the last of your days is the day of your birth for eternity (acterni natalis est). When that day will come which is to seperate this mixture of divinity and humanity, I shall leave this body where I found it and return unto the gods."[23]

एपीक्यूरियस (341-270 ई०पू०) ने भी आत्मा को भौतिक माना है। एपीक्यूरियस का विश्वास था कि आत्मा अनन्त सूक्ष्मतम भौतिक अणुओं से निर्मित (Composite material thing) है। ये सूक्ष्मतम अणु पूरे शरीर में फैले रहते हैं और ये एक विशिष्ट ढंग से आत्मा केन्द्र (Soul Center) से जुड़े रहते हैं जहाँ से सभी संवेदनाएं नियंत्रित होती है। मृत्यु के बाद आत्मा के अणुओं के बिखर जाने से उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अर्थात् एपीक्यूरियस की आत्मा एक तात्विक द्रव्य (Material Substance) है और अन्य तात्विक द्रव्यों के समान एक दिन नष्ट होने वाली है। इसलिए एपीक्यूरियस ने वर्तमान जीवन की अपेक्षा अन्य जीवन की कल्पना नहीं की है और उसका कहना है मनुष्य को मृत्यु से नहीं डरना चाहिए।

---

[23] P.Janet&G.Seailles A History of Problems of Philosophy, Vol. II, p. 361

फाइलो जूदेइस (Philo Judoeous) (2 ई०पू०- 40 ई०) यहूदी हेलेनिस्टिक विचारक का अमरता विषयक मत अधिक जटिल प्रतीत होता है। फाइलो अबौद्धिक और बौद्धिक दो प्रकार की आत्मा को स्वीकार करता है। अबौद्धिक आत्मा मानव के अस्तित्व में आने पर अस्तित्व में आती है जबकि बौद्धिक आत्मा जीव की सृष्टि के बिल्कुल आरंभ से रहती है। मानव में ये दोनों ही प्रकार की आत्मा रहती है। दोहरी आत्मा युक्त शरीर के नष्ट होने के साथ अबौद्धिक आत्मा नष्ट हो जाती है किन्तु बौद्धिक आत्मा सदैव रहती है। इस बौद्धिक आत्मा का अस्तित्व ईश्वर की आज्ञा पर निर्भर रहता है और वही उसके अस्तित्व को समाप्त कर सकता है।

प्लाटिनस (205 ई० से 270 ई०) के विचार पूर्ववर्ती विचारकों से भिन्न है। प्लाटिनस ने प्लेटो के सभी तर्कों तथा पाइथागोरस एवं प्लेटो द्वारा दिये गये मेटेमसाइकोसिस (Metempsychosis) के सिद्धान्त को पूर्णतः अपनाया है। प्लाटिनस के अनुसार कुछ आत्माएं मूर्त रूप में और कुछ आत्माएं अमूर्त रूप में रहती है। वे आत्माएं जो मानवीय आकार में होती है वो सांसारिक अथवा आकाशीय (Terrestrial or Celestial) शरीर में प्रवेश करती है। सांसारिक विषयों को नियंत्रित करने के प्रयास में दिग्भ्रमित आत्मा अपने सत्य लक्ष्य से भटक जाती है। प्लॉटिनस पुनर्जन्म को स्वीकार करता है। उसका मानना है कि यह पुनर्जन्म वनस्पति, पशु या मानव किसी भी रूप में हो सकता है। कुछ आत्माएं जो उत्कृष्ट हैं वे स्वर्ग में तारों और नक्षत्रों के रूप में संसार को देखती है और विशुद्ध आत्मा ईश्वर में लीन हो जाती है। इस प्रकार आत्मा का कभी भी विनाश नहीं होता।

बुराइयों से मुक्त आत्मा पाप में कैसे पड़ जाती है? इस प्रश्न के उत्तर में प्लॉटिनस का कहना है कि आत्मा नहीं वरन् आत्मा और शरीर से बना व्यक्ति पाप करता है इसलिए वही दण्डित होता है।

आगस्टाइन (354-430 ई०) का मानना है कि मानव आत्मा और शरीर का एकीकरण है। आत्मा शरीर की अपेक्षा उच्चतर सत्ता है। आत्मा भौतिक न होकर उसमें शुद्ध भाव, बुद्धि और संकल्प तीनों का संयोग पाया जाता है। आत्मा शरीर को नियंत्रित और गतिशील रखती है। संत आगस्टाइन के अनुसार ईश्वर ने जो आदि पुरूष की सृष्टि की उसे शुभ आत्मा दी। आदम ने ईश्वरीय आज्ञा का उल्लंघन कर पाप किया और यह आदम की संतानों में होता हुआ अभी तक जारी है।

आगस्टाइन जन्म से पूर्व आत्मा का अस्तित्व नहीं मानते हैं किन्तु सृष्टि के बाद उसे अमर मानते हैं। आगस्टाइन ने फीडो में दिये गए प्लेटो के प्रमाणों को आत्मा की अमरता के लिए स्वीकार किया है-

(i) सृष्ट वस्तुएं विरोधी युग्म में होती है जैसे गरम के साथ ठंडा। इसी प्रकार जन्म के साथ मरण। मरण के बाद जन्म उतना ही निश्चित है जितना जन्म के बाद मृत्यु।

(ii) मानव आत्मा में नित्य प्रत्ययों का ज्ञान है। ये नित्य प्रत्यय केवल नित्य आत्मा में ही हो सकते हैं अतः आत्मा अमर है।

इस्लामिक दार्शनिक इब्नसीना (980-1037ई०) ने स्वीकार है कि आत्मा शरीर के साथ अस्तित्व में आती है किन्तु शरीर के नष्ट होने के बाद भी इसका अस्तित्व बना रहता है। इन्होंने शरीर को, आत्मा के निरपेक्ष सत्य की खोज के साधन से कुछ अधिक माना है। जब शरीर की गति समाप्त हो जाती है तब भी आत्मा की गति बनी रहती है। इसका अस्तित्व समाप्त नहीं होता, क्योंकि विघटन और क्षीणता मिश्रितों का गुण है, आत्मा जैसे सरल अविभक्तीय आध्यात्मिक द्रव्यों का गुण नहीं है। शरीर की मृत्यु के बाद भी चेतन जीवन संभव है। शरीर आत्मा का मात्र दैहिक या भौतिक (Material Form) है। इब्नसीना ने भी आत्मा दो प्रकार की मानी है जिसे उन्होंने पूर्ण और अपूर्ण आत्मा (Perfect or Imperfect) कहा है। वे आत्मा जो भौतिक अस्तित्व (Physical Existence) में रहते हुए भी भौतिक संवेगों अथवा उत्तेजनाओं का दास नहीं होती वे पूर्ण आत्मा (Perfect soul) के शाश्वत आनन्द में भाग लेती है, जो वास्तव में सत्य और ज्ञान की प्राप्ति के लिए पूर्ण स्वतंत्रता ही है। ये आत्मा विश्वात्मा के सानिध्य में अपना अस्तित्व जारी रखती है। आत्मा और विश्वात्मा का पूर्ण मिलन नहीं होता है यही विमुक्त आत्माओं के लिए परमानन्द की स्थिति है। इसके विपरीत अपूर्ण आत्मा (Imperect soul), जो मात्र भौतिक संतुष्टि के समर्पित जीवन में रहती है, ऐसी स्थिति में पहुँचती हैं जहाँ निरन्तर पीड़ा और दुःख है। स्पष्टतया यहां इब्नसीना का तात्पर्य स्वर्ग और नरक से है। चरम स्थिति कुछ थोड़े से ही मनुष्य प्राप्त कर पाते हैं।

एल्बर्ट द ग्रेट (1200-1280 ई०) रोमन कैथोलिक विचारक ने प्लेटो के विचार को मानते हुए आत्मा को अमर द्रव्य स्वीकार किया है। अल्बर्ट ने शरीर और आत्मा के संबंध को एक

भिन्न रूप में स्वीकार किया है। उसका मानना है कि शरीर आत्मा का दृश्य भाग है, शरीर आत्मा का विस्तार है। शरीर आत्मा कों नए आयाम देता है, किन्तु आत्मा के अस्तित्व के लिए शरीर आवश्यक नहीं है।

एक्विनास (1225-1274) का अमरता संबंधी विचार कुछ जटिल है। एक्विनास ने शरीर से पृथक आत्मा के अस्तित्व को तो माना है और यह भी कहा है कि मृत्यु के बाद भी आत्मा रहती है। लेकिन यह आत्मा ईश्वर के द्वारा शरीर के निर्माण के अवसर पर ही सृजित की जाती है इसके पूर्व आत्मा का अस्तित्व नहीं रहता। इसी आत्मा द्वारा मनुष्य को अपनी तर्कबुद्धि, इन्द्रियाँ और जीवन मिलता है। अतः यह आत्मा क्रिया रूप है। एक्विनास ने मनुष्य की आत्मा को 'बौद्धिक आत्मा' कहा है और वे इन आत्माओं से भिन्न और उच्चतर प्रकार की है, जो वनस्पति और पशुओं में पाई जाती है। इसलिए निम्नतर जीव पूर्णता प्राप्त करने में अक्षम है जबकि मनुष्य जो कि श्रृंखला में मध्यवर्ती स्थिति में है वह पूर्णता प्राप्त करने की योग्यता रखता है। मानवीय आत्मा के ऊपर देवदूत और अंत में ईश्वर का स्थान हैं।

ध्यान देने योग्य है कि एक्विनास के अनुसार मानवीय आत्मा मनुष्य के शरीर से पूरी तरह सम्बद्ध है और उससे अलग होकर कार्य नहीं कर सकती। दूसरे शब्दों में दोनों अपने आप में अपूर्ण हैं किन्तु दोनों मिलकर ही एक तत्व के रूप में पूर्णता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। बिना आत्मा के शरीर वास्तव में मानवीय शरीर नहीं रहता और उसी प्रकार आत्मा जो मृत्यु के पश्चात भी बनी रहती है मानवीय है।

इटैलियन दार्शनिक मारसिलियो फिसिनो (1433-1499 ई०) ने आत्मा की अमरता के लिए प्लेटो, प्लॉटिनस, आगस्टाइन, एवरोज, एक्विनास के तर्कों को एक साथ रखा है। जीवन का लक्ष्य अन्तिम सत्य अर्थात् ईश्वर से एकाकारता प्राप्त करना है, जिसकी ओर हम सभी उन्मुख हैं। किन्तु यदि भौतिक जीवन में ही मानव का अन्त हो जाता है तो यह एकाकारता संभव नहीं होगी। फिसिनो का कहना है व्यक्ति पूर्णता के चाहे जितना करीब पहुंच जाय वह पूर्णता को कभी प्राप्त नहीं कर सकेगा यदि अंततः व्यक्ति मरणशील है। यह एक प्रकार का व्याघात होगा। साथ ही यह ईश्वर की पूर्णता और शुभत्व का भी खंडन होगा। फिसिनो का विश्वास है कि ईश्वर जो उच्चतम शुभ है मानव को कभी ऐसी परीक्षा नहीं डाल सकता। अतः आत्मा की अमरता को स्वीकार करना अनिवार्य हो जाता है।

कार्डिनल काजेटन (1468-1532ई०) एक अन्य इटैलियन धर्मशास्त्री और दार्शनिक हैं जिन्होंने अमरता के विषय में दार्शनिक साक्ष्य ढूढ़ने का प्रयास किया। काजेटन का मानना है कि आत्मा की अमरता को तर्क द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता है। उनका कहना है कि आत्मा की अमरता को केवल आस्था के ही आधार पर स्वीकार किया जा सकता है।

स्पेनिश मानवतावादी विचारक जुआन लुइस विवेस (1472-1540 ई०) ने आगस्टाइन से प्रभावित होकर आत्मा को मनुष्य के नियंत्रणकारी बल के रूप में स्वीकार किया है। लेकिन उनका कहना है कि आत्मा कैसे कार्य करती है इसे समझना मानवीय योग्यता के परे है।

पुनर्जागरण काल के महत्वपूर्ण दार्शनिक ब्रूनो का कहना है कि सभी वस्तुएं सूक्ष्म, अनन्त, अविनाशी और मौलिक अणुओं से बनी है जिन्हें 'चिदणु' कहा है। चिदणु एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ होता है ईकाई। ये चिदणु भौतिक और मानसिक दोनों प्रकार के होते हैं। ब्रूनो ने आत्मा को भी एक अमर चिदणु माना है।

अब हम पाश्चात्य दर्शन के आधुनिक युग में अमरता की समस्या का वर्णन करेंगे। यहां हम आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिकों के आत्मा की अमरता के विषय में मत की संक्षिप्त चर्चा ही करेंगे। इनके द्वारा अमरता के विषय में दिये गये प्रमाणों का विस्तृत विवेचन आने वाले तीन अध्यायों में होगा।

डेकार्ट आधुनिक पाश्चात्य दर्शन के प्रथम दार्शनिक हैं। जिनका जन्म फ्रांस में हुआ। इनका समय 1596 ई० से 1650 ई० तक माना जाता है। डेकार्ट ने भावी जीवन के विषय पर कोई विशेष सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया। किन्तु ऐसा लगता है कि अमरता का विचार उनके मन और शरीर के सम्बन्ध एवं आत्मा विषयक मत में ही निहित है। डेकार्ट कहता है कि "मैं सोचता हूँ अतः मैं हूँ" इस तर्क के माध्यम से उसने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि 'मैं' जो सोचता है, वह एक अभौतिक पदार्थ है, जिसमें दैहिकता का नितान्त अभाव है। इस उक्ति के सम्बन्ध में डेकार्ट दो प्रकार का दावा करते हैं, एक तो यह कि 'मैं' जिसकी सत्ता उन्होंने सिद्ध की है, एक ऐसा पदार्थ है, जिसका स्वभाव ही सोचना है। दूसरा यह कि 'मैं' अथवा आत्मा शरीर से नितान्त भिन्न पदार्थ है क्योंकि शरीर दैहिक पदार्थ है जबकि आत्मा चैतन्य स्वरूप होने के कारण चेतन पदार्थ है।

आत्मा की शरीर से मौलिक भिन्नता के बारे में देकार्त का कहना है कि चैतन्य स्वरूप अपनी सत्ता का मुझे सन्देह रहित और निश्चयात्मक ज्ञान है जबकि शरीर का ज्ञान सन्देहास्पद है। अतः आत्मा शरीर से नितान्त भिन्न है।

डेकार्ट मनुष्य को मन और शरीर दोनों तत्वों से मिलकर बना हुआ माना है। डेकार्ट का कहना है कि शरीर का निर्माण जड़ तत्वों से हुआ है जिन्हें विघटित किया जा सकता है। जबकि डेकार्ट आत्मा को शरीर से बिल्कुल भिन्न एक सरल आध्यात्मिक द्रव्य के रूप में स्वीकार करते हैं। अतः ऐसा लगता है कि डेकार्ट विनाशी शरीर के विपरीत आत्मा के अमरत्व को भी स्वीकार करते थे। इस प्रकार अपरोक्ष रूप से डेकार्ट के विचारों में आत्मा के अमरत्व के विश्वास को ढूंढ़ा जा सकता है।

जहाँ आत्मा की अमरता के विश्वास को स्वीकार करते हुए भी डेकार्ट ने कोई सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया वहीं १७वीं शताब्दी के दार्शनिक स्पिनोजा एवं लाइबनिट्ज़ ने इस विषय पर भिन्न-भिन्न सिद्धान्त दिये। जहां स्पिनोज़ा के तत्वदर्शन का संबंध एकत्ववाद (Unity of Substance) से था वहीं लाइबनिट्ज़ का संबंध व्यष्टित्व के सिद्धान्त (Principle of Individuality) से था। इसी प्रकार जहां स्पिनोज़ा ने निर्वैयक्तिक अमरता (Impersonal Immorlality) को स्वीकार किया वहीं लाइबनिट्ज़ व्यक्तिगत अमरता (Individual Immortality) को मानते हैं।

यहूदी दार्शनिक बेनेडिक्ट स्पिनोज़ा (1632-1677 ई०) के आत्मा विषयक विचार की विशेषता यह थी कि ये आत्मा को स्वभावतः अमर मानते थे साथ ही आत्मा और परमात्मा के ऐक्य पर विश्वास करते थे जो भारतीय दर्शन में वेदान्त में तो देखने को मिलता है किन्तु यहूदी, ईस्लाम और ईसाई मत में नहीं मिलता है।

स्पिनोजा के अनुसार "आत्मा मानवीय शरीर का आकार अथवा प्रत्यय (Idea) है।" उनके अनुसार इसे समय के साथ केवल तभी तक सम्बन्धित किया जा सकता है जब तक यह वास्तव में शरीर के अस्तित्व को व्यक्त करती है। अतः आत्मा की अवधि को उतना ही माना जा सकता है। जितना शरीर की अवधि को। क्योंकि आत्मा शरीर के बिना न तो कुछ कल्पना कर सकती है न ही भूतकाल के किसी तथ्य का स्मरण कर सकती है।

इन वाक्यों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि काल की दृष्टि से जिसे स्पिनोजा ने (Sub Specie Temporaris) कहा है, शरीर की समाप्ति के साथ ही आत्मा का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है किन्तु दूसरे दृष्टिकोण Sub specie etennitatis से भिन्न निष्कर्ष प्राप्त हो सकता है। यह सत्य है कि स्पिनोज़ा ने आत्मा के अमरत्व को साधारण अर्थ में स्वीकार नहीं किया है। स्पिनोज़ा के अनुसार मन के दो अंश है, नित्य और अनित्य। स्पिनोज़ा का मानना है कि मनुष्य का मन शरीर के साथ पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता। मन के नित्य अंश (आत्मा) द्वारा हम ईश्वर के साथ ऐक्य का अनुभव करते हैं। जब स्पिनोज़ा ईश्वर के बौद्धिक प्रेम की बात करते हैं तो इसके माध्यम से मनुष्य अपने उस अंश को पहचानता है जो नित्य है और यह अंश

अपनी ईश्वर से एकात्मकता अनुभूत करता है। अर्थात् मनुष्य की अमरता अथवा नित्यता ईश्वर में है।

ईश्वर के साथ अपनी एकता के ज्ञान से मनुष्य को ज्ञात होता है कि शरीर नाश के साथ उसका संपूर्ण विनाश नहीं हो जाता है वरन् उसका एक अंश नित्य है मनुष्य का जो अंश काल में है, उसका मन और शरीर, वह अनित्य है। लेकिन जो उसका आधार (द्रव्य) है वह नित्य है। ईश्वर का ज्ञान प्राप्त कर अपने अमरत्व की अनुभूति ही जीवन का लक्ष्य है। बिना ईश्वर को जाने अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता, न ही ईश्वर से सच्चा प्रेम हो सकता है। यह कहना कि प्रेम के लिए द्वैत आवश्यक है प्रेम के वास्तविक, स्वरूप को भूल जाना है क्योंकि प्रेम की प्रवृत्ति ऐक्य स्थापित करती है। अतः स्पिनोज़ा के ईश्वर को अद्वैत वेदान्तिक दृष्टिकोण से ही समझा जा सकता है।

गेटफ्रिड विल्हेल्म लाइबनिट्स (1646-1716 ई०) ने कहा है कि विश्व में मृत जड़ पदार्थ (Dead Matter) के समान कुछ भी नहीं है। सभी वस्तुएं चेतन हैं। यहां तक कि मानव शरीर भी चेतन अणुओं से बना है जिन्हें चिदणु कहते हैं। प्रत्येक जीवित शरीर में एक प्रभावी एन्टेल्की (Entelechy) चिदणु होता है। जीवों में इसी को आत्मा कहा जाता है। इस प्रकार आत्मा मुख्य चिदणु है। आत्मा सदैव एक ही द्रव के साथ नहीं रहती है। आत्मा केवल अपना शरीर सतत् मात्रा में बदलती रहती है, पूरी तरह से अलग आत्मा कोई नहीं है, यहां तक कि मृत्यु भी इस योग और परिवर्तन की प्रक्रिया में बाधक नहीं है। यह सिद्धान्त मेटामॉरफॉसिस (Metamorphosis) कहलाता है। आत्मा के शरीर से पृथक होने की प्रक्रिया के सम्बन्ध में

यही कहा जा सकता है कि न तो कोई पूर्ण रूप से जन्म है न ही पूर्ण मृत्यु। जिसे हम जन्म कहते हैं वह विकास और वृद्धि है जबकि जिसे मृत्यु कहते हैं वह ह्रास है।

इस प्रकार लाइबनिट्ज सतत् उत्पत्ति के सिद्धान्त को अस्वीकार करता है (Theory of Spontaneous Generation) । उसका मानना है कि प्रत्येक जीव एक निश्चित जीवाणु अथवा बीज से बनता है जहां उनमें एक निश्चित संगठन होता है। इसलिए न तो कोई निरपेक्ष उत्पत्ति होती है न ही मृत्यु। लाइबनिट्ज का कहना है कि आत्मा की एक स्थिति से दूसरी स्थिति के बीच का अंतर (जीवन और मृत्यु का अंतर) और कुछ नहीं वरन् चेतना की कम और अधिक मात्रा का अंतर है। इस प्रकार भूत और भविष्य की आत्मा की अवस्थाएं उसी प्रकार बताई जा सकती है जैसे वर्तमान की।

ध्यान देने योग्य है कि यह सिद्धान्त भी प्लेटो के समान ही आत्मा के पूर्व अस्तित्व और उसके निरन्तर बने रहने (Survival) को स्वीकार करता है। यह संवेदनशील आत्मा अन्य वस्तुओं के आरंभ के पहले से अस्तित्व में रहती है। किन्तु यह बुद्धि की उच्च्व अवस्था में तब आती हैं जब वह व्यक्ति जिसकी यह आत्मा है गर्भस्थ होता है और जब एक संगठित शरीर मानवीय शरीर के लिए प्रतिबद्ध होता है।

लाइबनिट्ज़ ने बाद तक आत्मा के बने रहने (Survival) की बात तो की किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया कि यह कैसे संभव होता है? क्या यह अन्य नक्षत्र में होता या एक ऐसे जगत में जो हमारे जगत से पूर्णतः भिन्न है। मानवीय आत्मा एक चिदणु है जो न केवल अन्य

चिदणुओं के समान है वरन् "यह पूरे विश्व का दर्पण है। सृजित वस्तुओं का दर्पण हैं तथा साथ ही यह ईश्वर (Deily) का भी प्रतिबिंब है।"[24] इस कारण सभी आत्माएं (Spirits) ईश्वर के सानिध्य में प्रवेश करती है। यह सभी 'City of God' के सदस्य हैं जो सर्वाधिक पूर्ण स्थिति है और महान शासकों द्वारा शासित है।

इस प्रकार लाइबनिट्ज़ ने अमरता के प्रश्न में एक नया तत्व जोड़ा है वह है विकास का सिद्धान्त (Principle of Progress) वह अन्य जगत की बात भी करता है जो उसके विचार में वर्तमान जगत से भिन्न नहीं है। उसका प्रचलित सूत्र है। "The present is big with the future and the future may be read in the past." लाइबनिट्ज के अनुसार विश्व में हर जगह अनन्तता है, साथ ही प्रत्येक चिदणु में भी। किन्तु चिदणु जो सीमित है उन्हें अपने विकास के लिए अनन्त समय चाहिए।

जॉन लॉक (1632-1716) का मानना था कि संपूर्ण ब्रह्माण्ड में मूलतः दो तत्व है पहला मानसिक (Spiritual) और दूसरा भौतिक (Physical) । मानसिक रूप आत्मा एक बुद्धिमान अमूर्त सत्ता है। लॉक ने आत्मा को शरीर के नियंत्रणकारी बल के रूप में माना है। इसी के द्वारा शरीर चलने योग्य होता है। चलायमान होने से शरीर पर जो प्रभाव पड़ता है उसी से अनुभव प्राप्त होता है और इस अनुभव से आत्मा सीखती है और विचार बनाती है। लॉक का कहना है कि क्योंकि आत्मा एक अभौतिक (Immaterial) सत्ता है इसलिए शारीरिक मृत्यु के पश्चात भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है। यद्यपि लॉक ने यह स्वीकार किया है कि इस पर

---

[24] Leibnitz, Principles of Nature and of Grace,

प्रभावी ढंग से तर्क नहीं किया जा सकता, इसलिए अमरता की कोई भी संभावना बुद्धि की जगह विश्वास पर ही टिकी है।

आयरिश दार्शनिक जार्ज बर्कले (1685-1753) ने मन (Mind) और आत्मा (soul) को पर्यायवाची माना है। जब हम मन की बात करते हैं तो हम आत्मा की ही बात करते हैं बर्कले के अनुसार वास्तविक अनुभव वह है जो मन के द्वारा होता है। मन अनन्त है इसलिए यह कभी मृत नहीं होता और मन का आध्यात्मिक सार ईश्वर समान ही है जिसने सारे संसार का सृजन किया है।

अनुभववादी ह्यूम का जन्म स्कॉटलैण्ड में हुआ। इनका समय 1711-76 ई० माना जाता है। ह्यूम ने किसी शाश्वत द्रव्य की सत्ता का निषेध किया है। ह्यूम का कहना है कि अन्य दार्शनिकों द्वारा आत्मा को आध्यात्मिक द्रव्य के रूप स्वीकार करना जिसमें अविच्छिन्नता, निरन्तरता और सारूप्यता है, अनुभव से समर्थित नहीं है। उनका कहना है कि हमें किसी द्रव्य रूप आत्मा का अनुभव नहीं होता है वरन् हम अपने अनुभव के आधार पर आत्मा को मात्र सतत् परिवर्तनशील अनुभवों का संघात कह सकते हैं। ह्यूम का कहना है- "For my part, when I enter most intimately into what I call myself, I always shemble on some particular perceptions or other of heat or cold, light and shade, love or hatred, pain or pleasure. I can never catch myslef at any time without a perception...... If any one upon serious and unprejudical

reflection, thinks he has a different notion of himself. I must confess can reason no longer with him."[25]

ह्यूम ने आत्मा के प्रत्यय को काल्पनिक सिद्ध करते हुए कहा कि जब अनुभवों में सादृश्य होता है और उनके अनुभूत होने में समय का अन्तराल बहुत कम होता तब हम भिन्न-भिन्न अनुभवों में एकात्मकता की कल्पना कर लेते हैं। इसी प्रकार हम दोनों अनुभवों के अधिष्ठान रूप में एक द्रव्य रूप आत्मा की कल्पना कर लेते हैं जो एक भूल है इस प्रकार ह्यूम ने नित्य आत्मा और उसकी अमरता दोनों को ही स्वीकार नहीं किया है।

काण्ट- (1724-1804) यद्यपि कांट ने एक तत्वमीमांसीय सत्ता के रूप में आत्मा के अस्तित्व और उसकी अमरता के लिए दिये गये परम्परागत तत्वों का खण्डन किया है। किन्तु फिर भी ऐसा नहीं है कि कांट आत्मा की अमरता में विश्वास नहीं करते थे। क्योंकि कांट ने संकल्प स्वातंत्र्य और ईश्वर के अस्तित्व के साथ आत्मा की अमरता को भी नैतिकता की पूर्व मान्यताओं में स्थान दिया है। कांट के अनुसार मनुष्य की नैतिक पूर्णता के लिए आत्मा को अमर मानना अनिवार्य है, क्योंकि नैतिक पूर्णता एक ही जीवन में प्राप्त नहीं की जा सकती है। कांट ने आत्मा की अमरता को सिद्ध करने के लिए नैतिक तर्क भी प्रस्तुत किया है जिसकी विस्तृत चर्चा एक पृथक अध्याय के रूप में आगे की जाएगी।

हेगेल (1770-1831ई०) जर्मन प्रत्ययवादी दार्शनिक ने आत्मा की अमरता के विचार पर विशिष्ट एवं स्पष्ट रूप से चर्चा नहीं की है। यद्यपि इस विषय से सम्बन्धित उनके कुछ विचार

[25] D.Hume, A. Treatise on Human Nature, Bk I Pt IV, Sec 6

'लेक्चर्स ऑन द फिलासफी ऑफ रिलीजन' में पाये जाते हैं। वास्तव में यह विवाद का विषय है कि हेगेल ने अमरता को उसके प्रचलित शाब्दिक अर्थों में स्वीकार किया है अथवा नहीं? प्रायः विद्वानों का मानना है कि हेगेल ने अमरता का शाब्दिक अर्थ नहीं लिया है।

पेली (1743-1805 ई०) ने अपनी पुस्तक Natural Theology के अध्याय 17 में कहा है हमें अपनी क्षमताओं को असीमित नहीं मानना चाहिए। अर्थात् हमें अपनी समझ (Understanding) पर भी पूर्णतः विश्वास नहीं करना चाहिए कि हमारी पांच ज्ञानेन्द्रियां हमें सभी वस्तुओं की जानकारी दे देती हैं अमरता के विषय में उनका कहना है कि यद्यपि इन पांच ज्ञानेन्द्रियों से हम अमरता के बारे में नहीं जान सकते, किन्तु संभव है कि अन्य जगत इस जगत से परे अन्य जगत भी हो लेकिन शायद हम उस स्तर तक नहीं उठ पाये हैं कि उनका अनुभव कर सकें। जैसा कि नवीन और सर्वाधिक प्रतिष्ठित शोध मानसिक क्रिया (Psychic Phenomena) के क्षेत्र में पांच इन्द्रियों से परे एक अन्य इन्द्रिय की संभावना की बात करता है। यद्यपि इस शोध के परिणाम पेली के समय उपलब्ध नहीं थे।

रूसी दार्शनिक एलेक्जेण्डर निकोलेविच रेडिशेव (Alexender Nikdayevich Radishchev) 1749-1802 ई० व्यक्ति की अमरता के विषय में अपने विचार On Man, His Mortality and Immortality नामक पुस्तक में दिए जो उनकी मृत्यु के बाद 1809 में प्रकाशित हुई। रेडिशेव का मानना था कि आत्मा किसी भी तरह शरीर पर निर्भर नहीं है। अतः शारीरिक मृत्यु के समय इसे नष्ट भी नहीं किया जा सकता।

१६वीं शताब्दी में जर्मनी के मनोवैज्ञानिक दार्शनिक गुस्ताव फेकनर (1801-1887 ई०) का मानना था कि स्मृति स्वयं आत्मा की अमरता के लिए साक्ष्य है। उनका तर्क इस प्रकार है कि हम अपने प्रतिदिन के अनुभव में बहुत सी वस्तुओं को देखते हैं जिनके बारे में सचेत न रहते हुए उन्हें भविष्य के लिए स्मृति में संचित भी नहीं करते हैं, किन्तु फिर भी इन्हें हम किसी भी समय याद कर सकते हैं, क्योंकि स्मृतियाँ कभी नष्ट नहीं होती ये सदैव बनी रहती है। जैसे स्मृतियाँ आत्मा के मन में संचित रहती हैं उसी प्रकार आत्मा ईश्वर के मन में रहती है जो कभी नष्ट नहीं होती। अतः सदैव अस्तित्व में बनी रहती है।

जॉन स्टुअर्ट मिल (1806-1873) अंग्रेज दार्शनिक और अर्थशास्त्री ने आत्मा की अमरता के विषय में अपेक्षाकृत मध्यम मार्ग अपनाया है। मिल का कहना था कि उसे न तो अमरता के पक्ष में पर्याप्त प्रमाण मिले है न ही अमरता के विरूद्ध पर्याप्त प्रमाण प्राप्त हुए हैं; मिल का अनुमान है कि धार्मिक अनुभव के आधार पर दिए गए प्रमाण से अमरता की आशा के लिए स्थान बना रहता है। मिल जैसे अनुभववादी के इस दृष्टिकोण से सकारात्मक संकेत प्राप्त होते हैं।

विलियम जेम्स (1842-1910) प्रसिद्ध अमरीकी दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक ने अपनी पुस्तक (Principles of Psychology) प्रिसिंपल्स ऑफ साइकोलॉजी के अध्याय १० में आत्मा के विषय में विचार किया है। जेम्स ने एक नित्य शाश्वत आत्मा का निषेध किया है और मन को चेतना का प्रवाह माना है जिसमें प्रत्येक अगला विचार पिछले विचार को समाहित किए रहता है। जेम्स का मानना है कि आजकल अमरता की माँग मूलतः धार्मिक है। उसका कहना है कि

अमरता में विश्वास के मुख्य आधार है प्रथम, हम अपने को इसके लिए योग्य समझते हैं दूसरे, हमारे अन्तर्भाग (ह्रदय) में हमारे प्रिय गहरी लोगों के प्रति उत्कण्ठा है, और उन्हें हम खोना नहीं चाहते हैं।

विलियम जेम्स के समान शिलर जैसे अन्य अर्थक्रियावादियों ने भी स्वीकार किया हैं आत्मा की अमरता का विचार मानव के लिए लाभकारी है इसलिए अमरता में विश्वास किया जा सकता है।

फ्रेडरिक मेयर (1843-1901 ई०) इंग्लैण्ड के मनोवैज्ञानिक शोधकर्ता ने अपना पूरा जीवन पुरूष - स्त्री की अमरता की खोज में व्यतीत किया 'ह्यूमन परसेनलिटी एण्ड द सरवाइवल ऑफ बौडिली डेथ' (Human Personality and the Survival of Bodily Death) में उसने निश्चित रूप से असामान्य और रहस्यात्मक अनुभवों की क्रमिक चर्चा की है जो आत्मा की वास्तविकता (Realtiy) सिद्ध करते हैं। उनका मानना था कि आत्माओं का जगत भी विज्ञान के मौलिक सिद्धान्तों से नियंत्रित होता है। इन नियमों की खोजों के द्वारा हम अन्य जगत का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और उसके साथ संपर्क कर सकते हैं। वह मानता है कि इन नियमों के ज्ञान के साथ हम आत्माओं के जगत से सार्थक सम्पर्क की आशा कर सकते हैं।

स्काटिश दार्शनिक एन्ड्रू सेथ प्रिंगल पेटिसन (1856-1931) का विश्वास था कि अमरता संभव तो है लेकिन हम उसकी गारंटी नहीं दे सकते संभवतः पूर्ण और शुभ ईश्वर उस मानव का विनाश नहीं कर सकता जिसे उसने बनाया और जिसे उसने व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रदान की है।

किन्तु पेटिसन का यह भी कहना है कि यह ईश्वर की इच्छा पर है कि वह किसे अमरता प्रदान करें और किसे नहीं। यहाँ ऐसा लगता है कि पेटिसन ने सीमित अमरता को अपनाया है।

मैक्टागार्ट (1866-1925 ई०) के अनुसार परम तत्व (Absolute) वैयक्तिक आत्माओं की समष्टि मात्र है। इससे भिन्न कुछ नहीं है। मैक्टागार्ट ने ईश्वर को सृष्टा रूप में नहीं माना है। उनकी मान्यता थी कि प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र और अमर है और समष्टि इन्हीं आत्माओं की व्यवस्थित एकता का नाम है। इस समष्टि या परमतत्व की कोई स्वतंत्र आत्मा नहीं है। वह आत्म चेतना विहीन है। यह उस संघ के समान है जिसमें व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता और अद्वितीयता को अक्षुण्ण रखते हुए पारस्परिक सहभाव से रहते हैं। ईश्वर सृष्टा नहीं है और अन्य मानवीय आत्माओं के समान ही परिमित है यद्यपि वह ज्ञान और शक्ति में इनसे श्रेष्ठ हो सकता है। अन्य परिमित आत्माओं के साथ वह भी नित्य और अमर है।

मैक्टागार्ट, प्रत्येक आत्मा को अमर मानते हुए यह कहते हैं कि वह अनेक जन्म ले सकता है। मैक्टागार्ट बहु जीवन सिद्धान्त (Doctrine of Plurality of Lives) में विश्वास रखते थे और उनका मत था कि कि अनेक जन्म होने पर भी आत्मा एक ही रहती है। वह नित्य है। उसका अस्तित्व अन्तहीन है। प्रश्न है कि शुद्ध और अन्तहीन आत्मा कैसे जन्म मरण के चक्कर में पड़ती है। मैक्टागार्ट का कहना है कि वह अपने अन्तहीन अस्तित्व की एक रूपता से ऊबकर स्वेच्छापूर्वक जन्म मरण श्रृंखला में उलझ जाती है।

मैक्टागार्ट के अतिरिक्त किसी भी नव्य हेगेलवादी विचारक ने प्रत्यक्ष रूप से अमरता की चर्चा नहीं की है। वे किसी न किसी निरपेक्ष (Absolute) तत्व में विश्वास करते हैं जो अन्तिम सत्ता (Ultimate Reality) है और जिसमें व्यक्ति (Individual) लीन (merge) हो जाता है। इसलिए यहां व्यक्तिगत अमरता जैसी कोई बात नहीं है। आत्मा को केवल इस रूप में अमर मान सकते हैं वह निरपेक्ष ततव जिसमें उसका विलय हो जाता है, वह शाश्वत है।

२०वीं शताब्दी के दार्शनिक डी.जेड० फिलिप्स ने आत्मा की अमरता के विषय में एक भिन्न दृष्टिकोण अपनी पुस्तक 'Death and Immortality' में प्रस्तुत किए हैं। उनका कहना है कि भौतिकवादियों का यह कहना ठीक है कि आत्मा कोई अभौतिक द्रव्य नहीं है जो शरीर के नष्ट हो जाने के पश्चात् भी बना रहता है, क्योंकि मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् भी उसके बच जाने की बात करना स्वतोव्याघाती होगा । फिलिप्स का मानना है कि आत्मा की अमरता का अर्थ यह नहीं है कि मृत्यु के बाद कोई अभौतिक द्रव्य शेष रह जाता है। आत्मा किसी ऐसी वस्तु का नाम नहीं है जो हृदय की भांति मनुष्य के शरीर में रहती है। उन्होंने आत्मा की अमरता को मनुष्य के नैतिक और धार्मिक विचारों से संबंधित किया है। उनका कहना है कि आत्मा का अर्थ कोई अभौतिक वस्तु नहीं वरन् हमारे आचरण की पवित्रता है। आत्मा का प्रयोग अन्तरात्मा के संदर्भ में करते हुए उन्होने उसे उत्कृष्ट गुण अथवा उत्तम विश्वास कहा है।

अतः फिलिप्स के अनुसार आत्मा की अमरता का अभिप्राय है मानव जाति के इतिहास में अपने लिए महत्वपूर्ण स्थान बनाना। अपने महान कार्यों द्वारा मृत्यु के बाद भी सदैव याद किया जाना। शाश्वत जीवन का अर्थ ऐसे ढंग से जीना और मरना है जिसे मृत्यु निरर्थक न बना सके।

स्पष्ट है कि फिलीप्स व्यक्तिगत अमरता (personal immortality) की बात नही कर रहे हैं। वह व्यक्तित्व रहित अमरता में विश्वास करते है।

जहाँ तक तार्किक भाववादियों का प्रश्न है तो इनका कहना है कि तत्वमीमांसीय प्रश्नों के संबंध में अब तक तीन प्रकार के विचारक रहे हैं। पहले वह जो तत्वमीमांसीय सत्ताओं जैसे ईश्वर, आत्मा और उस आत्मा की अमरता आदि को पूर्णतः स्वीकार करते हैं। दूसरे वह जो इनका निषेध करते हैं और तीसरे सन्देहवादी था जिनका मानना है कि इन विषयों पर हम निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते। यहां तार्किक भाववाद का मानना है कि वास्तव में यह तीनों ही विश्वास गलत है, क्योंकि तत्त्वमीमांसीय कथनो को सत्यापित नहीं किया जा सकता है और जिन कथनों को सत्यापित नहीं किया जा सकता वह निरर्थक कथन है। तत्वमीमांसीय प्रश्नों का भी कोई अर्थ नही है। अतः आत्मा की अमरता की बात करना भी अनर्गल है।

अस्तित्ववादी दार्शनिक ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी दोनों ही आत्मा की अमरता के विषय में प्रत्यक्षतः कोई चर्चा नहीं करते हैं।

संवृत्तिशास्त्र में भी आत्मा की अमरता के संदर्भ में कोई स्पष्ट चर्चा नहीं की गई है। पाश्चात्य दर्शन में विभिन्न विचारकों एवं समकालीन दार्शनिक सम्प्रदायों में आत्मा की अमरता के संबंध में विचारों के विवेचन के पश्चात अब हम विश्व के प्रमुख धर्मों में अमरता संबंधी विचारों का अवलोकन करेंगे।

२.२ विश्व के प्रमुख धर्मों में अमरता संबंधी विचार

हिन्दू धर्म में आत्मा को जीवात्मा कहा गया है यद्यपि जीवात्मा का संबंध शरीर से है फिर भी वह शरीर, बुद्धि, इन्द्रिय इत्यादि से भिन्न है। हिन्दू धर्म में आत्मा को मूल रूप में चेतन माना गया है जो शाश्वत होने के कारण अपने वास्तविक रूप में अपरिवर्तनशील है। इसी कारण हिन्दू धर्म आत्मा की अमरता में थी विश्वास करता है। साथ ही हिन्दू धर्म का कर्म संबंधी सिद्धान्त थी आत्मा की अमरता को पुष्ट करना है। कर्म सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति को अपने किये गये कार्यों का फल अवश्य मिलता है अर्थात् मनुष्य को शुभ कर्मों के अनुपात में शुभ फल तथा अशुभ कर्मों के अनुपात में अशुभ फल मिलता है। दूसरे शब्दों में कर्म सिद्धान्त के अन्तर्गत कृतप्रणाश (किये गये कर्मों का फल नष्ट होना) नहीं पाये जाते। चूकिं आत्मा अपने कर्मों का फल एक ही जीवन में प्राप्त नहीं कर सकती अतः फल भोगने के लिए आत्मा के लिए पुनः जन्म ग्रहण करना आवश्यक हो जाता है। आत्मा नित्य एवं अविनाशी है तथा मृत्यु के पश्चात् एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करती है। अर्थात् मृत्यु का अर्थ शरीर का अन्त है आत्मा का नहीं। भगवद्गीता में आत्मा की अमरता को पुष्ट करते हुए कई प्रमाण उपलब्ध होते हैं–[26]

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। (2/23)

---

[26] श्रीमद्भगवद् गीता II, 23

बौद्ध धर्म का आत्मा संबंधी विचार हिन्दू धर्म के आत्म विचार के प्रतिकूल है, क्योंकि जहां हिन्दू धर्म में नित्य आत्मा को प्रमाणित किया गया है वहीं बौद्ध धर्म में अनित्य आत्मा पर विश्वास किया गया है। बौद्ध धर्म के आत्मा संबंधी विचार को जान लेने के पश्चात् स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि आत्मा की अनित्यता अर्थात् परिवर्तनशीलता के साथ पुनर्जन्म और कर्म सिद्धान्त की व्याख्या कैसे सम्भव है जिन्हें बौद्ध धर्म स्वीकार करता हैं। बौद्ध दर्शन की विशेषता यह है कि इसमें नित्य आत्मा का निषेध करके भी पुनर्जन्म की व्याख्या की गई है। बुद्ध के मतानुसार पुनर्जन्म का अर्थ एक आत्मा का दूसरे शरीर में प्रवेश करना नहीं है, बल्कि पुनर्जन्म का अर्थ विद्वान प्रवाह की अविच्छिन्नता है। जब एक विज्ञान प्रवाह का अन्तिम विज्ञान समांप्त हो जाता है तब एक नये शरीर में नये विज्ञान का प्रदुर्भाव होता है। जो पुराने को अपने अन्दर आत्मसात करता है। इसी को बुद्ध ने पुनर्जन्म कहा है। बुद्ध ने पुनर्जन्म की व्याख्या दीपशिखा के सहारे की है। जिस प्रकार एक दीपक से दूसरे दीपक का जलाया जा सकता है, उसी प्रकार वर्तमान जीवन की अन्तिम अवस्था से भावी जीवन की प्रथम अवस्था का विकास सम्भव है। नए जीवन में पुराने जीवन का कर्मुल सुरक्षित रहता है। इस प्रकार बौद्ध धर्म नित्य आत्मा के अभाव में भी पुनर्जन्म और कर्म सिद्धान्त की व्याख्या करने में सफल हो जाता हैं।

यहूदी धर्म में भी मरणोत्तर जीवन में विश्वास किया जाता है। यहूदियों का मानना है कि एक दिन न्याय दिवस (Day of Judgment) अवश्य होगा, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को उसके किये हुए काम के अनुसार पुरस्कार व दण्ड मिलेगा। न्याय दिवस पर ईश्वर के आज्ञाकारियों को ईश्वर की सहभागिता और उसके प्रकाश में रहने का अवसर मिलेगा। यह शुद्ध पवित्र आत्माओं

का जीवन स्वर्गीय दूतों के समान होगा। मृत्यु के उपरान्त और न्याय दिवस 'आने तक आत्मा के वास के विषय में यहूदी धर्म में कई मत प्राप्त होते हैं । कुछ यहूदियों का मानना है कि मृत्यु के बाद ये आत्माएं शियोल (Sheol) में दुर्बल, क्षीण और निस्सहाय रहती है, जबकि इस शियोल वास के विपरीत कुछ यूहदी मानते हैं कि मृत्युकाल में ये आत्माएं पुनः ईश्वर के पास वापस चली जाती है और न्याय दिवस पर उन्हें उनके कर्मों के अनुसार स्वर्गीय या नरकीय जीवन प्राप्त होगा। इन दोनों से भिन्न कुछ यहूदियों ने एक मसीही राज्य के विषय में कल्पना की है जिसमें सभी मानव जाति का उद्धार होगा तथा इस मसीही राज्य में न पाप होगा और न शोक। अतः यहूदी किसी न किसी रूप में मरणोत्तर जीवन में विश्वास रखते है।

ईसाई धर्म का अमरता का विचार भी यहूदियों के विश्वास से प्रभावित था क्योंकि स्वयं ईसा मसीह और आरम्भिक काल के ईसाई धर्म के प्रचारक यहूदी थे। ईसाई धर्म में भी यहूदियों के समान ही न्याय दिवस तथा पुनरुत्थान को स्वीकार किया जाता है। ईसा मसीह ने अपने विषय में स्वयं अपने शिष्यों को बताया था कि मृत्यु के तीसरे दिन वह पुनः जी उठेंगे (मत्ती 12 : 40 ; 26 : 60-61) । सन्त पाल के अमरता संबंधी विचार थी कई स्थानों पर प्रतिपादित किये गये हैं (1 करिन्थ 15:3-8; 2 करिन्थ 5: 3-4)। देह के साथ आत्मा के पुनरुत्थान की बात थी सन्त पाल ने कई स्थलों पर लिखी है। 1 करिन्थ के अध्याय में 15 में अपने मत का विस्तारपूर्वक उल्लेख करते हुए सन्तपाल का कहना है कि न्याय दिवस के अवसर पर सभी मृतक अपनी देह के साथ जी उठेंगे ? इसके उत्तर में संत पॉल का कहना है कि मसीह मरे हुओं में से जी उठा हैं। क्योंकि वह उन्हें, मसीह के चेलों को स्पष्टतया दिखाई दिया। इसी प्रकार सभी मृतक

भी पुनरुत्थान दिवस में फिर जी उठेंगे। संत पॉल के अनुसार मृतकों में से फिर जी उठना मसीहियों के लिए उनका विश्वास वचन है। यदि मृतक फिर से जी नहीं उठेंगे तो मसीही विश्वास मात्र भ्रम ही होगा। (1 करिन्थ 15 : 16) अतः ईसाइयों की पुनरुत्थान की आशा किसी युक्ति पर आधारित नहीं है, बल्कि यह उनका विश्वास वचन मात्र है।

ईसाई धर्म के कुछ सम्प्रदायों में अमरता का विश्वास जीवन मूल्यों से सम्बन्धित किया गया है। यहां यह माना जाता है कि वे ही लोगों अमर होंगे जिन्होंने ईश्वरीय गुणों, मूल्यों और ईश्वर की आज्ञाकारी जीवन को प्राप्त कर लिया है। लूक रचित सुसमाचार के 20.35 में स्पष्ट लिखा है कि केवल मूल्यवान और योग्य व्यक्ति ही अमर जीवन के अधिकारी होंगे। अनंत जीवन का अधिकार ईश्वरीय प्रसन्नता और उसकी आज्ञाकारिता पर निर्भर करता है।

इस्लाम धर्म में भी आत्मा की अमरता पर विश्वास किया गया है। कुरान के अनुसार मानव में दो प्रकार के तत्व पाए जाते हैं एक नश्वर शरीर है और दूसरा उसमें ईश्वरीय तत्व होता है जिसे रूह या आत्मा की संज्ञा दी जाती है। यह बात सूरा 5.29 से स्पष्ट होती है- ''जब मैंने (खुदा ने) शरीर बनाया और इसे तैयार किया तब मैंने अपनी रूह इसमें फूंक दी।'' इस्लाम में भी मनुष्य की अंतिम गति के रूप में पुनरुत्थान एवं न्याय दिवस को ही स्वीकार किया गया है। जिसमें मनुष्य को कर्मानुसार स्वर्ग या नरक मिलता है। प्रसिद्ध इस्लामी विचारक मो० इकबाल ने व्यक्तिगत अमरता को स्वीकार किया है लेकिन उनके अनुसार इस पर सभी मानवों का अधिकार नहीं है। इसके लिए मनुष्य को अथक प्रयास करना पड़ता है।

"Personal immortality, then, is not ours as of right, it is to be acheived by personal effort." (Construction, P. 113)[27]

एक आम धारण यह है कि इस्लाम में पुनर्जन्म को स्वीकार नहीं किया गया है किन्तु नवीनतम शोधों के आधार पर कुछ विचारकों का मानना है कि इस्लाम में पुनर्जनम संबंधी विचार भी मिलते हैं।

नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एडवान्सस्टडीज, बंगलौर और जॉन टेम्पलटन फाउंडेशन, यू०एस०ए० द्वारा आयोजित जून 2001 में "विज्ञान और तत्वमीमांसा पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार" में प्रस्तुत शोध पत्र[28] में सुल्तान शाहीन ने इस्लाम में पुनर्जन्म संबंधी विचारों के बीज ढूढ़ निकाला। अपने पत्र में कुरान तथा अन्य कई इस्लामी तथा सूफी विचारकों के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए इस्लाम में पुनर्जन्म के विचार को सिद्ध किया है। उनके अनुसार कुरान में पुनर्जन्म को न मानने वालों को काफिर (Kafir) कहा गया है। साथ ही उन्होंने महान इस्लामी रहस्यवादी हज़रत जलालुद्दीन रूमी के विकास की प्रक्रिया को पुनर्जन्म के माध्यम से व्यक्त करते हुए अपने शोध पत्र में कहा है- "I died as mineral and became a plant, died as plant and rose to animal, I died as animal and I was Man. Why should I fear? when was I less by dying? Yet once more I shall die as Man, To roar with angels blest; But even from angdhood I must pass on....."

---

[27] Dr. Mohammad Iqbal, Constructions, 113.
[28] Times of India, Lucknow 2nd July 2001,

इसके अतिरिक्त सूरा 2 :28 का उल्लेख करते हुए शोध पत्र में कहा गया है। "And you were dead, and He brought you back to life. And he shall cause you to die, and shall bring you back to life, and in the end shall gather you unto Himself" इसमें 'You were dead' का अर्थ केवल यह है कि मृत्यु के पहले हम जीवित थे और 'In the end shall gather you unto himself' का वास्तविक अर्थ मोक्ष की प्राप्ति है जिसे प्रायः स्वर्ग या नरक के शाश्वत जीवन के रूप में लिया जाता है। यहां कुरान के कुछ अन्य अंशों को प्रासंगिक मानते हुए कहा गया है- "As the rains turn the dry earth into green thereby yielding fruits, similarly liod brings the dead into life so that thou mayest learn" (Chapter 8-Sura Iraf Meccan Verses 6-6-13). "And he sent dour rains from above in proper quantity and he brings back to life the dead earth, similarty ye shall be reborn." (Chapter 25 sura Zakhraf Meccan Verses 5-10-6)

शोध पत्र में पाकिस्तान के ईश्वरवादी डॉ० एम०एच० आब्दी के माध्यम से कहा गया है कि स्वर्ग के जीवन के पूर्व पुनर्जन्म होता रहता है। इस प्रकार इस्लाम में पुनरुत्थान और न्याय दिवस के साथ ही पुनर्जन्म के संबंध में भी विचार पाए जाते हैं।

अध्याय : तीन

अमरता के लिए तत्वमीमांसीय एवं धार्मिक प्रमाण

आत्मा की अमरता के स्वरूप और इसके ऐतिहासिक विकासक्रम की चर्चा करने के पश्चात् हम अपना ध्यान उन प्रमाणों पर केन्द्रित करेंगे जिन्हें आत्मा की अमरता की सिद्धि के लिए आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में प्रस्तुत किया गया है। मैंने इन प्रमाणों की चर्चा तीन शीर्षकों के अन्तर्गत की है- तत्वमीमांसीय और धार्मिक प्रमाण (Metaphysical and religious argument), नैतिक प्रमाण (Ethical Argument) और परामनोविज्ञान संबंधी प्रमाण (Evidence from Psychical Research) । इनका विवेचन क्रमशः तीन अध्यायों में किया जायेगा। प्रस्तुत अध्याय में तात्विक और धार्मिक प्रमाण पर विचार करेंगे।

३.१ तत्वमीमांसीय प्रमाण

तात्विक युक्ति में आत्मा को सरल और अविभाज्य माना गया है तथा इस कारण यह भी स्वीकार किया गया है कि उसका विनाश नहीं किया जा सकता है। अर्थात् वो अविनाश या अमर है। विनाश केवल सावयव पदार्थों का ही हो सकता है। जब इनके अवयव अलग-अलग हो जाते हैं अथवा विभाजित हो जाते हैं, तब ये नष्ट हो जाते है। लेकिन आत्मा के अवयव नहीं होते। अतः उसका विभाजन नहीं हो सकता और इस कारण उसका नष्ट होना असम्भव है। इस युक्ति का आशय है कि आत्मा मृत्यु के उपरान्त भी अस्तित्व में रहती है और उसका यह अस्तित्व

अन्तहीन होता है। दूसरे शब्दों में, आत्मा की अमरता को प्रमाणित करने के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध तात्विक युक्ति आत्मा को सरल मानने की मान्यता के साथ आरंभ होती है, जिसके आधार पर यह निष्कर्ष सम्पादित किया जाता है कि स्वाभाविक रूप से सरल और निरवयव आत्मा को खण्डित नहीं किया जा सकता। इसलिए आत्मा अविभाज्य है और अमर हैं।

इस युक्ति का बीज प्लेटो के विचारों में देखा जा सकता है। प्लेटो के संवाद 'फीडो' में आत्मा के विषय में यही कहा गया है कि आत्मा एक सरल द्रव्य है और इस अर्थ में यह निरवयव (Uncompounded) है। इस कारण यह अविनाशी है, और चूँकि मृत्यु और कुछ नहीं बल्कि विनाश ही है, अतः कहा जा सकता है कि आत्मा तात्विक रूप से अपने स्वभाव से ही मृत्यु को प्राप्त नहीं हो सकती। दूसरी तरफ शरीर को देखा जा सकता है कि यह विभिन्न तत्वों का संगठन है और इन तत्वों के बिखरने से अंततः यह नष्ट हो सकता है। स्पष्टतः आत्मा शरीर से भिन्न है। इसे न देखा जा सकता है, न स्पर्श किया जा सकता है। वाह्य परिवर्तनों का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है इसी कारण आत्मा अविवाशी है।

प्लेटो द्वारा प्रस्तुत युक्ति को बहुत से आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिकों ने स्वीकार किया है। आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में डेकार्ट ने यद्यपि आत्मा की अमरता के लिए न तो कोई युक्ति प्रस्तुत की है न ही कोई पृथक सिद्धान्त, लेकिन फिर भी प्लेटो की युक्ति में वर्णित आत्मा के सरल और अखण्ड स्वरूप को स्वीकार करते हुए उन्होंने मन और शरीर के सम्बन्ध में जो विचार दिये हैं उससे डेकार्ट के दर्शन में आत्मा की अमरता का सिद्धान्त निश्चित ही आपादित हो जाता है।

मन और शरीर के सम्बन्ध में डेकार्ट का कहना है कि ये दोनों परस्पर भिन्न हैं। शरीर स्वाभाविक रूप से विभाजित किया जा सकता है, क्योंकि विभिन्न अवयवों से बना है जबकि मन अविभाज्य है। जब हम मन के विषय में बात करते हैं तो हम अपने को केवल विचार करने वाली सत्ता (Thinking Being) के रूप में स्वीकार करते हैं और इस रूप में हमें अपना कोई अन्य पृथक भाग दिखाई नहीं देता। इस प्रकार हम पूर्णतः और अखण्ड रूप से एक है जबकि इसके विपरीत जो मूर्त और विस्तारवान वस्तुएं है, जो उनमें से किन्हीं के विषय में भी हम ऐसी कल्पना नहीं कर सकते कि इन्हें खण्डित नहीं किया जा सकता अथवा उन्हें विभाजित नहीं किया जा सकता। डेकार्ट के अनुसार छोटे से छोटे अवयव के भी विभाजन का कम से कम विचार कर सकते हैं। डेकार्ट के शब्दों में "There is a vast difference between mind and Body", from its nature, is always divisible, and that mind is entirely indivisible. For in truth, when I consider the mind, that is, when I consider myself in so far only as I am a thinking thing. I can distinguish in myself no parts,but I very clearly discern that I am somewhat absolutely one and entire........ But quite the opposite holds in corporeal or extended things; for I cannot imagine any one of them (how small so ever it may be) which I cannot easily sunder in thought, and which, therefore, I do not know to be divisible.[29]

डेकार्ट के द्रव्य की अवधारणा यह है कि द्रव्य वह है जो स्वतंत्र है, जो अपने अस्तित्व के लिए दूसरे (किसी अन्य सत्ता) पर निर्भर नहीं है। डेकार्ट ने जड़ और चेतन दोनों द्रव्यों को स्वीकार किया है। जड़द्रव्यों के संघात भौतिक वस्तुएँ हैं जो प्राकृतिक प्रक्रिया के माध्यम से (इनके

29. R. Descartes, Discourse on Method (London : J.M. Dent, 1912), P. 139

अणुओं के विखर जाने से) ही खडित हो जाते हैं। इस रूप में वह नश्वर हैं। जबकि अणु रुप में जड़ द्रव्यों को डेकार्ट ने True Created substance कहा है जिनका विनाश ईश्वरीय हस्तक्षेप के बिना संभव नहीं है। मानवीय शरीर भी इन्हीं अणुओं का संघात रूप है। जो अंततः इन अणुओं के बिखर जाने से नष्ट हो जाता है। इसके विपरीत डेकार्ट मन को A true substance an ens per se stance कहता है जिसका विभाजन किसी प्राकृतिक प्रक्रिया के माध्यम से न होकर केवल ईश्वर के द्वारा ही हो सकता है। चूँकि डेकार्ट ने मन को A true substance कहा है अतः डेकार्ट के द्रव्य सम्बन्धी अवधारणा से भी मन अथवा आत्मा की अमरता आपादित होती है।

लेकिन लाइबनिट्ज का कहना है कि डेकार्ट के विचारों से जिस प्रकार की अमरता आपादित होती है उसकी न तो कोई उपयोगिता है न ही हमारे लिए किसी प्रकार का आश्वासन। डेकार्ट ने मन को विशुद्ध द्रव्य माना है, किन्तु मन की विभिन्न अवस्थाएं और क्रियाओं को परिवर्तनशील माना है। इस पर आपत्ति करते हुए लाइबनिट्ज का कहना है कि यदि मन की क्रियाएँ परिवर्तनशील हैं तो अमरता किस अर्थ में स्वीकार की जाय? क्योंकि ऐसी दशा में कुछ भी स्थायी नहीं रहेगा। स्मृति भी सम्भव नहीं होगी और साथ ही पुरस्कार और दण्ड संबंधी संकल्पनाएं भी प्रासंगिक नहीं रह जायेगी। तब अमर कौन होगा? लाइबनिट्ज ने अपने पक्ष में चीन के राजा का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हुए कहा है कि- 'What good, Sir, would it do you *to become King of China, On Condition that you forget what you have been?*

would it not be the same as if God, at the moment He destroyed you, were to create a King in China?"[30]

निश्चित रूप से यहाँ लाइबनिट्ज ने डेकार्ट के साथ न्याय नहीं किया है, क्योंकि डेकार्ट के अनुसार द्रव्य अनिवार्यतः चिन्तन करने वाली सत्ता है। डेकार्ट ने सोचने की अवधारणा को विस्तृत रूप में लिया है। इसमें सभी मानसिक क्रियाएँ शामिल हैं। ये संदेह कर सकती है, समझ सकती है, स्वीकार कर सकती है, निषेध कर सकती है, कल्पना कर सकती है, प्रत्यक्षीकरण कर सकती है और साथ ही यह स्मरण भी कर सकती है। इस प्रकार यदि मन में स्मृति बनी रहती है तो सारे परिवर्तनों के बाद भी हमारी Identify (अनन्यता) की पहचान स्मृति के द्वारा बनी रहती है। अतः अमरता का विचार सार्थक है और इस स्थिति में लाइबनिट्ज द्वारा दिया गया, चीन के राजा का उदाहरण लागू नहीं होता। डेकार्ट के अनुसार स्मृति हमारे मन का कोई ऐसा भाग नहीं है जिसे मन से पृथक किया जा सके। मन की जिन क्रियाओं उल्लेख ऊपर किया गया है वे मन के गुण हैं और मन के लिए अनिवार्य है। ये मन में अन्तर्भूत हैं। मन इन्हीं से बनता है।

कार्टेजियन विचार (Cartesian Version) का खण्डन करते हुए भी लाइबनिट्ज ने स्वयं अविभज्यता के तर्क को स्वीकार किया है (Proof from indivisibility) । लाइबनिट्ज की तत्वमीमांसा में ब्रह्मांड (Universe) को निर्मित करने वाले अंतिम तत्व चिदणु हैं। लाइबनिट्ज के अनुसार चिद्णु वे द्रव्य हैं जो पूर्ण रूप से सरल और निरवयव हैं। यदि सभी भौतिक वस्तुएँ

30. G.W. Leibniz, Philosophische Schriften, Vol. 4 (ed. C.J. Gerhardt) (Hild esheim:Olms, 1960) P. 300

आकार और स्थान घेरने वाली हैं तो संभवतः चिदणु भौतिक वस्तुएँ नहीं है। चिदणु मानसिक गुणों से युक्त होते हैं। यद्यपि सभी चिदणु आत्मा कहे जा सकते हैं, लेकिन आत्मा शब्द उनके लिए सुरक्षित है जिनके पास स्पष्ट प्रत्यक्ष के साथ स्मृति भी हो जैसे जानवरों में। जबकि मनुष्य की ही आत्मा को बौद्धिक आत्मा कहा जाता है अथवा उसे मन की संज्ञा भी दी जाती है। क्योंकि उसमें प्रज्ञा के साथ अपनी स्वयं की चेतना भी रहती है। किसी भी स्थिति में सभी चिदणु प्राकृतिक रूप से अक्षुण्ण है। क्योंकि वे अणु या शुद्ध आध्यात्मिक द्रव्य हैं और उनके कोई अवयव नहीं हैं जिन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाया जा सके। न ही उनके पास स्थान है जो किसी वाह्य कारण से प्रभावित हो सके। चिदणुओं को चूँकि विभाजित नहीं किया जा सकता। अतः उनके नष्ट होने का भी कोई भय नहीं है। प्राकृतिक क्रियाओं से भी सरल द्रव्य के नष्ट होने की कोई संभावना नहीं है। साधारणतः उनको न तो उत्पन्न किया जा सकता है न ही नष्ट किया जा सकता है। चिदणुओं का समूचे रूप में ईश्वरीय सृजन के साथ आरंभ होता है और ईश्वर द्वारा ही उनका समूचे रूप में विध्वंस हो सकता है। जबकि सावयव पदार्थों का आरंभ और अंत क्रमशः उनके अवयवों के मिलने और बिखरने से होता है। लाइबनिट्ज के शब्दों में - "They can only begin and end all at once, that is to say they can only begin by creation and end by annihilation, where as what is compound begins or ends by parts."[31]

बर्कले एक अन्य प्रसिद्ध दार्शनिक है जिन्होंने आत्मा की सरलता के आधार पर उसकी अमरता को सिद्ध किया है। बर्कले ने भी प्लेटो और लाइबनिट्ज के समान आत्मा की अमूर्तता,

31. G.W. Leibitz, Philosophical writings (London, J.M., Dent; 1934) P. 3

अविभाज्यता एवं विस्तारहीनता स्वीकार करते हुए उसके अविनाशी होने को स्वीकार किया है। अपनी पुस्तक 'The Principles of Human Knowledge' में अपने विचार व्यक्त करते हुए बर्कले का कहना है कि 'We have shown that the soul is indivisible incorporeal, unextended, and it is consequently incorruptible Nothing can be plainer than that the motions, changes, decays, and dissolution's which we hourly see befall natural bodies (and which is what we mean by the course of nature) Cannot possibly affect an active, simple uncompounded substance: such a being, therefore, is indissoluble by the force of nature, that is to say, the soul of man is naturally immortal.[32]

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सर्वशक्तिमान ईश्वर भी आत्मा का विनाश नहीं कर सकता; ईश्वर तो आत्मा का नाश कर ही सकता है, लेकिन सामान्य नियम अथवा प्राकृतिक प्रक्रियाओं से आत्मा का नाश नहीं हो सकता है। बर्कले के शब्दों में "This does not mean that the soul is absolutely incapable of annihilation, even by the infinite power of the creator, who first gave it being. But only that it is not liable to broken, or dissolved, by the ordinary laws of nature or motion.[33]

सरलता और अविभाज्यता के आधार पर प्रस्तुत इस प्रसिद्ध युक्ति के विरूद्ध कई महत्वपूर्ण आक्षेप किए जाते हैं।

32. G. Berkeley, The Principles of Human Knowledge (London Nelson, 1949) P. 117
33. G. Berkeley, The Principles of Human Knowledge (London Nelson, 1949) P. 116

सर्वप्रथम इसके आधारवाक्य पर ही प्रश्न उठाया जाता है, क्योंकि इस आधारवाक्य की तत्त्वमीमांसीय पूर्वमान्यता (आत्मा के रूप में सरल और निरवयव द्रव्य की सत्ता है) को स्वीकार किए बिना इस युक्ति को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। अर्थात् जो दार्शनिक सरल द्रव्य की सत्ता को ही स्वीकार नहीं करते उनके लिए यह तर्क विश्वसनीय नहीं है और आधुनिक मनोविज्ञान भी आत्मा को सरल द्रव्य नहीं मानता है। आत्मा को विभिन्न शक्तिओं और क्रियाओं का संगठन मात्र समझा जाता है जिसमें स्थायी कुछ भी नहीं है।

साथ ही यदि आत्मा को एक अभौतिक द्रव्य के रूप में मान्यता दे भी दी जाय तो इससे केवल यह निष्कर्ष निकलता है कि इसके भौतिक अवयव नहीं है। किन्तु इसके मानसिक अभौतिक अवयव हो सकते हैं। प्लेटो ने स्वयं आत्मा के तीन भागों को स्वीकार किया था जिनसे उनका आशय था-

निम्नतर भाग या आत्मा की एन्द्रिक क्षमता जिसका नियंत्रण भावनाओं और क्षुधा से होता है।

मध्यवर्ती भाग आत्मा का तेजस्वी भाग (Spirited Element of the Soul) जिसका नियन्त्रण साहस और सम्मान के भाव (Sense of Honour) से होता है।

उच्चतर भाग अथवा बौद्धिक भाग, जिसका नियन्त्रण प्रज्ञा और सत्य के प्रति प्रेम के द्वारा होता है।

प्लेटो के अनुसार, वास्तव में ये क्रियाओं के तीन स्तर (level of functioning) हैं न कि आत्मा के तीन स्पष्ट भाग या अवयव। आत्मा अमरता को तभी प्राप्त कर सकता है जब उसकी बौद्धिक क्रिया अन्य क्रियाओं पर विजय प्राप्त कर लेती है। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि अमरता ऐसा पुरस्कार है जिसे अपने प्रयासों का द्वारा ही हम प्राप्त कर सकते हैं। अतः प्लेटो के अनुसार अमरता को सभी प्राप्त नहीं कर सकते, वरन् वे ही लोग प्राप्त कर सकते हैं जिन्होंने अपने प्रयास द्वारा बौद्धिक क्रियाओं द्वारा अन्य निचली क्रियाओं पर विजय प्राप्त कर ली हो।

अतः यहाँ यह तर्क लागू नहीं होगा कि सरल होने के कारण आतम अमर है। नहीं तो सभी व्यक्ति अमर होते जबकि प्लेटो के मत में ऐसा लगता है कि प्लेटो ने सीमित अमरता को माना है। अर्थात् अमरता तक हमारी पहुँच निश्चित नहीं है, कुछ विशिष्ट व्यक्तित्व ही अमरत्व प्राप्त कर सकते हैं।

कतिपय आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिकों ने भी एक आध्यात्मिक द्रव्य के रूप में आत्मा की सत्ता को अस्वीकार किया है। अपने इसी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए प्रसिद्ध अनुभववादी दार्शनिक डेविड ह्यूम का कहना है कि एक व्यक्ति की मानसिक स्थिति निरन्तर परिवर्तनशील रहती है। इस प्रकार किसी व्यक्ति का मानसिक जीवन कम या अधिक रूप में टुकड़ों में विभाजित रहता है; क्योंकि एक व्यक्ति में विभिन्न भावनाएं, संकल्प, विचार इत्यादि आते रहते हैं। जिनके आधार पर व्यक्ति की प्रेम, घृणा, मित्रता, शत्रुता जैसी मनोदशाएं अभिव्यक्त होती हैं जिसका अनुभव हम अपने सामान्य दैनिक जीवन में कर सकते हैं। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या

यह सभी व्यवहार किसी एक ही व्यक्ति के कहे जा सकते हैं या इस मानसिक परिवर्तनशीलता के होते हुए उन्हें 'एक व्यक्ति' (One individual) के रूप में कहना मात्र एक भाषायी अभिव्यक्ति है। ह्यूम का मानना है कि सभी अनुभव विभिन्न पुंजों में एकत्रित होते हैं, जिन्हें ह्यूम ने 'बंडल्स' (Bundles) कहा है। लेकिन साथ ही ह्यूम का कहना है कि इन विभिन्न बंडल्स को एकता के सूत्र में बांधने वाला कोई आनुभविक तत्व नहीं है। यही कारण है कि ह्यूम ने आत्मा के रूप में किसी तत्त्वमीमांसीय सत्ता का खण्डन किया है। अतः ह्यूम का कहना है कि अनुचिन्तन के आधार पर हम कोई स्थायी आत्मा प्राप्त नहीं कर पाते हैं। हम अपनी तथाकथित सत्ता की कितनी अधिक खोज क्यों न करें, यह कभी भी हमारी अनुभूति में प्रतीत नहीं होती है। यदि अन्तर्निरीक्षण के आधार पर हम अपनी आत्मा को जानने की कोशिश करें तो क्षणिक परिवर्तनशील आत्म प्रत्यक्ष के अतिरिक्त कोई स्थायी आत्मा देखने में नहीं आती। ह्यूम के शब्दों में- "For my part, when I enter most intimately into what I call myself, I always stumble on some particular perception or other, of heat or cold, light or shade, love or hatred, pain and pleasure. I never catch myself at any time without a perception......... If any one upon serious and unprejudiced reflection, thinks he has a different notion of himself. I must confess I can reason no lenger with him." [34]

ह्यूम के शब्दों में-" Any impression gives rise to the idea of the self, that impression must continue invariably the same, throught the whole course of

34. Hume, *Treatise on Human Nature*, BKI, Pt. IV, Sec. 6

our lives; since self is supposed to exist after that manner. But there is no impression constant and invariable. Pain and pleasure, greif and joy, passions and sensations, succeed each other, and never all exist at the same time. It cannot, therefore be from army of these impressions, or from any other, that the idea of self is derived; and consequently there in no such idea."[35]

आत्मा के विषय में लगभग ऐसे ही विचार अमेरिका के दार्शनिक विलियम जेम्स ने भी व्यक्त किए हैं। जेम्स ने आत्मा को चेतना का प्रवाह मात्र बताया है। लेकिन ह्यूम और जेम्स के मतों में भिन्नता यह है कि जहाँ जेम्स ने निरन्तरता (Continuty) को स्वीकार किया है वहीं ह्यूम निरन्तरता को भी स्वीकार नहीं करता।

कांट ने ह्यूम के आत्मा संबंधी विचारों का खण्डन करते हुए कहा कि विषयों और वस्तुओं की सम्बद्धता तब तक संभव नहीं है जब तक कि उनके मूल में चैतन्य की एकता न हो। लेकिन फिर भी, कांट का कहना है कि चैतन्य की एकता अर्थात् आत्मा को एक तत्त्वमीमांसीय सत्ता के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। कांट के अनुसार बिना मूल चेतना के समूह और परिवर्तन का अनुभव संभव नहीं है। क्योंकि यदि एक रेखा के बिन्दु के रूप में ABC तीन इन्द्रिय संवेदन प्राप्त हो रहे हैं तो इनका एक रेखा के रूप में ज्ञान तभी संभव है जब इन सभी इन्द्रिय संवेदनों के मूल में एक ही चैतन्य हो। इसी प्रकार किसी इन्द्रिय संवेदन अथवा ज्ञान की पुर्नपहचान तभी संभव है जबकि चैतन्य की एकता हो। इस प्रकार कांट के अनुसार चैतन्य की एकता अर्थात् आत्म हमारे सभी अनुभव अथवा ज्ञान की पूर्व शर्त है। There can be in us no mode of knowledge, no connection or unity of one mode of knowledge with one another, without that unity of consciousness which precedes all data of intution, and by relation to which representation of objects is alone possible.

---

35. Hume, Treatise on Human Nature, BKI, Pt. IV, Sec. 6

This pure original unchangeable consciousness I shall name transcendental appercaption."[36] इसी कारण कांट का कहना है कि ह्यूम जहाँ आत्मा को खोज रहे थे वहाँ आत्मा है ही नहीं। क्योंकि ह्यूम एक आनुभविक ज्ञेय विषय के रूप में आत्मा की तलाश कर रहे थे जबकि कांट का कहना है कि आत्मा हमारे सभी अनुभवों व ज्ञान की पूर्वशर्त है, पूर्वमान्यता है। इस प्रकार आत्मा विशुद्ध ज्ञाता है जो कभी ज्ञेय विषय नहीं बन सकती। इसे ही कांट ने अतीन्द्रिय समाकल्पन (Transcendental Apperception) कहा है। The transcendental self consciousness or pure ego which accompanies and connect all my representation, the subject of all judgements which I form is as the analytic recognized, the pressuposition of all knowing, but as such it can never become an object of knowledge. [37] लेकिन फिर भी कांट का कहना है कि आत्मा को एक तत्वमीमांसीय सत्ता के रूप में स्वीकार करने के लिए हमारे पास पर्याप्त आधार नहीं है, क्योंकि ज्ञान के लिए इन्द्रिय संवेदन और बुद्धि विकल्प दोनों ही आवश्यक है और आत्मा के विषय में इंद्रिय संवेदन प्राप्त नहीं होते, क्योकि आत्मा अनुभव का विषय न होकर समस्त अनुभवों का आधार है। इस प्रकार कांट ने आत्मा को अज्ञेय माना है। इसी कारण कांट का कहना है कि हम आत्मा के विषय में कुछ भी नहीं कह सकते कि आत्मा सरल है अथवा मिश्रित; मरणशील अथवा अमर। यद्यपि बाद में कांट ने आत्मा की अमरता को नैतिकता की पूर्वमान्यता के रूप में स्वीकार करते हुए इसके लिए नैतिक तर्क दिये हैं जिसकी विस्तृत चर्चा अगले अध्याय में की जाएगी।

आत्मा की अमरता के विषय में प्रस्तुत की गई 'आत्मा को सरल द्रव्य के रूप में मानने संबंधी युक्ति' के विरोध में कुछ दार्शनिकों ने यह कहा कि जिसे धीरे-धीरे विघटन से समाप्त नहीं किया जा सकता उसे एकाएक समाप्त किया जा सकता है। इसी कारण कांट के समकालीन मोसेस मेन्डेल्सन (Moses Mandelssohn) ने फीडोन (Pheadon) में आत्मा की अमरता के विषय में एक ऐसी युक्ति प्रस्तुत की जिससे आत्मा के एकाएक समापन का विकल्प भी समाप्त हो जाये।

36. कांट का दर्शन, सभाजीत मिश्र पृष्ठ 65
37 Kant, Critique of Pure Reason, P. 358-59

अपनी युक्ति प्रस्तुत करते हुए मेन्डेल्सन का कहना है कि आत्मा जब तक अस्तित्व में रहती है तब तक उसका अस्तित्व संपूर्णता के साथ रहता है। क्योंकि यह सरल है और इसके अस्तित्व के विषय में डिग्री का प्रश्न (Matter of Degree) नहीं है, और जब इसका अस्तित्व समाप्त होता है तो कुछ भी शेष नहीं रहता अर्थात् यह संपूर्णता में शून्य (Completely Nothing) हो जाती है। जिस क्षण आत्मा का अस्तित्व है और जिस क्षण उसका अस्तित्व नहीं है उसके बीच कोई समयान्तराल नहीं है, क्योंकि आत्मा के अस्तित्व को एकाएक समाप्त करने की बात है, चूँकि ऐसा होना असंभव है। अतः वह कोई समय नहीं है जबकि आत्मा के अस्तित्व को समाप्त कर दिया जाय।

मेन्डेल्सन की इस युक्ति का उत्तर देते हुए कांट का कहना है कि एक सरल द्रव्य के रूप में आत्मा की विस्तारात्मक मात्रा (Extensive Quantity) नहीं है क्योंकि इसके वाह्य भाग नहीं है अतः इसे विभाजन द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता। लेकिन साथ ही, कांट का कहना है कि आत्मा में तीव्रता या गहनता की मात्रा (Intensive Quantity) है, क्योंकि आत्मा में चैतन्यता की डिग्री है अथवा शक्तियों में गहनता की मात्रा है और यह मात्रा क्रमशः धीरे-धीरे घटते हुए शून्य हो सकती है। कांट के अनुसार सरल द्रव्य के रूप में आत्मा की तीव्रता अथवा गहनता की मात्रा धीरे-धीरे कम होते हुए समाप्त हो सकती है और ऐसी दशा में आत्मा का विनाश हो जायेगा। इसलिए सरलता के आधार पर भी आत्मा को अमर नहीं सिद्ध किया जा सकता।

अतः कहा जा संकता है कि सरल द्रव्य के रूप में आत्मा की अमरता को सिद्ध करने का तत्त्वमीमांसीय प्रयास युक्तियुक्त नहीं है।

कुछ ऐसी तत्वमीमांसीय युक्तियाँ हैं जो वैज्ञानिक आधारों पर प्रस्तुत की जाती है। इन्हें तत्वमीमांसीय इसलिए कहा जाता है, क्योंकि वे ऐसे वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं जो अनुभवाश्रित है, किन्तु उनके द्वारा हम प्राग्नुभविक निष्कर्षों पर पहुँचते हैं।

१६ वीं शताब्दी में वैज्ञानिकों ने ऊर्जा संरक्षण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसके अनुसार ऊर्जा का निर्माण या नाश नहीं किया जा सकता है। अपितु इसका एक रूप से दूसरे रूप में रूपान्तरण हो सकता है। ये रूपान्तरण यांत्रिक, ऊष्मीय, रसायनिक ऊर्जा, किसी भी रूप में हो सकता है। मुख्य रूप से ऊर्जा के दो विभाग किए जाते हैं। गतिज ऊर्जा (Kinetic Energy) और स्थितिज ऊर्जा (Potential Energy)। इसमें गतिज ऊर्जा गति से और स्थितिज उर्जा स्थिति में संबंधित है। इन दोनों प्रकार की ऊर्जा का योग सदैव समान ही होता है। अर्थात् संक्षेप में ऊर्जा संरक्षण के सिद्धान्त के अनुसार गतिज और स्थितिज ऊर्जा की मात्रा बढ़ या घट सकती है, लेकिन दोनों के योग में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

यदि आत्मा को भी ऊर्जा के स्त्रोत के रूप में स्वीकार किया जाय तो उसे भी शाश्वत स्वीकार करना होगा। अर्थात् कहा जा सकता है कि आत्मा की सत्ता नित्य है।

लेकिन वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत की गई इस युक्ति की सीमा यह है कि यह इस पूर्व शर्त पर आधारित है कि आत्मा को ऊर्जा के स्त्रोत के रूप में स्वीकार किया जाय। अर्थात् इस पूर्वमान्यता के बिना प्रस्तुत युक्ति का कोई महत्व नहीं है।

वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत की गई एक अन्य युक्ति के अनुसार रसायन शास्त्र में विभिन्न परमाणुओं को स्वीकार किया गया है जिनके संघात से विभिन्न वस्तुओं का निर्माण होता है। रसायन शास्त्र के ये परमाणु अविभाज्य हैं जबकि इनके संघात से बनी वस्तुएं नश्वर हैं। इन परमाणुओं को तत्व या element कहा जाता है, क्योंकि ये मौलिक या elementary है, अपरिवर्तनशील हैं, और अविनाशी हैं, और इस कारण नित्य हैं। यदि वस्तुओं के सम्बन्ध में ये तथ्य सार्थ हैं कि उनके मूल में अविनाशी और अविभाज्य नित्य परमाणु तत्वों की सत्ता स्वीकार की जा सकती है तो मनुष्य के विषय में भी इस सिद्धान्त की सार्थकता होगी। विभिन्न मानवीय अनुभवों तथा मानसिक क्रियाओं के मानवीय परिप्रेक्ष्य में तत्वरूप नित्य अनिवाशी ओर शाश्वत सत्ता के रूप में आत्मा को स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार आत्मा की अमरता सिद्ध होती है।

लेकिन रसायनिक परमाणुओं के आधार पर प्रस्तुत इस वैज्ञानिक युक्ति की कमी यह है कि इसमें आत्मा को भी रसायनिक परमाणु के समान स्वीकार करना होगा और बिना इस पूर्व शर्त के यह युक्ति तर्क संगत नहीं कही जा सकती है।

इन सब के अतिरिक्त अमरता के विषय में कुछ ऐसे विचार हैं जो आनुभाविक तथ्यों पर आधारित नहीं है अतः इन्हें विस्तृत अर्थ में तत्वमीमांसीय कहा जा सकता है मिलने अमरता के पक्ष में युक्ति नहीं दी है, लेकिन उसका मानना था कि विपक्ष की मान्यता भी आधारहीन है। जॉन स्टुअर्ट मिल का मानना है कि हम अमरता के विषय में अज्ञेयवादी रहते हैं। मिल के अनुसार भौतिक वस्तुओं का केवल कल्पित अस्तित्व ही होता है। क्योंकि हमें केवल अपनी संवेदनाओं को

व्याख्या के लिये उनका अनुमान करते हैं। हमारे विचार ओर भवनाएं न केवल जड़ वस्तुओं से भिन्न हैं बल्कि अस्तित्व की दृष्टि से वह दूसरे छोर पर कहे जा सकते हैं। इसी कारण मिल का कहना है कि हमारे विचार और भावनाएं अन्य किसी भी चीजों से अधिक वास्तविक है, ओर केवल यही वे चीजें है जिन्हें हम साक्षात् रूप से वास्तविक (real) मान सकते है। मिल के शब्दों में 'Feeling and thought are not merely different from what we call inanimate matter, but are at the opposite pole of existence........Feeling and thought are much more real than anything else; they are the only things, which we directlyt know to be real.[38] आगे मिल का कहना है कि हम इस बात के पक्ष में अपना मत कैसे दे सकते हैं कि जिस प्रकार संवेदनाओं सम्भावनायें अर्थात् तथा कथित भौतिक पदार्थ संवेदनाओं अभी या कुछ समय बाद समाप्त हो जाएंगी उसी प्रकार हमारी भावनाओं की श्रृंखला भी रुक जाएगी? अंततः मिल इस संबंध में साम्यानुमानिक निष्कर्ष की वैधता का कोई आधार नहीं मानते। इस प्रकार चूंकि भावी जीवन की सम्भावना के विषय में सकारात्मक और निषेधात्मक के दोनों ओर निश्चित प्रमाणों का अभाव है और सकारात्मक प्रमाणों के अभाव में निषेधात्मक निष्कर्ष निकालना तर्क संगत नहीं है।

इस विषय पर बिशप बटलर की प्रतिक्रिया मिल के विपरीत है। वह मिल के समान यह स्वीकार करते हैं कि इस प्रसंभाव्य अनुमान में कोई वैधता नहीं है, कि मृत्यु हमारी सभी प्रकार की कार्य करने की शक्तियों और सुख दुख की अनुभूति की क्षमताओं को समाप्त कर देती है,

---

[38] J.S. Mill, "Theism', in Three Essays on Religion (London : Longmans' 1874)

क्योंकि हम यह नहीं जानते हैं कि हमारी इन शक्तियों की कार्यशीलता किस पर निर्भर करती है? अतः हमें इस बात की भी जानकारी नहीं है कि ये शक्तियाँ स्वयं किस पर निर्भर करती है? इस प्रकार इस तथ्य में विश्वास करने का कोई आधार नहीं है कि मृत्यु हमारी क्रियाओं, विचारों एवं प्रत्यक्षा करने वाली मन की शक्तियों को नष्ट कर देती है, क्योंकि हम केवल इतना जान सकते हैं कि मृत्यु इन्हें हमारी दृष्टि से दूर कर देती है। लेकिन सदैव इस बात की संभावना बनी रहती है कि सभी वस्तुएं अपने सभी पक्षों में सुरक्षित बनी रहेगी, जब तक कि इसके विपरीत विचार को स्वीकार करने का पर्याप्त अधार न मिल जाए। बटलर का कहना है कि प्रकृति की अन्य वस्तुओं को देखकर हमें इस बात को अनुमानित करने का पर्याप्त आधार मिल जाता है कि भौतिक मृत्यु के बाद भी जीवित तत्वों (living agents) के विचार और क्रियाएं बनी रहती हैं। बटलर के अनुसार मृत्यु वास्तव में एक प्रकार का जन्म है। इसी आधार पर बटलर कहते हैं कि गर्भ से शिशु का बाहर आना, लार्वा (Catterpitlar) से तितली का निर्माण, चूजें का अंडे से बाहर आना भी वास्तव में एक जीवन का समापन और नवीन जीवन का आरम्भ है जिसके द्वारा वह नवीन व्यापक विस्तृत परिवेश में प्रवेश करता है। मृत्यु भी इसी प्रकार का एक जीवन परिवर्तन है। क्योंकि मृत्यु के बाद भी हमारे उच्चतर एवं समृद्ध अस्तित्व बनाए रखने की संभावना बनी रहती है।

यह साम्यानुमान और भी पुष्ट हो जाता है। जब हम मन और शरीर की विभिन्नताओं पर विचार करते हैं। यदि चेतना को एक सरल और अविभाज्य शक्ति के रूप में स्वीकार किया जाए तो यह उस भौतिक शरीर से पूर्णतया भिन्न है जो यौगिक (Compound) है और इस

कारण विभाज्य है। मानव अपने हाथ पैर अपने इन्द्रियाँ यहाँ तक कि अपने शरीर के अधिक से अधिक भाग की क्षति के बावजूद वही (same living agent) बना रहता है। men may lose their limbs, their organs of sense, and even the greatest part of these bodies and yet remain the same living agent [39]) हमारे संवेदन की क्षमता अमारे संवेदी अंगों पर निर्भर रहती है लेकिन हमारी स्मृति, कल्पना, तर्क की क्षमताएं (संवेदी अंगों पर निर्भर) नहीं होती। घातक बीमारियाँ जो हमारी भौतिक संरचना को तो धीरे-धीरे कमजोर कर देती है लेकिन हमारी समझ, भावनायें, चरित्र और सम्मान को शक्तियों को अंतिम समय तक प्रभावित नहीं करतीं।

तब हम ऐसा कैसे मान सकते हैं कि ये शक्तियां जो कि मृत्यु के पूर्व तक क्षतिग्रस्त नहीं होते हैं एकाएक एक घटना अर्थात् मृत्यु से नष्ट (समाप्त) हो जाते हैं; जिस घटना के परिणाम के बारे में वास्तव में हम कुछ भी नहीं जानते।

बटलर के द्वारा प्रस्तुत युक्ति पर प्रतिक्रिया करते हुए साम्यानुमान की वैधता को स्वीकार करने वाले एक अन्य आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक डेविड ह्यूम का कहना है कि ''इस प्रकार की युक्ति से बटलर की मान्यताओं के ठीक विपरीत निष्कर्ष निकाला जा सकता है। ''निद्रा जो कि शरीर का एक छोटा सा परिवर्तन है, हमारी आत्मा में एक अल्पकालिक अवसान उत्पन्न करती है। मन और शरीर की अपरिपक्वता शैशवावस्था में आनुपातिक रूप से देखी जाती है जो युवावस्था में समान रूप से परिपक्व हो जाती है। बीमारी की अवस्था में ये दोनों अव्यवस्थित

---

[39] Butter, The Analogy of Religion (oxford : Clarendon Press, 1897) P.22

रहते है और वृद्धावस्था में इनका क्रमिक ह्रास देखा जाता है। और इसके पश्चात् मृत्यु में दोनों का नाश होता है। मन अपने में मृत्यु के पहले जिन अंतिम लक्षणों को पाता है वह है अव्यवस्था, कमजोरी, मूर्खता, असंवेदनशीलता और ये ही मन के पूर्ण समाप्त होने की पूर्व स्थिति है"[40] ह्यूम का मानना है मृत्यु के प्रति अज्ञानता के आधार पर भावी जीवन को स्वीकार करने की युक्ति तभी सार्थक कही जा सकती है जबकि बटलर के अवैध तर्क को स्वीकार किया जाए। यदि सामान्य दृष्टिकोण से सोचा जाए तो मौलिक अवस्था के पूर्णतया परिवर्तित होने पर किसी भी वस्तु की संरक्षता को स्वीकार नहीं किया जा सकता। पेड़जल में, मछली हवा में और पशु धरती के अन्दर समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार एक छोटा सा वातावरणीय परिवर्तन भी घातक हो जाता हैं। अतः इस बात को कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि मृत्यु जैसे वृह्द परिवर्तन में, हमारे शरीर की संवेदनाओं और चिन्तनों अवयव समाप्त नहीं हो जाते हैं। 'Judging by the usual analogy of nature, no form can continue when transferred to a condition of life very differnt from the original one in which it was placed. Trees perish in the water, fishes in the air, animals in the earth. Even so small a difference as that of climate is often fatal. What reason then to imagine that an immense alternation, such as is made on the soul by the dissolution of its body, and all its organs of thought and sensation can be effected without the dissolution of the whole ?'[41]

---

40 D.Hume, On the Immortality of the soul: in Essays, Moral Political and Literary (oxford : oup, 1963) P. 602

41 D. Hume, 'On the Immortality of the soul, in Essays Moral, Political Literary (oxford : oup. 1963) p. 602, 3

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि बटलर की संपूर्ण युक्ति मन और शरीर के विषय में उनके द्वैतवादी और अभौतिकवादी दृष्टिकोण पर आधारित है। यदि बटलर के आधार वाक्यों को ही अस्वीकार कर दिया जए तो उसके आधार पर निकाले गए निष्कर्षों को भी अस्वीकार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त हम यह भी जानते हैं कि मस्तिष्क भी मानव शरीर का ही एक अंग है। जिसे 'Organ of relection' कहा जाता है। हमारी मानसिक शक्तियां और क्रियायें हमारे किसी अंग या अनेक अंग के समाप्त होने पर तो बच सकते हैं, किन्तु बहुत सी बीमारियाँ हमारे मस्तिष्क और फलस्वरूप मन की गतिविधियाँ को ही प्रभावित करती है और कभी-कभी यह प्रभाव गहरा और असाध्य हो जाता है। अतः बटलर की युक्ति को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार आत्मा की अमरता के संबंध में मिल और बटलर के विचारों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त आत्मा की अमरता को सिद्ध करने के लिए प्रयोजनमूलक तर्क भी दिए गए हैं जो भौतिक जगत की ऐसी वस्तुओं से संबंधित है, जिन्हें हम देखते हैं या अनुभव करते हैं। प्रयोजनमूलक युक्ति के विषय में एक विशिष्ट तथ्य यह है कि इसे सामान्य मनुष्य द्वारा भी समझा जा सकता है। इसके लिए किसी विशिष्ट बुद्धि की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि प्रायः प्रयोजनवादी दार्शनिकों की युक्तियां विशुद्ध विचार के स्थान पर विश्व की वास्तविकता पर आधारित होती हैं। प्रयोजनमूलक तर्क ऐसी वस्तुओं की रचना तथा क्रिया से संबंधित है जो कि हमारे लिए साधारण अनुभव के विषय हैं।

हम जानते हैं कि मनुष्य बौद्धिक क्रियाओं में व्यस्त रहता है जिसके आधार पर वह कुछ वैज्ञानिक और गणितीय ज्ञान प्राप्त करता है और जिसके लिए एक विशिष्ट योग्यता अपेक्षित होती है। साथ ही, मनुष्य स्वयं में कुछ आध्यात्मिक गुणों को विकसित करने का प्रयास करता है जिसके द्वारा वह आत्म त्याग के योग्य हो सके और भौतिक जगत से ऊपर उठकर उच्चतर शुभ को प्राप्त कर सके। इसके अतिरिक्त मनुष्य में सृजनात्मक शक्तियां भी होती है जो कला संगीत, साहित्य इत्यादि रूपों में अभिव्यक्ति होती है। मनुष्य के इस सृजनात्मक बल के (Creative Force) आधार पर मानवीय अस्तित्व का महत्व सिद्ध होता है। इस प्रकार मनुष्य एक आदर्श स्थिति को प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। यदि आत्मा का नित्य अस्तित्व स्वीकार न किया जाय तो सभी प्रकार की सृजनात्मक क्रियाएं, आध्यात्मिक गुण तथा बौद्धिक प्रयास अर्थहीन प्रतीत होते हैं। साथ ही, इस विश्व को तथा इसमें स्थापित चरम मूल्यों को तभी सार्थक माना जा सकता है जब इन्हें अनुभूत करने वाली किसी सत्ता के रूप में आत्मा को स्वीकार किया जाय और उसे नित्य भी माना जाय। मनुष्य को विश्व के सभी जीवों में सर्वाधिक प्रमुखता प्रदान की जाती है। यदि मनुष्य की मृत्यु के साथ उसे सदैव के लिए समाप्त माना जाय, तो न तो इस विश्व की सार्थकता सिद्ध होगी न ही इस विश्व में मनुष्य द्वारा स्थापित मूल्यों व आदर्शों की अतः ऐसी स्थिति में आत्मा के रूप में मनुष्य के एक भाग की अमरता अनिवार्य है।

लेकिन प्रयोजनमूलक युक्ति की कमी यह है कि ये साम्यानुमान पर आधारित है और साम्यानुमानिक निष्कर्ष निश्चित नहीं, बल्कि संभाव्य होते हैं। अतः इसके द्वारा भी आत्मा के अमरता की मात्र संभावना प्रकट होती है।

कुछ युक्तियाँ आत्मा की अमरता के विरोध में भी दी गई हैं। प्रथम युक्ति के अन्तर्गत माना जाता है कि मनुष्य प्रकृति का एक अंग है और उत्परिवर्तन (Mutation) तथा प्राकृतिक चयन का उत्पाद अथवा परिणाम है। इस प्रकार मनुष्य का जीवन एक विकासात्मक प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। यदि हम इस विकासात्मक प्रक्रिया के अन्य जीवों के मरणोत्तर जीवन को अस्वीकार करते हैं तो मनुष्य को मरणोत्तर जीवन कैसे प्रदान किया जा सकता है। फिर, दूसरी तरफ मनुष्य से उच्च स्तर के जीवों की सम्भावना भी बनी हुई है। अतः प्रकृति के सर्वाधिक विकसित जीव के रूप में मनुष्य को मरणोत्तर जीवन प्रदान नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अमर आत्मा वाली प्रजाति और बिना अमर आत्मा वाली प्रजाति के बीच कोई विभाजक रेखा भी खींचना संभव नहीं।

लेकिन इसके विरोध में यह कहा जाता है कि हमारी बौद्धिक तथा अन्य अध्यात्मिक क्रियायें भौतिक क्रियाओं की अपेक्षा अधिक मौलिक और श्रेष्ठ हैं। जबकि विकास का सिद्धान्त यह दावा करता है कि मनुष्य का बौद्धिक चिन्तन भी भौतिक प्रक्रिया का परिणाम है। लेकिन प्रश्न यह है कि हम यह कैसे जानते हैं कि विकास का सिद्धान्त सत्य है या कोई भी सिद्धान्त सत्य है। वास्तव में कोई भी सिद्धान्त मात्र विचार या अवधारणाएँ हैं जिन्हें हम उपयोग के लिए बना लेते हैं और जिनके द्वारा अपने अनुभवों को अर्थ प्रदान करते हैं। इसलिए हमारे अनुभव, जो आवश्यक रूप से मानसिक या आध्यात्मिक है, भौतिक क्रियाओं की अपेक्षा अधिक वास्तविक हैं। इस प्रकार यह अत्यन्त असंगत होगा कि विभिन्न अवधारणाएँ और सिद्धान्त, जो मानव मन की रचना है, अपने रचयिता की ओर ही पलट जाएं और यह सिद्ध करने लगे कि मानवीय मन को

मृत होना चाहिए। यह तो ठीक वैसी ही स्थिति होगी जैसी किसी उपन्यास का कोई पात्र लेखक को ही मार दें। जहाँ तक मनुष्य से श्रेष्ठ और विकसित जीवों का प्रश्न है तो इस दिशा में कोई वास्तविक साक्ष्य अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। यदि कोई श्रेष्ठ जीव है तो वह मानव से संपर्क क्यों नहीं स्थापित करता? प्राप्त सूचनाओं के अनुसार केवल इस ग्रह पर ही जीवन है और इसकें मानव ही एक ऐसी प्रजाति है जिसके पास अपनी भाषा है। अतः मनुष्य को मरणोत्तर जीवन से अलंकृत करना कोई दोष नहीं है।

मृत्योपरांत जीवन के विरोध में दूसरी युक्ति यह दी जाती है कि यद्यपि विचार और चेतना की स्थितियां रहस्यात्मक है और उनके स्वभाव पर दार्शनिक एक मत नहीं हो सके हैं लेकिन हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि चेतना मस्तिष्क की क्रियाओं पर आधारित है। इससे यह बात सामने आती है कि मृत्यु के साथ मस्तिष्क की क्रिया समाप्त होने पर चेतना भी समाप्त हो जाती है। इस तथ्य को समझने के लिए कि चेतना मस्तिष्क क्रिया पर आधारित है, EEG (Electro Encephalogram) का अध्ययन सहायक होगा जिसका प्रयोग मस्तिष्क क्रिया (Brain activity) की जाँच के लिए होता है। EEG के तथ्य के आधार पर मृत्यु के उपरान्त जीवन के विरोध में तर्क इस प्रकार दिया जा सकता है। मान लेते हैं कि EEG का एक निश्चित स्तर 'U' है जिससे नीचे EEG स्तर वाले व्यक्ति को गहरे निद्रा की अवस्था में माना जाता है। मृत्यु के बाद व्यक्ति का EEG स्थायी रूप से शून्य रहता है, इसलिए मृत्यु के पश्चात् व्यक्ति कम से कम गहरी निद्रा में रहता है। और गहरी निद्रा में व्यक्ति किसी प्रकार का विचार या प्रत्यक्ष नहीं

करता है और यदि मृत्यु के बाद जीवन है तो उसे विचार और प्रत्यक्ष करने में समर्थ होना चाहिए। अतः मृत्यु के बाद कोई जीवन नहीं है।

लेकिन इस मत के विरोध में मृत्योपरान्त जीवन में विश्वास करने वाले कहते हैं कि EEG के बारे में प्रस्तुत किए गए तथ्य मन और मस्तिष्क के बीच निर्भरता का कोई निर्णायक साक्ष्य प्रदान नहीं करते, क्योंकि EEG का प्रदर्शन असफल भी हो सकता है और इसकी रिपोर्ट त्रुटिपूर्ण भी हो सकती है। इसके अतिरिक्त यदि हम गहन निद्रा वाले व्यक्ति को देखें तो उसका मस्तिष्क निष्क्रिय दिखाई पड़ता है और उसकी आँखें गतिहीन रहती है। लेकिन यह अनुभव भ्रामक भी हो सकता है, क्योंकि आंतरिक स्थितियों को अनिवार्य रूप से वाह्य व्यवहारों से नहीं जाना जा सकता है। जब कोई गणित किसी कठिन समस्या पर ध्यान केन्द्रित करता है तो वह वाह्य रूप से तो जड़ दिखाई पड़ता है, लेकिन उसका मस्तिष्क अत्यन्त क्रियाशील रहता है अतः यह भी संभव है गहन निद्रा में निष्क्रिय प्रतीत होने वाला मस्तिष्क वास्तव में सक्रिय और विचारपूर्ण है। साथ भी यह तर्क भी असंतोषपूर्ण है कि चूँकि गहन निद्रा के समय का कोई अनुभव व्यक्ति याद नहीं कर सकता इसलिए उसे कोई अनुभव हुआ ही नहीं, क्योंकि यदि कोई व्यक्ति कोई अनुभव याद नहीं कर सकता तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उसने अमुक अनुभव किया ही नहीं। जैसे यदि मैं अपने प्रथम जन्म दिन का अनुभव याद न रख सकूँ तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मेरे प्रथम जन्म दिन का कोई अनुभव ही नहीं रहा होगा। इसी प्रकार व्यक्ति की गहन निद्रा के समय अनेक प्रकार के अनुभव हो सकते हैं चाहे उन्हें याद न भी किया जा सके। इस प्रकार मरणोत्तर जीवन के समर्थकों का कहना है कि यह सम्भव है कि

मृत्यु काल में भी अनेक प्रकार के अनुभव हुए है। पुनः यदि मस्तिष्क का EEG स्तर शून्य हो तो भी अमरता की संभावना समाप्त नहीं होती, क्योंकि अमरता की बात पूरी तरह भौतिक शरीर से भिन्न जीवन की बाता होती है। अमरता को मानने वाले भी मृत्यु के समय स्थूल शरीर का विनाश तो मानते ही हैं जिसके साथ मस्तिष्क की क्रिया भी समाप्त हो जाती है। अमरता के विरूद्ध तीसरा तर्क भौतिकवाद को सिद्ध करने का प्रयास करता है।

अमरता के विरूद्ध दिए गए द्वितीय तर्क में कहा गया था कि चेतना मस्तिष्क की क्रिया पर निर्भर करती है जबकि तीसरा और अंतिम तर्क इससे एक कदम आगे बढ़ते हुए कहता है कि चेतना मस्तिष्क की क्रिया ही है। प्रायः हम यह सोचते हैं कि मानसिक और शारीरिक (भौतिक्) दो भिन्न वस्तुएँ अथवा क्रियाएं है, लेकिन इस नवीन तर्क के अनुसार मानसिक भौतिक से भिन्न नहीं है, वरन् मानसिक चीजें भौतिक चीजों का ही एक उपवर्ग है और यही सिद्धान्त भौतिकवाद कहलता है, क्योंकि भौतिकवाद के अनुसार मानव जीवित शरीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। दूसरे शब्दों में भौतिकवाद यह स्वीकार नहीं करता कि मानव के पास कोई ऐसी आत्मा है जो चेतन तथा अभौतिक है। यदि भौतिकवाद सत्य है तो यह स्वीकार करना अनिवार्य हो जाता है कि जब एक व्यक्ति का शरीर नष्ट हो जाता है तो उसकी सभी मानसिक क्रियाएं भी बंद हो जाती है। साथ ही यदि भौतिकवाद सत्य है तो व्यक्ति बिना शरीर के शुद्ध चेतना के रूप में अस्तित्ववान नहीं हो सकता अर्थात् यदि भौतिकवाद सत्य है तो पुनर्जन्म संभव नहीं है और पुनर्जन्म अनिवार्य रूप से आत्मा की अमरता से जुड़ा हुआ है।

भौतिकवाद की मान्यता है कि मन और मस्तिष्क में घनिष्ठ संबंध है जिसे समझने के लिए किसी दार्शनिक या वैज्ञानिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। यदि हम किसी व्यक्ति के सिर पर गंभीर आघात करते हैं तो वो व्यक्ति चेतना खो देता है। इसके अतिरिक्त भौतिकवादियों का यह भी मानना है कि मन और शरीर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। यदि ये दोनों परस्पर भिन्न होते तो ऐसा संभव न होता। मन और शरीर के गहरे संबंध का उदाहरण देते हुए भौतिकवादियों का कहना है कि यदि एक छात्र प्रश्न पूंछने का फैसला करता है और अपना हाथ उठता है, तो यह प्रक्रिया एक प्रश्न पूछने के लिए विचार के रूप में मानसिक से आरम्भ होती है और छात्र के हाथ उठाने के रूप में अर्थात् भौतिक के रूप में समाप्त होती है। भौतिकवादियों के लिए यह मन और शरीर का अन्तर्सम्बन्ध भौतिक है और इसे भौतिक विज्ञान द्वारा सिद्ध भी किया जा सकता है। दूसरी तरफ यदि मन भौतिक न होकर आध्यात्मिक सत्ता है तो मन शरीर के अन्र्तसंबंध की व्याख्या नहीं की जा सकती, क्योंकि दोनों व्यक्ति प्राप्ति में कोई समानता नहीं है। अतः आध्यात्मिक द्रव्य के रूप में आत्मा का अस्तित्व नहीं है।

लेकिन भौतिकवाद के विरोध में कहा जा सकता है कि भौतिकवादियों का यह मत संगत नहीं है कि सहसम्बन्ध का अर्थ एक समान होना है जैसा कि उन्होंने मन व शरीर के विषय में सिद्ध करने का प्रयास किया हैं। यदि A और B दो प्रकार की चीजें हैं और दोनों के मध्य सहसम्बन्ध है तो यह नहीं स्वीकार किया जा सकता कि A प्रकार की चीजें B प्रकार की चीजों के समान ही है। इसी प्रकार यह भी नहीं कहा जा सकता कि सहसम्बन्ध के कारण मन और मस्तिष्क एक जैसे हैं या मानसिक घटनाएं मस्तिष्क की घटनाएं हैं।

इसके अतिरिक्त भौतिकवादी यह भी कहते हैं कि यदि आत्मा को आध्यात्मिक द्रव्य के रूप में मान्यता दी जाय तो आत्मा और शरीर के बीच अन्तर्सम्बन्ध एक रहस्य है, क्योंकि उनके बीच कोई सम्पर्क नहीं है। इस तर्क में छिपी मान्यता यह है कि यदि A B के सम्पर्क में नहीं है तो A B को प्रभावित नहीं करता। लेकिन यह मात्र मान्यता है जो भौतिक क्षेत्र में भी गलत सिद्ध होती है। उदाहरण के लिए चन्द्रमा पृथ्वी को प्रभावित करता है और ज्वारभाटा उत्पन्न करता है, लेकिन चन्द्रमा न तो पृथ्वी के सम्पर्क में है न ही आ सकता है। जिस प्रकार चन्द्रमा पृथ्वी को बिना किसी सम्पर्क बिन्दु के प्रभावित करता है उसी प्रकार आत्मा और शरीर के बीच भी ऐसा ही हो सकता है, क्योंकि प्रभाव और सम्पर्क दो भिन्न-भिन्न चीजें हैं।

इस तरह यह कहा जा सकता है अमरता के तथ्य को अप्रमाणित करना भी संभव नहीं है। क्योंकि मन और शरीर की परस्पर निर्भरता को अमरता के विरूद्ध मुख्य युक्ति के रूप में भौतिकवादियों के द्वारा प्रयोग किया गया है, किन्तु यदि अमरता को स्वीकार करने के लिए धार्मिक नैतिक और आनुभविक कारण हो तो इसके पक्ष में निष्कर्ष निकाला जाना अयौक्तिक (अयुक्तिपूर्ण) नहीं है। यह सोचा जा सकता है कि मन हमारे शरीर का प्रयोग एक यन्त्र के रूप में करता है और शरीर की मृत्यु के पश्चात वह कोई दूसरा यन्त्र भी खोज सकता है। यह भी संभव है कि वह बिना यंत्र के कार्य करने लगे। यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो न तो हम मन और शरीर के घनिष्ठ संबंध को अनदेखा कर सकते हैं और न ही इस तथ्य की उपेक्षा कर सकते हैं कि मन और शरीर के बीच कोई अनिवार्य संबंध नहीं है, क्योंकि शरीर के बिना मानसिक क्रियाएँ असंभव नहीं है।

हमने देखा कि किसी भी प्रकार की तत्वमीमांसीय युक्तियां या वैज्ञानिक आधार पर दिये गए तर्क आत्मा की अमरता को सिद्ध नहीं कर सकते। किन्तु साथ ही साथ, यह भी देखा गया कि अमरता को असिद्ध करने के लिए उसके विरूद्ध दिये गए प्रमाण भी युक्ति संगत नहीं है और भौतिकवाद स्वयं भी आलोचनाग्रस्त है। अतः हम कह सकते हैं कि आत्मा की अमरता को तत्वमीमांसीय या वैज्ञानिक आधार पर पूरी तरह न तो सिद्ध ही किया जा सकता है न ही असिद्ध।

इस प्रकार हम एक तटस्थ स्थिति में आ जाते हैं। इस विषय में विकल्प खुले हैं पुनः चर्चा के लिए। इसलिए अब हम धार्मिक आधार पर अमरता को सिद्ध करने के लिए दी गई युक्तियों की विवेचना करेंगे।

३.२ धार्मिक प्रमाण

आत्मा की अमरता को प्रमाणित करने के लिए धार्मिक आधार पर भी तर्क प्रस्तुत किए गए हैं। अमरत्व का धार्मिक आधार ईश्वर को स्वीकार किया गया है। ईश्वर पर आधारित इस धार्मिक तर्क में प्रायः ईश्वरवादियों ने ईश्वर में अनिवार्यतः विद्यमान कुछ नैतिक गुणों के आधार पर आत्मा की अमरता को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। ईश्वर में प्रेम, दया, न्याय इत्यादि नैतिक गुण पाए जाते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि उसका अपनी सृष्टि के साथ विशेष प्रकार का संबंध है। ईश्वर ने हम सबकी रचना की है और उसी ने हमारे मन में अमरता की इच्छा को भी उत्पन्न किया है। न्यायपूर्ण होने के कारण ईश्वर हमारी इस अमरता की इच्छा को

अपूर्ण नहीं रहने देगा, क्योंकि यह उसने स्वयं ही उत्पन्न किया है। यदि हमारी इच्छा अपूर्ण रह जाती है तो ईश्वर को न्यायी नहीं कहा जा सकता है। अतः वह हमारी इस इच्छा की पूर्ति के लिए आत्मा को कभी नष्ट नहीं होने देगा।

साथ ही ईश्वर में प्रेम और दया जैसे नैतिक गुण भी पाए जाते हैं। अर्थात् ईश्वर अपने द्वारा सृष्ट सभी जीवों से प्रेम करता है और वह उनके प्रति दयालु भी है। जैसे इस्लाम धर्म में ईश्वर को न्यायप्रिय के साथ-साथ अतिकरुणामय (रहीम) भी कहा गया है। पवित्र कुरान में नवें अध्याय को छोड़कर सभी अध्याय का प्रारम्भ बिस्मिल्ला हिर्रहमा निर्रहीम (करुणामय दयालु परमेश्वर के नाम) से होता है। इस्लाम का ईश्वर व्यक्तित्वपूर्ण है। ईश्वर ने मानव को बनाकर उसे नाश नहीं करना चाहा है। इसलिए जो ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हैं, उन्हें वह स्वर्गिक वास का आनन्द देकर सर्वदा संरक्षित रखेगा।

ईसाई धर्म में भी ईश्वर को करुणामय परमपिता कहा गया है। न्यायी होने के साथ ईश्वर मुख्य रूप से प्रेम है ओर वह यह नहीं चाहता कि पापी पाप में पड़ा रहे। उसके प्रेम का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि ईश्वर ने अपने प्यारे पुत्र को जगत में भेजा ताकि उसके बलिदान से सभी पापियों का उद्धार हो सके।

''ईश्वर ने जगत से ऐसा प्यार किया कि उसने अपना इकलौता पुत्र दिया, ताकि जो कोई उस पर विश्वास करें सो मृत्युदण्ड का भागी न हो, वरन् अनन्त जीवन प्राप्त करे।''-(योहन-३:१६)

ईसा ने बताया कि परम प्रेमी दयालु पिता ईश्वर गड़ेरिये के समान अपनी खोयी हुई भेड़ के समान पथभ्रष्ट पापियों को ढूँढ़ निकालने के लिए सर्वदा आँख बिछाये रहता है।

ईश्वर का यह प्रेम क्षमाशील है और पश्चातापी को फिर अपने शरण में लेने को प्रदर्शित करता है। जब ईसा को सलीब पर मृत्यु के लिए चढ़ाया गया तो उनका पहला वचन यही था : 'हे पिता! इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।' (लूक २३:३४)

अतः जिस प्रकार कोई पिता अपनी सन्तानों की (जिससे वो प्रेम करता है) हत्या नहीं कर सकता उसी प्रकार ईश्वर भी अपने द्वारा सृष्ट आत्माओं को नष्ट करने का प्रयास न करके उन्हें संरक्षित करने का ही प्रयास करेगा।

इसी मत का समर्थन करते हुए ईश्वरवादी विचारक ट्रूब्लड ने अपनी पुस्तक 'फिलास्फी ऑफ रिलीजन में कहा है कि अमरता पर विचार करने का सर्वोत्तम दृष्टिकोण वैज्ञानिक अथवा दार्शनिक नहीं वरन् धार्मिक ही है। अमरता के लिए व्यवहारिक दृष्टि से वैज्ञानिक प्रमाण व्यर्थ हैं तथा दार्शनिक तर्क अपूर्ण हैं, केवल धार्मिक तर्क ही लाभदायक और उपयोगी हैं। इसी प्रकार एक अन्य ईश्वरवादी दार्शनिक ए०ई० टेलर ने अपनी पुस्तक 'द फेथ ऑफ ए मारेलिस्ट' में इसी तर्क का समर्थन किया है। उनका कहना है कि ईश्वर विषयक समुचित सिद्धान्त के अभाव में मानवीय अमरता संबंधी सिद्धान्त के लिए कोई सुरक्षित आधार प्राप्त करना संभव नहीं है।

संक्षेप में, ईश्वरवादी विचारक अमरता के लिए धार्मिक युक्ति प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि हम सभी आत्म चेतना, बौद्धिकता तथा स्वतंत्रता से युक्त है और चूँकि ऐसी सत्ता के रूप में

सृष्टिकर्ता अथवा ईश्वर के साथ हमारा स्पष्ट रूप से संबंध है, अतः प्रेम मय ईश्वर हमें पूरी तरह से नष्ट नहीं होने देगा और हमारी आत्मा को अमर बनाये रखेगा। ईश्वरवादी विचारकों की युक्ति के आधारवाक्य को व्यक्त करते हुए कहा जा सकता है कि ईश्वर ने हमें अपने प्रतिबिम्ब के रूप में ही बनाया है। मानव, ईश्वरीय गुणों जैसे स्वतंत्रता, सृजन, बुद्धि आदि को प्रतिबिम्बित करता है। इसलिए उसके गुणों के भागीदार इसलिए मानव को अमर होना चाहिए।

'ईसाई धर्म के अनुसार ईश्वर ने छः दिनों में (जो वास्तव में युगों के समान है) सम्पूर्ण जगत् प्राणी, पशु और अंत में मानव को अपनी छवि में बनाया है। ईश्वर ने मानव को केवल अपने ही बिम्ब में नहीं बनाया, वरन् मानव को अपनी संपूर्ण सृष्टि पर अधिकार भी दिया (उत्पत्ति १ : २६-२७)। अतः मानव ईश्वर के समान ही नीतिवान एवं भाग्यशाली जीव है, और ईश्वर संपूर्ण सृष्टि पर अधिकार देकर मानव से आशा रखता है कि वह संपूर्ण संसार को इसकी इच्छानुसार रूप भी दे देगा।'[42]

कुरान में भी कहा गया है ''जब मैंने (खुदा ने) शरीर बनाया है और इसे तैयार किया तब मैंने अपनी रुह इसमें फूंक दी।'' (सूरा ५ : २६) अतः आत्मा (रुह) स्वयं ईश्वर तत्व रहने के कारण अमर और नित्य है।

किन्तु इसे अक्षरशः स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि अधिक से अधिक हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि हमारे सीमित मस्तिष्क और सृष्टिकर्ता के असीमित मस्तिष्क के मध्य

42. याकूब मसीह, तुलनात्मक धर्म दर्शन, पेज 168

एक आवश्यक समानता है। कोई भी ज्ञान जो हम अपूर्ण रूप से प्राप्त करते हैं ईश्वर के पास पूर्ण रूप में रहता है और साथ ही भिन्न प्रकार से रहता है। जैसे जिस भौतिक जगत के ज्ञान के लिए हमें एन्द्रिक ज्ञान की आवश्यकता होती है, ईश्वर को उसके लिए एन्द्रिक ज्ञान पर निर्भर नहीं होना पड़ता, क्योंकि जगत् तो उसी की रचना है। अधिक से अधिक हम कह सकते हैं कि हमारी मानसिक क्रियाओं और ईश्वर की मानसिक कार्य पद्धति के बीच एक अनुरूपता हो सकती है। किन्तु हमें यह कहकर बच नहीं जाना चाहिए कि यह अनुरूपता ईश्वर और उसकी अन्य रचनाओं (जैसे मानवेत्तर और उपमानवीय) के बीच नहीं हो सकती है जैसा कि प्रायः ईश्वरवादी विचारक कहते है यदि ईश्वरवादियों के अनुसार अमरता की विशिष्ट स्थिति विकलांग और कम बुद्धि वाले मनुष्यों को प्राप्त हो सकती है तो कुछ अंश तक बुद्धियुक्त चिम्पैंजियों को भी इससे अलग नहीं रखा जा सकता है। यदि मानव और मानवेत्तर दोनों को श्रेणी बद्ध किया जाय तो अधिकतर अमानवीय पशु स्वचेतनता और बौद्धिकता का अनुभव बहुत निम्न डिग्री तक कर सकते हैं। साथ ही बहुत से मनुष्य भी ऐसे हैं, जो स्वचेतनता एवं बौद्धिकता की अनुभूति निम्न डिग्री तक ही कर पाते हैं। अतः ऐसी स्थिति में ईश्वर के प्रेम और दया के लिए मनमाने ढंग से यह नहीं कहा जा सकता है कि यह पाश्विक जगत के किसी भी सदस्य को नहीं उपलब्ध होता और मानवीय जगत के सभी सदस्यों के लिए उपलब्ध होता है जैसा कि ईश्वरवादी विचारकों का दावा है। इस प्रकार केवल मानवीय वर्ग को ही ईश्वर के साथ स्थायी सम्बन्ध का अधिकार नहीं प्रदान किया जा सकता। ईश्वर की दया तो सभी पर है। मानवेत्तर जीवों में ईश्वर की दया इस रूप में है कि वे विकसित होकर मानव का रूप प्राप्त कर लेंगे। ईश्वरीय प्रेम सामान्य प्रेम की अवधारणा से भिन्न है। सामान्य प्रेम में इच्छा होती है और वह गुणों पर आधारित होता है।

इसके विपरीत ईश्वरीय प्रेम बिना शर्त (Unconditional) होता है और सभी प्राणियों के लिए समान रूप से होता है।

पुनः यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्यों ईश्वरीय कृपा के रूप में अमरता के लिए केवल ऐसी ही सत्ताओं को उपयुक्त माना गया है जो ईश्वरीय सम्पर्क का एक निश्चित सीमा तक सुखानुभूति प्राप्त कर सकते हैं। यदि ईश्वर पूर्ण हैं, शुभ है, आनन्द है, तो ऐसी स्थिति में उसे अपनी किसी रचनाओं के साथ सम्पर्क की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में उसने हमें ब्रह्माण्ड में एक सीमित भूमिका के लिए निर्मित किया है और 'पूर्णता' अपने पास रखी है। यदि ईश्वर व्यक्तियों को नष्ट नहीं होने देना चाहता तो यह ईश्वर का व्यक्तियों की ओर मात्र प्रेम और दया का ही परिणाम है। यदि अमरता ईश्वरीय दया पर ही निर्भर हैं तो इसे केवल उन प्राणियों तक सीमित नहीं किया जा सकता जो ईश्वरीय सम्पर्क का आनन्द ले सकने की क्षमता रखते हैं वरन् ब्रह्ममाण्ड के सभी प्राणी, जीव, जन्तु को ईश्वर के इस पवित्र प्रेम की आवश्यकता है। क्योंकि छोटे से छोटा जीव भी अपने अस्तित्व के खतरे को देखकर भागताहै अर्थात् अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखना चाहता है। अतः आक्षेप है कि ईश्वरवादियों द्वारा प्रस्तुत ईश्वरीय प्रेम और दया के रूप में मानवीय अमरता की यह युक्ति तभी सार्थक हो सकती है जब इसे मानवीय सीमा से आगे बढ़ाते हुए छोटे से छोटे जीव जन्तुओं पर भी लागू किया जाय।

किन्तु यह आक्षेप भी उचित नहीं है क्योंकि छोटे से छोटे जीव के अमरत्व की सार्थकता क्या होगी? कहीं अच्छा होगा कि वह विकसित होकर उच्चतर जीव मानव के रूप में अमरत्व प्राप्त करें। जैसा कि हम कह पहले भी कह चुके हैं कि ईश्वर की दया और प्रेम प्रत्येक जीव,

निम्नतर अथवा उच्चतर सभी पर होती है। ईश्वर अनन्त प्रेम तो सभी से करता है यह ग्रहण करने वाले पर भी निर्भर करता है वह इसे किस सीमा तक अथवा किस रूप में ग्रहण करता है। अतः ईश्वर पर यह आक्षेप नहीं लगाया जा सकता कि वह केवल उच्चतर जीव अर्थात् मानव को ही अपने प्रेम और दया का पात्र बनाता है।

ईश्वरवादियों द्वारा मान्य ईश्वर का एक मुख्य गुण है पवित्र न्याय। ईश्वर ही सर्वोच्च नैतिक नियम निर्माता ओर न्यायाधीश है जो इस बात का आश्वासन देता है कि अंततः दुष्कर्मों के न्याय के रूप में दंड और सत्कर्मों के लिए पुरस्कार प्रदान किया जाता है। लेकिन हम अपने वर्तमान जीवन में प्रायः ऐसा देखते हैं कि सुख और दुःख के बीच कर्मों के अनुसार आनुपातिक विभाजन नहीं है, क्योंकि विश्व में बहुत से ईमानदार सदगुणी व्यक्ति प्रायः दुःखी और कष्टप्रद जीवन व्यतीत करते हैं, और दूसरी ओर निर्दयी और दुष्कर्मी का जीवन अत्यन्त सुखी दिखाई देता है। इन सभी अन्यायपूर्ण असमानताओं का उत्तर यही है कि हमारा वर्तमान जीवन ही अंतिम नहीं है वरन् हमें अपने कर्मों का फल भावी जीवन में ईश्वर के द्वारा प्रदान किया जा सकता है। किन्तु यह बात तभी सार्थक होगी जब आत्मा की अमरता को स्वीकार कर लिया जाय। इस प्रकार ईश्वरवादियों ने ईश्वर को सर्वोच्च न्यायधीश के रूप में मान्यता प्रदान करते हुए आत्मा की अमरता को सिद्ध करने का प्रयास किया है।

ईश्वरवादियों द्वारा प्रस्तुत यह युक्ति आत्मा की अमरता के लिए प्रस्तुत की गई कांट की नैतिक युक्ति (जिससे अगले अध्याय में प्रस्तुत किया जाएगा) से भिन्न है। क्योंकि यहाँ ईश्वरवाद को आरम्भ से ही सत्य मान लिया गया है। जबकि कांट ने नैतिकता की पूर्वमान्यता के रूप में

ईश्वर के अस्तित्व और आत्मा की अमरता को स्वीकार किया है। ईश्वरवाद की पूर्वमान्यता के साथ आत्मा की अमरता के विषय में ईश्वर के पवित्र न्याय संबंधी यह युक्ति ईश्वर के प्रेम और दया संबंधी दी गई पूर्व धार्मिक युक्ति के समान ही बलवान है, किन्तु इसके आधार पर यह स्वीकार करना अत्यन्त कठिन है कि मृत्यु के बाद हमारे जीवन का अन्त नहीं हागा।

क्या पवित्र न्याय की इस युक्ति को मनुष्य के अतिरिक्त अन्य संवेदी जीवों तक विस्तृत किया जा सकता है? यह इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या सभी पशुओं को वास्तव में नैतिक प्राणी (Moral Being) कहा जा सकता है? ततैया (Wasps) और घोंघा (Snail) को नैतिक कर्ता नहीं माना जा सकता है, लेकिन बड़े जीवों के विषय में ऐसा निश्चितपूर्वक नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि बहुत से बड़े जीव जैसे घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली आदि ऐसे हैं जिनका अपने स्वामी (मनुष्य) के साथ बहुत अच्छा सम्बन्ध होता है और जो प्रायः आज्ञाकारिता और वफादारी का गुण प्रदर्शित करते हैं। साथ ही बहुत से जंगली पशु साहस और दृढ़ता (Perseverance) से युक्त होते हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि बहुत से मनुष्य भी निम्न नैतिक क्षमता वाले होते हैं।

आत्मा की अमरता को पुष्ट करने के धार्मिक विश्वास मुख्य रूप से दैवी प्रकाशना पर आधारित है। प्रकाशन वस्तुतः किसी छिपी हुई वस्तु के प्रकाशन को कहते हैं। धार्मिक अर्थ में प्रकाशना का अभिप्राय ईश्वर द्वारा स्व्यं पहल करके मानवों को अपने विषय में उस ज्ञान का बोध कराना है जिससे मानव के जीवन में लाभ पहुँचे और जिसे मानव स्वयं अपने प्रयासों से नहीं जान सकता है। इसलिए दैवी प्रकाशना के माध्यम से ईश्वर अपने स्वरूप, परम लक्ष्य, अस्तित्व, मानव की नियति को उद्घाटित करता है। किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि मानव में ईश्वर के

प्रति उत्कट जिज्ञासा, पिपासा और बेचैनी होनी चाहिए। मानव को ईश्वरीय प्रकाशना स्वप्नों, दिव्य दर्शन, आकाशवाणी, सन्त जन, उच्च मानव जीवन, दार्शनिक सूझ, मानव इतिहास, प्रकृति की सुव्यवस्थित रचना और इनकी अनूठी छटा के माध्यम से उपलब्ध हो सकती है।

गीता, वेद, बाइबिल, कुरान ये सभी पवित्र ग्रन्थ प्रकाशना के उदाहरण है। इन्हें इनके अनुयायी तर्क से परे मानते हैं। ईस्लाम का मानना है कि मुहम्मद पैगम्बर साहब पढ़े लिखे नहीं थे, अतः पवित्र कुरान जैसी पुस्तक उनके द्वारा रचित न होकर उन्हें ईश्वर द्वारा प्रदत्त हैं। पैगम्बर साहब को हीरा नामक पर्वत की खोह में ४० वर्ष की अवस्था में प्रथम इल्हाम (प्रकाशना) मिला, ऐसा ईस्लाम धर्म का मानना है। इस मान्यता के अनुसार कुरान ईश्वर की अन्तिम ओर पूर्ण प्रकाशना है जिसके द्वारा ईश्वरीय इच्छानुसार मानव का मार्ग दर्शन हो सकता है। इसे इस्लामी इमारत की ठोस नींव या आधार कहा जा सकता है। दैवी प्रकाशना इसलिए की गई है कि मानव बुद्धि ईश्वर को बिना उसकी सहायता के समझने में असमर्थ है।

दैवी प्रकाशन की चर्चा यहूदी और ईसाई धर्मों में भी देखने को मिलती है। यहूदियों की मान्यता है कि उनकी प्रथम पुस्तक ईश्वरीय प्रकाशना ही है। कुछ ईसाई विचारक भी बाइबिल को अक्षरशः ईश्वरीय वचन के रूप में स्वीकार करते हैं।

कुछ ऐसे महापुरूष जिन्हें नवीं या अवतार कहा जाता है, उनके जीवन उनकी शिक्षा एवं उनके निधन से ईश्वरीय प्रकाशना झलक जाती है। उदाहरण है- ईसा, कृष्ण, भूसा, पैगम्बर, बुद्ध, महावीर रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द आदि।

ईश्वर के अवतार के विषय में गीता ४.७.८ में स्पष्ट रूप से कहा गया है धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।"

कठोपनिषद, II, २३ अथवा I २, ३ तथा मुण्डक उपनिषद ३, २, ३ के अनुसार भगवान स्वयं अपने को भक्तों पर प्रकट होते हैं आत्मा विमृणुते तनूं स्वाम्। अतः बिना ईश्वर प्रकाशना के मानव स्व प्रयास से ईश्वरीय आज्ञा तथा मानव की अन्तिम गति के विषय में कुछ नहीं जान सकता।

जैन और बौद्ध धर्म में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते हुए भी दैवी प्रकाशना को स्वीकार किया गया है। इन धर्मों में महापुरुषों अथवा प्रवर्तकों ने ईश्वर का स्थान ले लिया है। महावीर स्वामी, गौतम बुद्ध जैसे महापुरूषों ने स्वयं अन्तिम सत्य का साक्षात्कार किया था। इन्होंने जीवन के आदर्शों व मूल्यों को आत्मसात किया था। इन प्रवर्तकों के उच्चतम आदर्शों की प्राप्ति से मानव को यह प्रेरणा मिलती है कि मानवीय जीवन भी उद्देश्यपूर्ण है और मानव जीवन का उद्देश्य उस उच्चतम आदर्श की प्राप्ति है या अन्तिम सत्य का साक्षात्कार करना है। यदि मानवीय अात्मा अमर न हो तो जीवन की उद्देश्य पूर्णता व्यर्थ होगी। इस प्रकार आत्मा को अमर मानना होगा।

प्रायः दैवी प्रकाशना को स्वीकार करने वाले लोगों की मान्यता है कि प्रकाशना के माध्यम से जो बोध हुआ है, निश्चित रूप से सत्य है। इस विषय में कोई संदेह नहीं किया जा सकता,

लेकिन यह स्पष्ट है कि यह विशुद्ध रूप से आस्था की बात है। इसके विषय में किसी भी प्रकार का बौद्धिक निर्णय देना संभव नहीं है।

यदि यह सत्य मान भी लिया जाय कि सर्वज्ञ, पूर्ण, विशुद्ध सृष्टिकर्ता अथवा उसके द्वारा नामित किसी वक्ता के प्रकाशना के दावे पर किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता, फिर भी यह तो अवश्य संदेह किया जा सकता सकता है कि कोई प्रकाशन वास्तव में ईश्वर का है या नहीं, अथवा जो व्यक्ति इसे व्यक्त कर रहा है वह वास्तव में ईश्वर द्वारा नामित किया भी गया है या नहीं?

इस प्रकार की प्रकाशना प्राप्त करने का दावा करने वालों के अनुसार अमरत्व में उनका विश्वास उतना ही दृढ़ है जितना सांसारिक वस्तुओं के अस्तित्व में। ऐसे ही किसी धार्मिक बोध ने कार्डिनल न्यूमैन का सारा जीवन ही बदल दिया था और कई वर्षों बाद उन क्षणों का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा था- "इस अनुभूति के सच्चे होने के बारे में मैं इससे भी अधिक निश्चित है कि मेरे हाथ और पैर है।" गाँधी जी ने भी एक बार कहा था कि ईश्वर की उपस्थिति का एहसास मुझे इस एहसास से भी अधिक गहरा होता है कि मेरे सामने कुर्सी और मेज है। मानव इतिहास में ऐसे उच्च स्तर के तुरत बोधों और दैवी प्रकाशना के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं।

लेकिन यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या ये अनुभूतियाँ सच्ची है अथवा अव्यवहित बोध के ये दावे सत्य है? क्या वास्तव में इस आधार पर अमरत्व को स्वीकार किया जा सकता है?

कुछ विचारकों का मानना है कि यद्यपि ऐसे अनेक बोध के दावे भ्रामक हो सकते हैं परन्तु इतना निश्चित है कि कुछ ऐसी अनुभूतियों में मनुष्य वास्तव में विश्व के आध्यात्मिक आधार के सम्पर्क में आता है। साथ ही उसे मानव नियति का बोध भी होता है। सी०डी० ब्राड और डब्ल्यू०टी० स्टेस आदि विचारकों के अनुसार ऐसी अनुभूतियाँ मूलतः वस्तुगत है जिसमें यथार्थ के ऐसे पक्ष का साक्षात्कार होता है जो साधारण अनुभव में प्राप्त नहीं होता। इस विषय पर संदेह व्यक्त करने वाले विचारक भी यह मानते हैं कि इन धार्मिक अनुभवों की सच्चाई को सिद्ध नहीं कर पाने का अर्थ यह नहीं है कि ये भ्रामक ही हैं। इसलिए यहां वह स्थगित निर्णय (Suspended Judgement) की बात करते हैं।

कुछ विचारक धार्मिक अनुभूति का पूर्ण निराकरण नहीं परन्तु उसकी सच्चाई पर गम्भीर शंका करते हैं जैसे रसेल ने कहा है कि एक रहस्यवादी के संसार की वास्तविकता या अवास्तविकता के विषय में मैं कुछ नहीं जानता, और मैं यह नहीं कहना चाहता कि यह अवास्तविक है और न ही उस अन्तर्दृष्टि या अन्तर्बोध की सच्चाई से इन्कार करना चाहूँगा। फिर भी मैं कहूँगा कि अपरीक्षित और असमर्थित अन्तर्बोध, जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सत्यों के ज्ञान का माध्यम माना जाता है, सत्यता की पर्याप्त गारंटी नहीं है।[43]

जबकि मनोवैज्ञानिक व्याख्या करने वालों के अनुसार, जिन लोगों ने इस जीवन में प्यार और सहानुभूति नहीं प्राप्त की है अथवा भय तथा हीनभाव से ग्रसित रहे हैं, उन्होंने अपने मन में अचेतन रूप से एक काल्पनिक संसार को गढ़कर उससे संतुष्टि पाने का प्रयत्न किया है।

किन्तु ये दृष्टिकोण उचित नहीं है वस्तुतः इस प्रकार की व्याख्या देने वालों का धार्मिक बोधों अथवा दैवी प्रकाशना से कभी प्रत्यक्ष नहीं रहा और वे प्रारम्भ से ही धर्म या किसी भी तरह की गहन अनुभूति के विरोधी रहे हैं। दैवी प्रकाशना को स्वीकार करने वाले विचारकों का कहना है कि जिन व्यक्तियों को इस प्रकाशना की अनुभूति होती है उनमें केवल तीव्रता से महसूस करने वाले संत ही नहीं है वरन् बहुत से साधारण तथा विनम्र व्यक्ति भी शामिल है जिन्होंने आत्मा की अमरता का अनुभव विचार या ध्यान के गहन क्षणों में किया है। इनमें यहूदी, ईसाई, मुसलमान, हिन्दू आदि सभी धर्मों के, विश्व के सभी क्षेत्रों, इतिहास के विभिन्न युगों के व्यक्ति हुए है। क्या अनुभूति की यह व्यापकता उनके आत्मगत होने के विरूद्ध एक सबूत नहीं और यदि ये अनुभूति सार्वभौम नहीं है तो इसका कारण यह है कि सार्वभौतिक रूप से इसे पाने का प्रयास नहीं किया गया है। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि इन अनुभूतियों में तमाम अंतर के बावजूद एक बात समान है। वह यह कि इसमें अनुभूतिकर्ता का संपर्क किसी ऐसी सत्ता (परमसत्ता) से होता है जो व्यक्ति से बहुत बड़ी है। साथ ही इस सत्ता से हमें शांति और प्रेम मिलता है तथा मानव की नियति का बोध होता है। दैवी प्रकाशन की अनुभूति की सत्यता के संदर्भ में दूसरा महत्वपूर्ण साक्ष्य 'अनुभूतिकर्ता की गुणवत्ता योग्यता' है। यद्यपि इस प्रकार के ज्ञान का दावा करने वालों में सनकी, पागल और धोखेबाज भले ही रहे हों लेकिन अधिसंख्यक लोगों की ईमानदारी पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता। पास्कल, न्यूमैन, रामकृष्ण परमहंस, गाँध, टॉलस्टाय जैसी हस्तियों को फरेब या षड्यन्त्र में संलग्न मानना अविवेकपूर्ण होगा। इन सभी का बौद्धिक और नैतिक स्तर उनके अनुभवों की सच्चाई का पर्याप्त आश्वासन देते हैं।

अन्तिम साक्ष्य के रूप में दैवी प्रकाशना के उपयोगी परिणाम इनकी सत्यता के अप्रत्यक्ष प्रमाण है। इन प्रकाशना के रूपान्तकारी प्रभाव अनुभूतिकर्ता के समस्त जीवन और आचरण पर पड़ता है। उनका जीवन शांति और आनंद से भर जाता है। ये अनुभव कमजोर को साहसी

---

43 Our knowledge of the External world: Russell, Bertarnd, George Allen and Unvirn, London, 1914, P. 3).

अध्याय : चार

अमरता के लिए नैतिक प्रमाण

आत्मा की अमरता के लिए दार्शनिकों द्वारा नैतिक युक्तियां भी प्रस्तुत की गई हैं जिनमें से एक मनुष्यों की ऐसी सार्वभौम केन्द्रीय इच्छा के आधार पर प्रस्तुत की गई हैं, जिसे उचित या शुभ माना गया तो कुछ मानवीय जीवन के मूल्यों के आधार पर रखी गई है, जबकि कुछ युक्तियाँ विशुद्ध रूप से नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित है। हम पहले केन्द्रीय मानवीय इच्छा तथा मूल्यों के रूप में प्रस्तुत की गई युक्तियों पर विचार करेंगे जिन्हें विशुद्ध रूप से नैतिक युक्ति नहीं कहा जा सकता है।

४.१ मानवीय इच्छाओं और मूल्यों पर आधारित

कुछ दार्शनिकों ने ऐसी केन्द्रीय मानवीय इच्छा को नैतिक आदर्श (Moral Ideal) के रूप में प्रस्तुत किया है, जो कि सार्वभौम रूप से की जाती है। यह इच्छा शुभ हैं अतः इसे पूरा होना चाहिए। इन दार्शनिकों का कहना है कि अमरता की इच्छा स्वाभाविक रूप से सभी मनुष्यों में पायी जाती है। साथ ही कोई भी केन्द्रीय मानवीय एवं सार्वथौम इच्छा है तथा कोई भी केन्द्रीय मानवीय एवं सार्वथौम इच्छा ऐसी नहीं है, जिसके अनुरूप अथवा जिसे सन्तुष्ट करने वाली वस्तु विश्व में न हो। उदाहरण के लिए, भूख की अनुभूति होने पर खाने की इच्छा सभी मनुष्यों में

स्वाभाविक रूप से पाई जाती है और इसे सन्तुष्ट करने के लिए विश्व में भोजन पाया जाता है। अतः अमरता की सार्वभौम इच्छा को सन्तुष्ट करने के लिए विश्व में अमरत्व का होना अनिवार्य है। लेकिन मिल ने इसके विरोध में कहा है कि अमरता की इच्छा जीवन की इच्छा को असीमित करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और क्या हम सभी के पास वास्तव में जीवन नहीं है चाहे वह सीमित समय के लिए ही क्यों न हो। साथ ही, यह मानना कि भोजन की इच्छा हमें व्यक्तिगत जीवन में सदैव यदि पर्याप्त भोजन खाने का आश्वासन देती है, सत्य नहीं है। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जा सकता है कि यदि किसी भी समय असंख्य लोगों को भोजन की इच्छा हो तो वास्तव में उन्हें बहुत कम या कुछ भी खाने को नहीं मिलेगा। अतः इस युक्ति की वैधता स्वीकार्य नहीं है।

जहाँ तक जीवन के मूल्यों पर आधारित आत्मा की अमरता की युक्ति का प्रश्न है तो इसके दर्शन हमें प्लेटो के विचारों में मिलते हैं। प्लेटो ने फीडो नामक संवाद में कहा है कि चूंकि आत्मा एक उच्च और महान सत्ता है, अतः यह सोचना बुद्धिमता नहीं हैं कि वह शरीर की नियति के साथ अनिवार्यतः जुड़ी होगी और शरीर की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाएगी। आत्मा सभी प्रकार के ज्ञान, सत्य एवं अर्थ के स्रोत शाश्वत, अपरिवर्तनशील और साररूप प्रत्ययों का साक्षात्कार करती हैं और इस प्रकार यह सत्य, सौन्दर्य, शुभ जैसे शाश्वत मूल्यों की भागीदार बनने के योग्य है। अतः सत्य, शुभ, सौन्दर्य जैसे कालरहित शाश्वत मूल्यों की भांति आत्मा को भी अभेद्य, नित्य एवं शाश्वत् स्वीकार करना होगा। जब किसी भी मूल्य के सर्वोच्च स्थिति का अनुभव किया जाता है तो अमरत्व की अनुभूति होती है। जैसे जब कोई व्यक्ति सौन्दर्य या प्रेम

की चरम स्थिति में पहुँच जाता है तो उसे भी एक सीमा तक अमर होने का एहसास होने लगता है। अतः आत्मा जो कि सत्य, सौन्दर्य, शुभता जैसे शाश्वत मूल्यों में भागीदार है निश्चित रूप से अमर होगी। प्लेटो ने अपने प्रमुख संवाद रिपब्लिक में एक अन्य युक्ति देते हुए कहा है कि प्रत्येक वस्तु के लिए एक विशिष्ट अशुभ होता है, जो उसे अन्ततः नष्ट करता है। उदाहरण के लिए अनाज फफूँदी लगने से, लोहा जंग लगने से, लकड़ी दीमक लगने से नष्ट हो जाती है। साधारण वाह्य वस्तुओं को नष्ट करने के लिए इस प्रकार के सामान्य अशुभ (Evil in general) पर्याप्त है, किन्तु मनुष्य जो सार रूप में आत्मा में है एक नैतिक सत्ता है, इसे नष्ट करने के लिए नैतिक अशुभ होंगे। तो आत्मा के लिए कौन सा विशिष्ट अशुभ है जो उसे नष्ट कर सकता है? निश्चित रूप से सभी प्रकार के 'दुर्गुणों' को ऐसे नैतिक अशुभ के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, जैसे अन्याय, कायरता, अज्ञानता आदि। ये सभी हमारे चरित्र को तो कई प्रकार से प्रभावित करते हैं किन्तु प्लेटो के अनुसार, आत्मा को प्रभावित नहीं करते और क्योंकि प्लेटो ने आत्मा को उच्च, महान, सरल, अविभाज्य सत्ता के रूप में स्वीकार किया है, इसलिए आत्मा को स्वयं अपनी भ्रष्टता (depravity) से भी नष्ट होना स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार आत्मा का विनाश न तो किसी भी नैतिक अशुभ से और न ही स्वयं संभव है। अतः आत्मा सदैव विद्यमान रहती हैं अर्थात् अमर है।

हल (Hull) विश्वविद्यालय, यू०एस०ए० के प्रोफेसर आर०डब्लू०के० पैटरसन का मत है कि इनमें से कोई भी युक्ति अधिक प्रभावशाली नहीं हैं क्योंकि यदि ऐसा मान भी लिया जाय कि विचारपूर्ण, निर्विकार, अपरिवर्तनशील, सारतत्व और आध्यात्मिक प्रत्ययों में आत्मा भागीदार है तो

इसमें यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि यह सन्ताओं के वास्तविक गुणों की भी भागीदार होगी अर्थात् अभेद्य और अविनाशी होगी। साक्षात्कार करना और समान होना ये दोनों अलग बाते हैं। साथ ही यदि यह मान भी लें कि आत्मा अपने दुर्गुणों से नष्ट नहीं होती तो यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि दुर्गुण आत्मा को विशिष्ट अशुभ है ही नहीं। संभवतः आत्मा का विशिष्ट अशुभ विस्मरण (Oblivion) है और सभी कुछ भूल जाने पर अन्ततः हमारा अस्तित्व पूर्णतः समाप्त हो जाताा है।[44]

अब हम आत्मा की अमरता के लिए नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर प्रस्तुत की गई युक्ति पर चर्चा करेंगे जिन्हें विशुद्ध रूप से नैतिक युक्ति की संज्ञा दी जाती है।

४.२ कांट द्वारा प्रस्तुत नैतिक युक्ति

आत्मा की अमरता के लिए नैतिक युक्ति को सशक्त रूप में आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक इमैनुअल काण्ट ने प्रस्तुत किया है। साथ ही उन्होंने आत्मा की अमरता के लिए प्रस्तुत अन्य युक्तियें का खण्डन भी किया है। अपनी पुस्तक Critique of Pure Reason में काण्ट ने तत्वमीमांसीय तर्कों के आधार पर अमरता को सिद्ध करने के सभी प्रयासों का खण्डन किया है। काण्ट के अनुसार Theoretical सैद्धान्तिक बुद्धि की गति गणित के अमूर्त संबंधों तथा आनुभाविक प्राकृतिक विज्ञानों तक सीमित है। आनुभविक मनोविज्ञान केवल मनुष्य के उस व्यक्तित्व के विषय में सत्य स्थापित कर सकते हैं, जिस रूप में वह ऐन्द्रिक जगत में क्रियाएं

---

44. R.W.L. Patterson, Philosphy and the Belief in alife after death, P. 109

करता है। इसके विपरीत जब कोई तत्वमीमांसक आत्मा को देश काल से परे एक तत्वमीमांसीप सत्ता के रूप में मान्यता प्रदान करते हुए एक अविभाज्य सत्ता के रूप में सिद्ध करने का प्रयास करता है तो वह मनोविज्ञान के तर्काभास (Park logisms of Ration Psychology) को उत्पन्न करता है। इस प्रकार अमरता में विश्वास को किसी निश्चित सिद्धान्त का रूप नहीं दिया जा सकता, बल्कि मात्र कुछ हद तक संभावना ही व्यक्त की जा सकती है। फिर भी काण्ट आत्मा की अमरता पर दृढ़ विश्वास करते थे। अपनी दूसरी कृति Critique of Practical Reason में काण्ट ने अपने इस विश्वास को नैतिक नियमों की कठोर मांग के रूप में स्वीकार किया है। एक पूर्ण नैतिक कर्ता (Perfect moral agent) वह है जो केवल नैतिक नियमों के अनुसार कार्य करता है तथा अपने कार्यो को प्रलोभन से रहित होकर करता है। अब यदि कर्त्तव्य के लिए कर्तव्य कार्य करना मनुष्य के लिए संभव है तो निश्चित रूप हम अपने को पूर्ण नैतिक कर्ता अथवा बना सकते हैं। यही कांट के अनुसार जीवन का आदर्श होगा, क्योंकि इसी में हमारे व्यक्तित्व की सच्ची पूर्णता निहित है। इस स्थिति को प्राप्त करना हमारा नैतिक कर्तव्य है अर्थात् इसे हमें प्राप्त करना चाहिए। क्योंकि कांट की मूल मान्यता यह भी है 'हमें करना चाहिए' इस कथन में 'हम कर सकते हैं' कथन निहित हैं। अतः हमें पूर्णता प्राप्त करना चाहिए से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हम पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं। (Ought implies can) लेकिन हम पूर्ण तब तक नहीं बन सकते जब तक कि हम शुद्ध बौद्धिक जीव (purely rational being) न हो जाय जो वासनातमक पक्ष पर पूरी विजय के बाद ही संभव है। कांट के अनुसार, यह पूर्ण आत्मविजय और फलस्वरूप शुद्ध बौद्धिकता प्राप्त करने में अनन्त समय लगेगा। वर्तमान जीवन या अनेक जीवन भी उसके लिए पर्याप्त नहीं है। अतः हम अनिवार्यतः अमर हैं।

लेकिन कांट द्वारा प्रस्तुत की गई नैतिक युक्ति को समझने के लिए कांट के नीतिशास्त्र को समझना आवश्यक है। अतः हम पहले कांट के नीतिशास्त्र की एक संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

प्रो० सभाजीत मिश्र का कहना है कि कांट ने क्रिटीक ऑफ प्रैक्टिकल रीजन के निष्कर्ष में कहा है कि "ऊपर तारों से खचित्र आकाश और मेरे भीतर विद्यमान नैतिक विषय इन दोनो बातो पर हम जितना ही विचार करते हैं उतना ही उनके प्रति प्रशंसा तथा भय मिश्रित श्रद्धा का भाव उत्पन्न होता हैं। तारों से खचित आकाश का तात्पर्य जहाँ प्राकृतिक जगत से है जो सार्वभौम और अनिवार्य नियमों का प्रदर्शन करता है वहीं नैतिक से कांट का तात्पर्य मनुष्य के उस अदृश्य व्यक्तित्व से है जिसके भीतर एक भिन्न प्रकार का जगत विद्यमान है। प्राकृतिक जगत से संबंधित होने के कारण मनुष्य स्वयं को प्राकृतिक नियमों की अनिवार्यता से नियंत्रित पाता है। किन्तु मनुष्य की नैतिक चेतना उसे प्राकृतिक स्तर से ऊपर एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में स्थापित करती है। क्रिटीक ऑफ प्योर रीज़न में तारों से खचित्त आकाश संबंधी प्रश्न का संतोष जनक और भावात्मक उत्तर मिल जाता है लेकिन मनुष्य की नैतिक चेतना संबंधी प्रश्न की दृष्टि से उसके निष्कर्ष निषेधात्मक हैं क्योंकि बुद्धि के प्रत्ययों से उस संबंध में कुछ प्रतिपादित करने का प्रयास व्यर्थ होने के साथ-साथ घातक भी है। लेकिन इस निषेधात्मक निष्कर्ष के पीछे काण्ट की सार्थक भावात्मक ध्वनि विद्यमान है क्योंकि उसके अनुसार जो क्षेत्र सैद्धान्तिक बुद्धि (Pure reason) के लिए दुर्लभ है वह व्यवहारिक बुद्धि के लिए खुला हुआ है। कांट का कहना है कि तत्वमीमांसा का यह अभिमान कि वह अतिन्द्रिय विषयों को भी जान सकती है नैतिकता और साथ ही धर्म को भी असुरक्षित बना देता है। इसीलिए अतीन्द्रिय विषयों के ज्ञान का निषेध करके कांट प्राकृतिक ज्ञान

के आगे एक रिक्त स्थान छोड़ देता है। और यह रिक्त स्थान ही व्यवहारिक बुद्धि के नियमों का कार्य क्षेत्र है। व्यवहारिक बुद्धि की यह मांग है कि यह रिक्त स्थान संकल्प की स्वतंत्रता, ईश्वर तथा अमरता के विश्वास से पूरित हो क्योंकि इनके अभाव में नैतिक जीवन असंभव हो जाएगा। अतः व्यवहारिक बुद्धि सैद्धान्तिक बुद्धि से आगे जाकर नैतिक दृष्टि से आत्मा, ईश्वर तथा स्वंतत्रता को अनिवार्य रूप से स्वीकार करने को विवश करती है। संक्षेप में, कांट का नीतिशास्त्र मात्र यह स्थापित करने का प्रयास है कि आत्मा, ईश्वर और स्वतंत्रता के प्रत्यय वास्तविक हैं लेकिन वह यह भी स्पष्ट करता है कि इन पारिमार्थिक सत्ताओं का कोई ज्ञान नहीं हो सकता इनकी वास्तविकता की मान्यता का आधार ज्ञान नहीं वरन् आस्था है। कांट के अनुसार आस्था कोरा विश्वास मात्र नहीं है, वरन् इसका एक विवेक पूर्ण आधार भी है। वस्तुतः कांट ने ज्ञान का निषेद्य आस्थ के लिए स्थान बनाने के लिए किया।

कांट के अनुसार मनुष्य तीन प्रकार के प्रेरकों से प्रेरित होकर कार्य कर सकता है। प्रथम, तात्कालिक संवेग अथवा सहज प्रवृत्तियों के वशीभूत होकर कार्य करता है। जैसे यदि किसी व्यक्ति को भूख लगे तो वह भोजन करता है, किसी व्यक्ति को गुस्सा आने पर वह दूसरे को मार देता है अथवा दया भाव उत्पन्न होने पर हम किसी की सहायता करते हैं आदि। द्वितीय व्यक्ति नियमों और विशेष रूप से नैतिक नियमों के अनुरूप कार्य करता है। इसमें भी दो प्रकार के कार्य होते हैं। पहले वे कार्य जो सामान्य नियमों के अनुसार तो किए जाते जाते है किन्तु किसी इच्छित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए। अर्थात् यहाँ नियम साध्य न होकर साधन होते है और साध्य इच्छित लक्ष्य है। जैसे यदि कोई गरीब व्यक्ति पुण्य प्राप्त करने की इच्छा से किसी गरीब व्यक्ति को दान

देता है, तो यहाँ लक्ष्य पुण्य प्राप्त करना है गरीब व्यक्ति की मदद करना चाहिए इस नियम के अनुरूप आचरण साधन मात्र है। दूसरे कार्य वे हैं जो व्यक्ति सामान्य नियम के अनुरूप ही करता हैं किन्तु किसी इच्छित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए नहीं वरन् नैतिक नियम के स्वयं के मूल्य के कारण अर्थात् यहाँ नैतिक नियम साधन न होकर स्वयं साध्य हैं। जैसे यदि हम सत्य बोलते हैं तो सत्य बोलना चाहिए इस नैतिक नियम के स्वयं के मूल्य के कारण न कि सत्य बोलने का लक्ष्य किसी अन्य लाभ की प्राप्ति है। कांट इन्हें क्रमशः सहेतुक आदेश और अहेतुक आदेश की संज्ञा देता है। उनके अनुसार अहेतुक आदेश ही सच्चे अर्थ में नैतिक नियम हैं।

इन नैतिक नियम के अनुरूप किये जाने वाले कार्यों को ही कांट नैतिक मूल्य प्रदान करता है। क्योंकि ये कार्य शुद्ध कर्तव्य की भावना से किए गए कार्य हैं किसी अन्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किये गये कार्य नहीं। नैतिक नियमों के अनुरूप कार्य का लक्ष्य कर्तव्य के लिए कर्तव्य करना है। (Duty for dutie's sake) न कि किसी इच्छित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए। कांट इन्हें ही शुभसंकल्प (Good will) से किए गए कार्य कहते है। उनके अनुसार नैतिक नियम के प्रति सम्मान की दृष्टि से किए गए कार्य अथवा अहेतुक आदेश के अनुरूप किए गए कार्य अथवा कर्तव्य की भावना से किए गए कार्य सब एक ही है और इन्हीं का नैतिक मूल्य है। (किन्तु केवल मानवीय संदर्भ में ही)।

ऐसे शुभसंकल्प को ही कांट अप्रतिबन्धित और निरपेक्ष शुभ मानते हैं। उनका मत है कि यह शुभ संकल्प ही सर्वत्र एवं सर्वदा अपने आप में शुभ है। इसका शुभत्व देशकाल और परिस्थितियों से उत्पन्न परिणामों पर निर्भर नही है। इस शुभ संकल्प के अतिरिक्त ऐसी किसी

अन्य वस्तु को कांट स्वतः साध्य शुभ और निरपेक्ष शुभ नहीं मानते। उन्होंने स्पष्ट कहा है "इस विश्व में अथवा इससे बाहर शुभ संकल्प के अतिरिक्त ऐसी किसी अन्य वस्तु की कल्पना करना ही नितांत असंभव है जो अपने आप में तथा निरपेक्ष रूप से शुभ हो।"[45]

कांट ने यहां यह स्पष्ट कर दिया है कि केवल शुभ संकल्प ही शुभ नहीं हैं विश्व में इसके अतिरिक्त अन्य शुभ भी है। जैसे ज्ञान, प्रतिभा, तर्कशक्ति, धैर्य, साहस आत्मसंयम, सुख, स्वास्थ्य, सम्मान आदि किन्तु ये कुछ निश्चित परिस्थितियों में ही शुभ हैं। सामान्यतः शुभ होते हुए भी ये शुभ संकल्प के समान निरपेक्ष शुभ नहीं है। क्योंकि इनका प्रयोग अशुभ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भी किया जा सकता है। जैसे स्वस्थ, साहसी, बलवान व्यक्ति अपने स्वास्थ्य साहस बल का प्रयोग दूसरों पर अत्याचार करने के लिए भी कर सकता है। इसी कारण कांट का कथन है कि शुभ संकल्प के अतिरिक्त विश्व में अन्य सभी वस्तुओं का शुभत्व सीमित और सापेक्ष है अर्थात् वे तभी तक शुभ है जब तक इनका प्रयोग शुभ संकल्प के साथ हो और जब तक उनका प्रयोग नैतिक नियमों के विरूद्ध अथवा अशुभ लक्ष्य की प्राप्ति के लिए न किया जाय।

कांट का कहना है कि शुभ संकल्प ही अन्य सभी वस्तुओं के शुभत्व का आधार है। उसी कर्म का नैतिक मूल्य है जिसमें शुभ संकल्प निहित हो। उस कर्म के परिणामों का शुभ संकल्प के शुभत्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसका अर्थ यह है कि सदैव अपने आप में शुभ होने के कारण शुभ संकल्प पूर्णतः परिणाम निरपेक्ष है। उसका शुभत्व उसके परिणामों द्वारा निर्धारित नहीं होता। कांट का मानना है कि किसी कर्म के परिणामों को हम नियन्त्रित नहीं कर सकते, अतः

---

45. इमैन्युअल काण्ट, 'ग्राउण्ड वर्क ऑफ दि मेटाफिजिक ऑफ मॉरल्म, पेज-६१

शुभ संकल्प द्वारा प्रेरित प्रत्येक कर्म शुभ है फिर चाहे परिणाम कुछ भी हो सुखद अथवा दुःखद, अनुकूल अथवा प्रतिकूल। शुभ संकल्प की इसी परिणाम निरपेक्षता को स्पष्ट करते हुए कांट ने अपनी पुस्तक ग्राउण्ड वर्क आफ दि मेटाफिजिक ऑफ मॉरल्स में लिखा है कि "शुभ संकल्प अपने परिणामों के कारण शुभ नहीं वरन् अपने आप में शुभ है। यदि दुर्भाग्य अथवा प्राकृतिक कठिनाई के कारण इस संकल्प के कोई शुभ परिणाम नहीं प्राप्त नहीं हो पाते है तो भी यह एक बहुमूल्य रत्न की भाँति अपने ही प्रकाश से स्वयं आलोकित होगा और अपने आप में इसका महत्व पूर्ण रूपेण बना रहेगा।"[3]

इस प्रकार कांट के अनुसार जब मनुष्य के कर्मों का नैतिक मूल्य उनके परिणामों पर आधारित नहीं है तो इस स्थिति में "नैतिकता का सर्वोच्च नियम" परिणाम निरपेक्ष ही हो सकता है। इस बौद्धिक परिणाम निरपेक्ष उच्चतम नैतिक नियम को कांट ने निरपेक्ष आदेश (Categorical Imperative) कहा है। क्योंकि मनुष्य इनका पालन किसी अन्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए नहीं वरन् इसे ही लक्ष्य मानकर इसके प्रति आदर की भावना के कारण करता है। नैतिकता के इसी सर्वोच्च नियम के आधार पर मनुष्य के समस्त कर्मों का मूल्यांकन होता है। व्यवहारिक बुद्धि का व्यक्तिगत सिद्धान्त किसी लक्ष्य द्वारा नियंत्रित होता है इसलिए उसे सापेक्ष आदेश कहा जाता है।

कांट के अनुसार निरपेक्ष आदेश वही हो सकता है जिसे सार्वभौम नियम बनाया जा सके। कांट के शब्दों में "Act only on that maxim through which you can at the

same time will that it should become a universal law."[46] जैसे आत्म प्रेम को निरपेक्ष आदेश नहीं कहा जा सकता क्योंकि आत्म प्रेम से कार्य करने वाला व्यक्ति इसे सार्वभौम नियम बनाने की इच्छा नहीं कर सकता कि सभी अपने से प्रेम करें। इसी प्रकार बेइमानी से कार्य करने वाला व्यक्ति यह नहीं चाहता कि दूसरे भी बेइमानी से कार्य करें इसलिए इसे वह सार्वभौम नियम के रूप में नहीं स्वीकार कर सकता। अतः इन्हें निरपेक्ष आदेश के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता।

पुनः कांट ने यह भी कहा है कि निरपेक्ष आदेश में कभी कोई ऐसा सिद्धान्त शामिल न किया जाय जिसमें हम स्वयं या अन्य मानव को साध्य न मानकर साधन मान लें। इसे हम मानवीय गरिमा या Human dignity का सिद्धान्त भी कह सकते हैं। कांट के इस सिद्धान्त ने आधुनिक समय में सामाजिक स्तर पर उदारवादी और प्रजातांत्रिक आन्दोलनों को प्रेरणा दी क्योंकि यह सिद्धान्त मनुष्य की स्वतंत्रता और उसकी महत्ता का प्रतिपादन करता था इस सिद्धान्त के आधार पर हम हर प्रकार की गुलामी, उत्पीड़न, मानव अधिकार का हनन स्वार्थ इत्यादि का अनैतिक घोषित करते हैं। कांट के शब्दों में "So act as to use humanity, both in your person and in the person of every other, always at the same time as an end, never as simply means.[47] कांट के अनुसार निरपेक्ष आदेश वस्तुतः द्वितीय क्रम के सिद्धान्त है जो हमें आधार (Criteria) प्रदान करते हैं किन नियमों के अनुसार कार्य

46. Immanual Kant, Critique of Practical Reason.
47. Immanual Kant, Critique of Practical Reason.

करना चाहिए। निरपेक्ष आदेश के अनुसार किए गए कार्य वही हैं जो शुभ संकल्प से किए गए हैं।

कांट ने 'शुभ संकल्प' Good Will और पवित्र संकल्प (Holy Will) में भी अन्तर किया है। शुभ संकल्प वह संकल्प है जिसमें व्यक्ति कर्तव्य की चेतना से कार्य करता है। किन्तु पूर्ण रूप से बौद्धिक प्राणी न होने के कारण मानव में वासनाएं, इच्छाएं, भावनाएं भी होती है जो उसे दूसरी ओर खींचती है और शुभ संकल्प इन वासनाओं पर नियन्त्रण करके उचित कार्य करता है। अतः मानव के आचरण में शुभ संकल्प की अभिव्यक्ति स्वतः न होकर कर्तव्य की चेतना के आधार पर है।

जबकि पवित्र संकल्प, वह संकल्प है जहाँ शुद्ध बौद्धिकता है और यहां वासनाओं का द्वंद्व नहीं होता। यह एक अर्थ में नैतिकता से ऊपर है। क्योंकि पवित्र संकल्प में वासनाओं, इच्छाओं और प्रवृत्तियों पर पूर्ण विजय प्राप्त की जा चुकी है। अतः यहाँ किसी प्रकार के संयम और कर्तव्य की चेतना की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि पवित्र संकल्प से होने वाले कार्य स्वतः ही नैतिक दृष्टि से उचित कर्तव्य के लिए होते हैं। इसलिए कांट ने माना कि शुभ संकल्प जहाँ मनुष्यों में पाया जाता है वहीं पवित्र संकल्प की कल्पना या तो ईश्वर में की जा सकती है अथवा ऐसे व्यक्तियों में जो पूर्णता प्राप्त कर चुके हैं। कांट के पवित्र संकल्प या पूर्णता की इसकी तुलना गीता के स्थित प्रज्ञ से की जा सकती है।

कांट के अनुसार नैतिकता का अन्तिम आदर्श पवित्र संकल्प के अनुसार कार्य करना है। आदर्श होने के कारण इसकी प्राप्ति संभव होनी चाहिए वरना यह नैतिकता का आदर्श नहीं हो सकता था। किन्तु यह कठिन आदर्श एक ही जीवन में संभव नहीं है। हमें इसके लिए असीमित समय चाहिए। इस जीवन के बाद भी जीवन संभव होना चाहिए अन्तहीन हो। अतः हमें आत्मा की अमरता स्वीकार करनी होगी।

इसके अतिरिक्त कांट ने सर्वोच्चशुभ (Highest Good) और पूर्णशुभ (Complete good) में भी अंतर किया है। कांट का कहना है कि जो कार्य सुख प्राप्ति के उद्देश्य से किये जाते हैं उन्हें नैतिक श्रेय नहीं प्रदान किया जाना चाहिए। नैतिकता के लिए सुख प्राप्ति लक्ष्य नहीं होना चाहिए वरन् कार्य का लक्ष्य कर्तव्य की चेतना होनी चाहिए। कांट के अनुसार सुख प्राप्ति हमारा अधिकार अवश्य है किन्तु कर्तव्य नहीं है। लेकिन नैतिकता का मांग यह भी है कि जो व्यक्ति जिस अनुपात में शुभ कर्मों का सम्पादन करता है उसे उसी अनुपात में सुख की प्राप्ति अवश्य होनी चाहिए। कांट के अनुसार शुभ संकल्प उस मनुष्य में पाया जाता है जो सुख प्राप्ति के उद्देश्य से नहीं वरन् कर्तव्य की चेतना से कर्म करता है। अर्थात् शुभ संकल्प में आनंद का कोई स्थान नहीं है। इसी कारण कांट ने शुभ संकल्प को सर्वोच्च शुभ तो कहा है, लेकिन संपूर्ण शुभ नहीं कहा है। संपूर्ण शुभ में शुभ कर्मों के अनुपात में आनन्द का समावेश अनिवार्य है। अतः कांट ने भी कर्म सिद्धान्त के समान यह स्वीकार किया है कि शुभ कर्म के अनुसार फल प्राप्त होना चाहिए। कांट का यह भी कहना है कि यदि मिलना चाहिए तो इसका होना संभव होना चाहिए (Ought Implies can) संभावना के अभाव में 'होना चाहिए' का कोई अर्थ नहीं

है। सद्गुण को सुख या आनन्द (Happiness) का पुरस्कार मिलना ही चाहिए। किन्तु यह कैसे संभव होगा जबकि सद्गुण और सुख दो भिन्न-भिन्न चीजें है। सद्गुण में सुख का कोई स्थान नहीं है और बहुत से ऐसे सुख हैं जिनका नैतिकता से कोई संबंध नहीं है। किंतु पूर्ण शुभ की प्राप्ति के लिए इस प्रकार सद्गुण और सुख का संश्लेषण (Synthesis) होना चाहिए। यही नैतिकता की माँग है और यही सर्वोच्च आदर्श है।

इसलिए एक ही विकल्प संभव है कि प्रकृति एक ऐसी सत्ता (ईश्वर) से संचालित होती है। (जो शुभ और सर्वशक्तिमान है) जो अंततः चाहे इस जन्म या अगले जीवन में इस संश्लेषण या संयोग को संभव बनाता है। इस जीवन में यदि हमें यह संयोग दिखाई नहीं भी पड़ता है तो निश्चय ही यह अगले जीवन में अवश्य होगा। अतः कांट ने नैतिकता की पूर्वमान्यता में ईश्वर को रखा है। इस विचार से भी अनिवार्यतः आत्मा की अभरता संबंधी विचार आपादित होता है। इसे भी कांट ने नैतिकता की पूर्वमान्यताओं में स्थान दिया है। हमें सभी कर्मों के फल एक ही जीवन में प्राप्त नहीं हो जाते, वरन् यह भी संभव है कि हम वर्तमान जीवन में अपने पूर्वजन्मों के कर्मों का फल प्राप्त कर रहे हों और वर्तमान जीवन के कर्मों का फल आगामी जन्मों में प्राप्त होगा और इस तथ्य की सम्यक व्याख्या तब तक नहीं संभव है जब तक कि आत्मा की अमरता को स्वीकार न किया जाय। यद्यपि कांट ने पुर्नजन्म के सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं किया है, लेकिन उसके विचारों में उसे निहित माना जा सकता है।

साथ ही हम अपने व्यावहारिक जीवन में यह भी देखते हैं कि बहुत से सद्गुणी व्यक्ति दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं जबकि इसके विपरीत बहुत से दुर्गुणी व्यक्तियों का जीवन सुख

और आनन्द से भरा हुआ दिखाई देता है। हम सद्गुणी और नैतिक व्यक्तियों को नैतिकता के मार्ग पर अग्रसर रहने का सन्देश तभी दे सकते हैं जब कि उन्हें इस बात का आश्वासन दिया जाय कि उनके द्वारा इस जन्म में किए गए नैतिक कर्म व्यर्थ नहीं जाएंगे बल्कि इसका शुभ फल उन्हें आगामी जन्मों में प्राप्त होगा। इस प्रकार की व्याख्या से भी अनिवार्यतः आत्मा की अमरता का सिद्धान्त पुष्ट होता है।

सारांश में हम कह सकते है कि आत्मा की अमरता संबंधी विचार काण्ट का नैतिक चेतना पर आधारित है और मुनष्य की नैतिक पूर्णता (Moral perfectness) की धारणा (जो नैतिकता का अन्तिम लक्ष्य है) से सृजित किया गया है। कांट का कथन है कि मनुष्य की नैतिक पूर्णता के लिए आत्मा की अमरता को मानना बहुत आवश्यक है। काण्ट के अनुसार नैतिक पूर्णता के लिए वासनाओं, इच्छाओं, प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। वास्तव में एक अर्थ में यहाँ व्यक्ति नैतिकता से ऊपर उठ जाता है। परंतु कांट के अनुसार यह अत्यन्त कठिन कार्य है, अतः मनुष्य केवल एक ही जीवन में इसे पूर्ण नहीं कर सकता। अपनी वासनाओं तथा इच्छाओं पर पूर्ण विजय प्राप्त करने का सतत् प्रयास वह तभी कर सकता है जब उसका एक ही जीवन में अंत न हो जाय - अर्थात् जब उसकी आत्मा अनश्वर तथा अमर हो और वह अनेक जीवन प्राप्त कर सके।

अतः चाहे नैतिक पूर्णता का विचार लें जहाँ पवित्र संकल्प हमारा आदर्श हैं अथवा पूर्ण शुभ का विचार लें जहाँ सुख और सद्गुण का संश्लेषण होना चाहिए, इन दोनों में ही आत्मा की अमरता के सिद्धान्त को आधार मानना होगा।

प्रो० सभाजीत मिश्र के शब्दों में "कांट दावा करता है कि मनुष्य की नैतिक नियति का यह सिद्धान्त कि नैतिक आदेश के प्रति पूर्ण योग्यता प्राप्त करने के लिए अनन्त जीवन चाहिए, न केवल सैद्धान्तिक बुद्धि की एक अक्षमता को दूर करता है अपितु धर्म की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। इस मान्यता के अभाव में या तो नैतिक आदेश पवित्रता से सर्वथा दूर हो जाता है अथवा नैतिक आदेश की माँगे अप्राप्त लक्ष्य की पुकार मात्र बनकर रह जाती है और हम 'उन्मादपूर्ण धार्मिक स्वप्नों' में खो जाते हैं। दोनों ही दशाओं में हमारी नैतिक प्रगति अवरूद्ध हो जाती।"[48]

परन्तु कांट की मान्यता दोष रहित नहीं है। उन्होंने नैतिक पूर्णता के आधार के रूप में आत्मा की अमरता को स्वीकार किया है। यदि मनुष्य एक जीवन में नैतिक पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता तो यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह अनेक जन्मों में ऐसा कर सकेगा। इसके अतिरिक्त आत्मा की अमरता के संबंध में कांट ने जो तर्क दिए हैं उसमें आत्मविरोध दिखाई पड़ता है। एक ओर तो कांट यह मानते हैं कि नैतिक पूर्णता अवश्य प्राप्त की जा सकती है, इसी कारण आत्मा की अमरता को आवश्यक माना है, परन्तु और दूसरी ओर वे यह भी कहते हैं कि नैतिक पूर्णता को प्राप्त करने के लिए अनंत समय लगेगा। जिसका अर्थ यही हो सकता है कि नैतिक पूर्णता कभी प्राप्त नहीं की जा सकती है। इसी आधार पर सी०डी० ब्राड ने कांट के तर्क को अस्वीकार किया है। [17]

48. प्रो० सभाजीत मिश्र, कांट का दर्शन, पृष्ठ

एक और आपत्ति यह भी है कि जब मनुष्य नैतिक पूर्णता प्राप्त करने के बाद अपनी समस्त भावनाओं और इच्छाओं पर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेता है तो वह आनन्द का अनुभव कैसे करेगा? यदि नैतिक पूर्णता के संबंध में कांट का मत उचित है तो ऐसी पूर्णता प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए आनन्द निरर्थक हो जाता है। अतः उसे आनन्द प्रदान करने के लिए कर्माध्यक्ष के रूप में ईश्वर को मानना भी अनावश्यक है इसी अधार पर ब्राड ने ईश्वर की सत्ता संबंधी कांट के तर्क को भी अस्वीकार कर दिया था।[49] आलोचना के रूप में यह कहा गया है कि कांट का तर्क इस संभावना की उपेक्षा करता है कि नैतिक मूल्य और सुख के बीच में ऐसा प्राकृतिक संबंध हो सकता है जो प्रथम दृष्टि में स्पष्ट नहीं हो पाता है। इसके अलावा हम यह भी मान सकते हैं कि एक निर्वैयक्तिक नैतिक विधान सृष्टि में कार्यशील है, (जैसे कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धान्त) जो दूरवर्ती परिणाम के रूप में सद्गुण और सुख में आवश्यक संयोग को स्थापित करता हैं और इसके लिए ईश्वर की सत्ता को मानना आवश्यक नहीं है। ईश्वर के अस्तित्व के अभाव में अमरता संबंधी विचार भी कमजोर हो जाता है। परन्तु इसका उत्तर दिया जा सकता है कि एक ऐसी वैयक्तिक सत्ता का अस्तित्व जिसकी ओर हम अपने विशिष्ट (संकट के) क्षणों में उन्मुख हो सकें, नैतिक सिद्धान्तों में हमारे विश्वास को बचाये रख सकता है और उसे अधिक बल प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त यदि हम अपने नैतिक नियमों और मूल्यों का स्रोत ईश्वर को माने तो वे हमारे लिए अधिक सार्वभौमिक और वस्तुनिष्ठ हो जाते हैं। नैतिक संघर्ष की स्थिति में हमें इस आश्वासन की आवश्यकता होती है कि हमारे प्रयास व त्याग निरर्थक नहीं है ओर श्रेष्ठतम नैतिक लक्ष्य को प्राप्त करना हमारे लिए असंभव नहीं है।

कांट ने अपने दर्शन में नैतिक आचरण को सार्थक और अत्यन्त मूल्यवान माना है। साथ ही जैसा कि हमने देखा, उसने मानवीय गरिमा (Human Dignity) के सिद्धान्त को अपने नैतिक दर्शन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उसके इन विचारों से भी आत्मा की अमरता के सिद्धान्त को बहुत बल मिलता है चाहे खुले रूप से कांट ने यह न कहा हो, परन्तु स्पष्टतः यह

49. सी०डी० ब्रॉड, 'फाइव टाप्स ऑफ एथिकल थ्योरी' पृ० 142

उसके विचारों में निहित है। यदि हम नैतिक संघर्ष और नैतिकता की साधना के साथ-साथ मानव व्यक्तित्व को भी महत्ता या गरिमा देते हैं तो हमारे लिए यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि मृत्यु के साथ मनुष्य का अन्त हो जाता है। क्योंकि यदि मृत्यु स्व या आत्मा का पूर्ण विनाश कर देती है तो यह समझना कठिन है कि नैतिकता के बारे में हम इतना क्यों उद्विग्न या परेशान हों। ऐसी दशा में नैतिक सिद्धान्तों के लिए बड़े से बड़ा आत्म त्याग, यहाँ तक कि कभी-कभी तो अपने जीवन के उत्सर्ग का क्या अर्थ रह जाता है। यदि मृत्यु मनुष्य की पूर्ण समाप्ति है तो मानव व्यक्तित्व का मूल्य या महत्व एक साबुन के बुलबुले से अधिक नहीं है जो केवल कुछ समय तक ही अस्तित्व में रहकर शून्य में विलीन हो जाता है। केवल आत्मा की अमरता में विश्वास ही मानव व्यक्तित्व को गरिमा तथा नैतिक मूल्यों का सार्थकता प्रदान कर सकता है और लोगों को अपने जीवन में 'नैतिक आदर्शों की प्राप्ति के लिए प्रेरित कर सकता है।

४.३ प्रो० ए०ई० टेलर द्वारा प्रस्तुत तर्क

आत्मा की अमरता के लिए नैतिक युक्ति को सशक्त और स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने वाले बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के एक अन्य दार्शनिक प्रो० ए०ई० टेलर हैं जिन्होंने अपने लेख 'The moral argument for immortality' में अमरता के लिए मुख्य रूप से दो युक्तियाँ दी हैं। जिनमें से प्रथम युक्ति नैतिक कर्तव्य की अवधारणा पर आधारित है जबकि दूसरी इस विचार पर आधारित है कि अमरता के अभाव में विश्व एक अत्यन्त अशुभ सत्ता होगी जो कि हमारी धार्मिक आस्था के अनुसार संभव नहीं है। यद्यपि प्रो०ए०ई० टेलर की प्रथम युक्ति से द्वितीय युक्ति से भिन्न है, पर उन्होंने दोंनो को एक ही वृहत् युक्ति के भाग माना है। क्योंकि आंशिक

रूप से द्वितीय युक्ति प्रथम युक्ति में समाहित हो गई है। अब इन युक्तियों पर क्रमशः विचार किया जाएगा।

मोटे तौर पर रूप में कर्तव्य की अवधारणा पर आधारित युक्ति को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि यदि हम सभी मानव जाति को मरणशील मान लें तो कुछ निश्चित कर्म, जो कि अमरता को स्वीकार करने की स्थिति में हमारे कर्तव्य होते वे वह हमारे कर्तव्य नहीं रह जाएंगे। साथ ही बहुत से ऐसे कार्य जो अमरता की स्थिति में हमारे लिए हानिकारक और अनुचित होंगे, मनुष्य की आयु ६०-७० वर्ष तक सीमित मान लेने पर न हानिकारक न ही अनुचित अनुचित होंगे। टेलर का कहना है कि यदि हम शरीर के साथ समाप्त हो जाते हैं तो हमारे लिए जीवन का अधिकतम उपभोग करना ही श्रेय होगा और तब हमारे लिए यही उचित होगा कि हम जीवन के सूक्ष्मतम क्षण में अधिकतम सुख की प्राप्ति करें। तो अमरता अस्वीकृति में शाश्वत मूल्यो की प्रासंगिकता नहीं रह जाती। नैतिकता हमें कर्तव्य, त्याग, परोपकार और यहाँ तक कि आत्म बलिदान तक का संदेश देती है। बहुत से मनुष्य इन मूल्यों के आधार पर कार्य कर रहे हैं। लेकिन प्रश्न यह है कि आत्मबलिदान के द्वारा जीवन समाप्त कर देने का कार्य तब तक सार्थक नहीं कहा जा सकता जब तक कि हम अमरता को स्वीकार न कर लें। क्योंकि जो व्यक्ति देशभक्ति की नैतिकता के आधार पर दु:ख या पीड़ा सहते हैं और कभी भी अपने प्राणों का बलिदान भी कर देते हैं, उन्हें मृत्यु में पूरी तरह समाप्त होने की हालत में कुछ भी वास्तविक लाभ नहीं होगा और वे सभी मूल्यो से शून्य हो जाएंगे तो इस प्रकार, उच्च मूल्यों के आधार पर कर्म करने का संदेश नहीं दिया जा सकता। ऐसी स्थिति में व्यक्ति द्वारा नैतिकता का ध्यान रखने का व्यवहारिक जीवन में कोइ औचित्य नहीं होगा। अतः यदि नैतिकता का उद्देश्य उच्च मूल्यों को स्थापित करना है तो इससे अमरता का विचार अनिवार्यतः आपादित होता है। क्योंकि इन उच्च मूल्यों की प्राप्ति अमरता के अभाव में संभव नहीं होगी तो स्वाभाविक रूप से इनका अधिक महत्व नहीं रह जाएगा। जीवन के उच्च मूल्यों का विवरण देते हुए टेलर ने कहा था, "The highest good are roughly the discovery and knowledge of truth, the attainment

and exercise of virtue, and the creation and fraction of beauty."[50] अथार्त् सर्वोच्च शुभ मोटे तौर पर सत्य का ज्ञान अथवा खोज है, सद्गुणों की प्राप्ति तथा उसका का आचरण है और सौन्दर्य का सृजन और उपभोग है। बाद में टेलर ने मानव के आपसी प्रेम सम्बन्ध को भी उच्च मूल्यों की सूची में इसमें जोड़ दिया है।

"All other goods, "he says, "are secondary and insignificant as compared with these."[51] उनका कहना है कि अन्य सभी शुभ इन सर्वोच्च शुभ की अपेक्षा गौण है।

लेकिन प्रश्न यह उठता है कि यदि हम अमरता को स्वीकार न करें और संपूर्ण मानव जाति को मरणशील मान लें कि सभी मनुष्य एक दिन समाप्त हो जाने वाले हैं तो क्या वास्तव में इन मूल्यों के लिए कार्य करना अथवा इनकी प्राप्ति का प्रयास करना समझदारी नहीं होगी? प्रो० टेलर का तो मत स्पष्ट है कि यदि हम भरणशील है और मानव जाति एक दिन समाप्त होने वाली है तो स्थायी रूप से इसका कोई महत्व नहीं है कि हम इन शुभों को प्राप्त करें अथवा न करें। उनका तर्क था कि यदि हम अमरता को स्वीकार न करें और यह स्वीकार करें कि पूरी मानव जाति एक दिन नष्ट होने वाली है तो एक समय ऐसा आएगा जबकि हमारा समस्त वैज्ञानिक ज्ञान समाप्त हो जाएगा, हमारी समस्त कलात्मक रचनाओं का अस्तित्व किसी अन्य चेतन जीव के देखने अथवा प्रशंसा करने के लिए नहीं रह जाएगा और सभी मानव द्वारा व्यक्तिगत चरित्र अथवा अन्य मानवों से संबंध के दौरान संरक्षित किए गए मूल्य समाप्त हो जाएंगे। तो क्या या इन अस्थायी शुभों की प्राप्ति के प्रयास में अन्य सुखों को त्याग देना समझदारी होगी?

प्रो० टेलर के इस तर्क की आलोचना करते हुए सी०डी० ब्राड ने अपनी पुस्तक "The mind and its place in nature" में कहा है कि यदि इसे हम स्वीकार भी कर लें कि हम

---

50. A.E. Taylor, in an article "The moral argument for immortality" in the Holborn Review.
51. A.C. Taylor, in an article 'The moral argument for immortality in the Holborn review.

और समस्त मानव जाति नष्ट होने वाली है तो भी यह समझदारी नहीं होगी की कि हम केवल अपने क्षणिक सुखों के लिए ही कार्य करें। वास्तव में हमारे जीवन का औचित्य इससे कुछ भिन्न होना चाहिए।[52] ब्रॉड का कहना है कि यदि हम अमर नहीं है और अपने शरीर के साथ हम समाप्त भी हो जाएं तो भी केवल अपने सुख के लिए कार्य करना हममें से अधिकांश के लिए उचित आचरण की रूपरेखा नहीं होगी। अतः यदि अमरता को स्वीकार न भी किया जाए तो भी जब तक हम जीवित रहते हैं तब तक कुछ उच्च मानसिक स्थितियों के आधार पर सुख प्राप्त करना बेहतर होगा। जैसे दूसरों के दुःख से सुखी होने की अपेक्षा संगीत सुनना श्रेष्ठ है। ब्रॉड का कहना है कि हम चाहे मरणशील हों अथवा अमर यह हमारा कर्तव्य बना रहता है कि यदि हम बेहतर स्थितियाँ उत्पन्न कर सकते हैं तो बदतर स्थिति उत्पन्न न करें। हमें केवल अपने सुख को इसीलिए वरीयता नहीं देनी चाहिए कि वे मेरे सुख हैं। साथ ही भौतिक जीवन को समृद्ध बनाने वाली वस्तुओं के वितरण में भी पक्षपात नहीं करना चाहिए। इस प्रकार दोनों ही स्थितियों में न्याय, बौद्धिक परोपकार और समझदारी हमारे नैतिक कर्तव्य बने रहेंगे।[53]

ब्रॉड ने प्रो० टेलर द्वारा मान्य शुभों से कोई विरोध नहीं व्यक्त किया है। लेकिन जहाँ प्रो० टेलर ने मानव मरणशीलता के आधार पर इन मूल्यों को प्राप्त करने के लिए किए गए प्रयासों को बौद्धिक नहीं माना है वहीं सी०डी० ब्रॉड का कहना है कि इन शुभों को प्राप्त करने के लिए मानवीय प्रयास केवल तभी तब समझदारी नहीं कहे जाएंगे जब हम संपूर्ण मानव जाति के निकट भविष्य में विनाश को स्वीकार कर लें। किन्तु यदि कुछ लोग भी अपेक्षाकृत अधिक समय तक जीवित रह जाते हैं जो इन मूल्यों को आगे बढ़ाते हैं तो प्रो० टेलर का तर्क मान्य नहीं होगा।

---

52. C.D. Broad, The Mind and its place in nature', P. 492.
53. C.D. Borad, The mind and its place in nature', P. 494.

अंततः ब्रॉड का कहना है कि यह माना जा सकता है कि यदि काई भी शुभ स्थायी रूप से उत्पन्न नहीं किया जा सकता तो विश्व उत्कृष्ट सत्ता नहीं है। यद्यपि सभी बुद्धिमान सत्ताएं केवल सीमित समय तक ही अस्तित्व में रहती है, लेकिन फिर भी कुछ बौद्धिक सत्ताएं सदा बनी रहती हैं, क्योंकि जब एक मानव प्रजाति समाप्त हो जाती है तो उसके बौद्धिक एवं कलात्मक कार्यों को दूसरी मानव जाति आगे बढ़ाती है। ऐसा विश्व इतिहास में कई बाद देखा गया है कि एक मानव प्रजाति के कलात्मक, साहित्यिक तथा वैज्ञानिक सर्जनाओं ने दूसरी मानव जाति के लिए प्रेरक के रूप में कार्य किया है।

आगे सी०डी० ब्रॉड प्रो० टेलर की इस बात की समीक्षा करते हुए कि यदि मनुष्य द्वारा सृजित सभी मूल्य किसी अन्य प्रजाति द्वारा आगे न बढ़ाये जाने की स्थिति में अन्ततः समाप्त हो जायेंगे, तो विश्व एक अत्यन्त अशुभ सत्ता होगी, कहते हैं कि यह अत्यन्त कठोर वाक्य है। न्यायपूर्ण वाक्य यह होना चाहिए कि ऐसी दशा में विश्व अत्यन्त शुभ नहीं होगा। क्योंकि विश्व इतिहास के दीर्घ काल में यह हो सकता है कि किसी विशेष अवधि में मानवीय सभ्यता ने सद्गुण, ज्ञान और आनन्द की चरम स्थिति प्राप्त की हो और फिर उसकी अवनति हो गई हो और किसी अन्य अवधि विशेष में ये सृजित ही न किये गये हों, लेकिन इव विशेष अवधि के आधार पर सम्पूर्ण विश्व को अत्यन्त अशुभ कह देने का कोई औचित्य नहीं है।

टेलर की युक्ति की समीक्षा करते हुए ब्रॉड आगे कहते हैं कि यदि यह मान भी लिया जाय कि हमारे सभी वैज्ञानिक ज्ञान और कलात्मक सर्जनाएं एक समय नष्ट हो जाएंगी और इनका अनुभव तथा इनकी प्रशंसा करने वाला कोई चेतन जीवन नहीं रहेगा, व्यक्तिगत चरित्र

और मानवीय सम्बन्धों के मूल्य उनको सुरक्षित करने वाले व्यक्तियों के साथ ही विलुप्त हो जाएंगे तो भी इन मूल्यों को प्राप्त करने का प्रयास और उनके लिए में अन्य सुखों का त्याग करना अबौद्धिक अथवा अनुचित नहीं कहा जाएगा। इसे ब्रॉड ने एक साम्यानुमान द्वारा समझाने का प्रयास किया है। ब्रॉड का कहना है कि यद्यपि यह सत्य है कि कोई डॉक्टर हमें सदा के लिए मृत्यु से नहीं बचा सकता तो क्या इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि बीमार पड़ने पर इलाज के लिए डॉक्टर के पास कोई औचित्य नहीं है? निश्चित रूप से इस बात का समर्थन नहीं किया जा सकता। ब्रॉड के शब्दों में- It is certain that no doctor can prevent me from eventnally dying. Does this render it irrational for me to go a doctor if a I have an illness in the prime of life, in the hope that he will cure me and enable me to live for many more years in comfort to myself and in useful activities and valuable personal relations to others/ Surely it does not. Now if it is rational to seek to be cured of an illness, though evenfually some illness is certain to be fatal to me why it is irraional for me to seek to enlarge scientfic knowledge and to produce beautiful objects, though eventually a time will come when this knowledge will be lost and these objects will no longer be contemplated? The human race has probably a very long course before it and I can certainly affect for better or worse the lives of countless generations of future men."[54]

आगे ब्रॉड का कहना है कि यदि मानव इतिहास अन्तहीन नहीं है तो भी यह हमारे भावी पीढ़ियों के प्रति हमारे कर्तव्यों को समाप्त नहीं करता क्योंकि हमारा कर्तव्य है कि हम आनेवाली

---

54. C.D. Broad, The mind and its place in nature," P. 694.

पीढ़ियों के लिए बेहतर सामाजिक परिस्थितियाँ और स्पष्ट वैज्ञानिक ज्ञान को विरासत के रूप में प्रदान करें जिससे वे इनसे प्रेरित होकर और अधिक आगे बढ़ाने का कार्य कर सकें । यद्यपि मानवीय जाति का समाप्त होना दुःखद है, लेकिन फिर भी यह हमारे वर्तमान कर्तव्यों को प्रभावित नहीं करता। अवने तर्क को आगे बढ़ाते हुए ब्राड कहते हैं कि-

यदि यह सत्य है व्यक्ति के कर्तव्य तथ्यों से प्रभावित होते हैं तो एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ब्रह्मांडीय प्रक्रिया के किस विशिष्ट देश और काल में किसी व्यक्ति के कार्य सम्पन्न होते हैं और यह देखा जाता है कि अमुक देश और काल में व्यक्ति को क्या प्राप्त हुआ है। ब्रॉड के अनुसार, यदि यह ज्ञात हो जाय कि शीघ्र ही विश्व समाप्त होने वाला है तो सामाजिक सुधार की लम्बी योजना को आरंभ करना अथवा एक लम्बे उपन्यास को आरंभ करना बुद्धिमत्ता नहीं होगी। ऐसी स्थिति में अधिकतम सुख का उपभोग या सुखमय कार्य करने के अतिरिक्त अन्य सभी प्रयास मूर्खता पूर्ण कहे जाएंगे। लेकिन यदि यह ज्ञात हो कि अब से लेकर पृथ्वी के अंत होने के मध्य मानव पीढ़ियों की एक लम्बी श्रृंखला है जो इन मूल्यों को आगे बढ़ा सकती है तो यह कार्य मूर्खतापूर्ण नहीं कहा जाएगा। ब्रॉड के अनुसार, वर्तमान स्थिति में अमरता में विश्वास या अविश्वास हमारे नैतिक कर्तव्यों में कोई बड़ा अन्तर नहीं उत्पन्न करता।

अंततः ब्रॉड का कहना है कि टेलर द्वारा प्रस्तुत युक्ति सामान्य रूप से इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है। मैं जानता हूँ कि कुछ निश्चित कर्म मेरे कर्तव्य हैं। हम यह भी दिखा सकते हैं कि इन कर्मों का सम्पादन हमारा कर्तव्य नहीं होगा जब तक कि हम अमर न हों। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मैं अमर हूँ। ब्रॉड के शब्दों में- "I know it is my duty to

perform actions of a certain kind. I can show that it would not be my duty to perform such actions unless I were immortal. Therefore I can conclude that I am immortal."[55]

ब्रॉड इसकी समीक्षा करते हुए प्रश्न उठाते हैं कि क्या यह युक्ति वैधता के लिए आवश्यक ज्ञानगत (epistemic) ज्ञान संबंधी आवश्यक शर्तों को पूरा करती हैं? यदि ऐसा है तो हमें यह जानने के पहले कि हम अमर हैं या नहीं हमें यह जानने में समर्थ होना चाहिए कि अमुक कर्म हमारे कर्तव्य हैं। ब्रॉड का इस बात में गहरा संदेह है कि इस युक्ति में ज्ञानगत शर्त पूरी है, क्योंकि या तो हमारे कर्तव्य परिस्थिति पर निर्भर है, अथवा नहीं? यदि परिस्थितियों पर निर्भर हैं, तो हमें पहले उन परिस्थितियों को जानना पड़ेगा जिनमें हम हैं और यह अत्यन्त महत्पूर्ण परिस्थिति होगी कि हम अमर हैं या नहीं? इस प्रकार यदि कर्तव्य परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं तो परिस्थितियों को जाने बिना कर्तव्यों को जानना संभव नहीं होगा। यहां ब्रॉड का कहना है कि यदि कर्तव्य परिस्थिति पर निर्भर है तो ऐसे में यह जानना कठिन हो जाएगा कि हमारे कर्तव्य क्या है जबकि हम इस विषय पर निश्चित नहीं है कि हम अमर है या नहीं। इसके विपरीत यदि हमारे कर्तव्य परिस्थितियों पर निर्भर नहीं है तो इसमें कोई कठिनाई नहीं होगी कि हम बिना अमरता के विषय में जाने यह जान लें कि हमारे कर्तव्य क्या हैं? इस प्रकार यदि परिस्थितियों से स्वतंत्र अमुक कर्म हमारा कर्तव्य है तो यह हमारा कर्तव्य बना रहेगा चाहे हम अमर रहे अथवा नहीं। इस प्रकार टेलर द्वारा दी गई युक्ति कि अमुक कर्म हमारा कर्तव्य होगा

---

55. C.D. Broad, The mind and its place in nature P. 499

यदि हम अमर है। (भरणशीलता की स्थिति में हमारा कर्तव्य नहीं रह जाता) असंगत हो जाता है।

इस प्रकार ब्रॉड के अनुसार हमारी अमरता का हमारे कर्तव्यों के निर्धारण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और हम अमर न भी हो तो भी हमें उच्च मूल्यों और शुभ के लिए कार्य करना चाहिए। किन्तु ब्रॉड का यह मत तभी सार्थक होगा जबकि किसी व्यक्ति को उच्च मूल्यों और शुभ के अनुसार कार्य करने में आनन्द की अनुभूति हो। सत्य की खोज अथवा आत्म त्याग से यदि किसी को आत्मसंतोष अथवा आत्मसुख की अनुभूति होती है तो ठीक है। जैसे माँ के बच्चे प्रति किए गए त्याग से माँ को स्वयं खुशी मिलती हैं। लेकिन यदि हम नैतिकता की माँग पर आत्म बलिदान कर दें या सत्य की खोज में अपने सभी सुखों का त्याग कर दें और बाद में हम स्वयं समाप्त हो जाएं तो इसकी क्या सार्थकता होगी? क्या इसे समझदारी का व्यवहार कहा जा सकता है? हम क्यों नैतिकता को स्वीकार करेंगे जिससे हमें कुछ भी प्राप्त न हो भले ही इससे दूसरों को लाभ हो। हम नैतिक तभी बनना चाहेंगे और उच्च मूल्यों की प्राप्ति का प्रयास तभी करेंगे जब हम स्वयं उस मूल्य को अनुभूत (realize) कर सकें। इसलिए नैतिकता के लिए आवश्यक है कि कुछ हद तक व्यक्ति में मूल्य संरक्षित रहें।

प्रो० टेलर ने अपने लेख में दूसरी युक्ति इस आधार पर प्रस्तुत की है कि मानव अमरता के अभाव में विश्व अत्यन्त अशुभ सत्ता होगी जो हम स्वीकार नहीं कर सकते। इस युक्ति को प्रस्तुत करते हुए टेलर का कहना है कि यदि हम और सभी मनुष्य शरीर के साथ ही समाप्त हो जाते हैं तो यह विश्व अत्यन्त अशुभ सत्ता है लेकिन चूँकि विश्व इतना अशुभ नहीं है अतः कहा जा सकता है कि कम से कम कुछ मनुष्य अमर हैं।

टेलर के शब्दों में- "If we and all men die with our bodies the world is very evil. The world is not so eivl as this. Therefore some men, at any rate are immortal."[56]

अपनी इस युक्ति को टेलर दो रूपों में प्रस्तुत करता है। इन रूपों में दूसरा आधार वाक्य असमान है प्रथम, टेलर का मानना है कि यह विश्व इतना अशुभ नहीं है जितना यह प्रतीत होता है। दूसरे रूप में वह यह तर्क करता है भले ही हम यह निश्चित रूप से न कह सकें कि विश्व अत्यन्त अशुभ है लेकिन वैज्ञानिक के लिए विश्व को अशुभ मानना असंगत है। अतः युक्ति का निष्कर्ष हमें स्वीकार कर लेना चाहिए।

टेलर द्वारा प्रस्तुत इस युक्ति के प्रथम आधार वाक्य को इस प्रकार समझा जा सकता है। टेलर के अनुसार कुछ मनुष्य अचानक ही अपनी शक्तियों की चरम स्थिति में मर जाते हैं जबकि कुछ मनुष्य अपनी शक्तियों को पूर्ण विकसित किये बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। यदि ये मनुष्य शरीर की मृत्यु के बाद नहीं बचते तो यह घोर अन्याय होगा। यदि ऐसा अन्याय है तो विश्व अशुभ कहा जाएगा। लेकिन, चूँकि विश्व इतना अशुभ नहीं है अतः मनुष्य अपने शरीर की मृत्यु के साथ ही मर नहीं जाते। अर्थात् वे अमर हैं। टेलर के शब्दों में-"Men often die quite suddenly of the height of thier powers, and other men die when their full powers are not developed. If such men do not survive the death of their bodies they are treated with gross injustice. If there were such injustice the universe would be very evil. Now the universe is not so evil as this. Hence such men do not really die with death of their bodies."[57]

वास्तव में टेलर यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि व्यक्ति जीवन में बौद्धिक, सौन्दर्यात्मक, वैज्ञानिक, दार्शनिक, साहित्यिक तथा सद्गुण संबंधी मूल्यों की प्राप्ति करता है और एक निश्चित आयु में आकर मर जाता है। यदि उसकी मृत्यु के साथ ही सब कुछ समाप्त हो

---

56. A.E. Taylor, in an article, 'The moral argument for immortalifty', in Holborn review.
57. A.E. Taylor, in an article, The moral argument for immortality in Holborm review.

जाता है तो यह अन्याय होगा। इस प्रकार विश्व अशुभ हो जाएगा। हमारे वैज्ञानिक आइन्सटीन, गैतीलियो, न्यूटन आदि के द्वारा वैज्ञानिक विकास के लिए किए गए प्रयासों का उनके लिए कोई सार्थकता नहीं रह जाएगी। इसी प्रकार हमारे महान साहित्यकार शेक्सपियर, कालिदास, महान दार्शनिक प्लेटो, अरस्तू, शंकराचार्य, रामानुज, महान संगीतकार तानसेन, बैजूबावरा जैसी हस्तियों के बहुमूल्य कृत्यों का भी कोई महत्व नहीं रह जाएगा यदि मृत्यु के साथ उनके जीवन का अन्त हो जाता है। इस प्रकार तो यह बहुत भारी क्षति होगी। निश्चित रूप से ऐसे व्यक्तियों और अन्य विद्वानों का जीवन और कुछ अवधि का होता तो मानवीय सभ्यता के विकास में वे और अधिक योगदान कर पाते। मृत्यु से उनकी उपलब्धियाँ कम से कम उनके लिए तो समाप्त हो ही जाती हैं साथ ही आगे जो वे समाज को योगदान देते उनकी भी हानि होती है। इस प्रकार दोहरी क्षति होती है। यदि इनको मृत्यु के बाद भी किसी अन्य रूप में जीवित मान लिया जाय तो एक सीमा तक उपर्युक्त अन्याय से बचा जा सकता है।

इसी प्रकार बहुत से बच्चों और अव्यस्कों को जीवन में विकसित होने का पर्याप्त अवसर नहीं मिल पाता, क्योंकि उनकी अत्यन्त अल्पायु में ही अर्थात् बिना अपनी क्षमताओं का पूर्ण प्रदर्शन किए जीवन लीला समाप्त हो जाती है। यदि यह माना जाय कि वे मृत्यु के साथ पूरी तरह नष्ट हो जाते हैं तो निश्चित रूप से यह घोर अन्याय होगा। दूसरी तरफ यदि यह मान लिया जाय कि वे अमर हैं तो यह स्वीकार किया जा सकता है कि वे किसी न किसी रूप में अपनी क्षमताओं का प्रदर्शन कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह विश्व इतना अशुभ नहीं है जितना वह प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त यह भी देखा जाता है कि हम एक समस्या का समाधान करने के प्रयास में बहुत सी नवीन समस्याओं को उत्पन्न कर देते हैं। किसी दार्शनिक त्रुटि को दूर करने के

प्रयास में भी नवीन त्रुटियाँ हो जाती हैं। इसी प्रकार अशुभ को दूर करने के प्रयास में बहुत से शुभत्व का भी नाश हो जाता है। शुभत्व का विनाश निश्चित रूप से अन्याय और बड़ी त्रासदी होगी। जिससे केवल इसी मान्यता के साथ बचा जा सकता है कि जिन व्यक्तियों में यह शुभत्व विद्यमान रहता है वे किसी न किसी रूप में संसार में शुभ को विकसित कर रहे हैं। ऐसा अमरता के विचार को स्वीकार करके ही संभव हो सकता है।

टेलर की युक्ति की समीक्षा करते हुए ब्रॉड का कहना है कि यदि इस युक्ति को वैध मान भी लिया जाय तो इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि सभी मनुष्य अमर हैं। आगे ब्रॉड कहते हैं कि कुछ मनुष्यों को इस जीवन में सर्वोच्च शक्ति प्रदर्शन का अवसर दिया गया कुछ को नहीं। कुछ लोगों को जिन्हें पूर्ण शक्ति प्रदर्शन का पर्याप्त अवसर मिला भी उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया जिसे संरक्षित किया जाय। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी व्यक्ति को अपने विकास (शक्ति के विकास) के लिए अनन्त समय की आवश्यकता है। शक्ति के विकास के लिए अमरता को स्वीकार करने का आवश्यकता है फिर यह जरूरी नहीं कि अनन्त समय में व्यक्ति विशेष अपनी सर्वोच्च शक्ति का विकास कर ही ले।

अब ब्रॉड टेलर द्वारा प्रस्तुत की गई मूल युक्ति की समीक्षा करते हैं जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

ब्रॉड के अनुसार टेलर की युक्ति का प्रथम तर्कवाक्य यह है कि 'यदि हम और सभी मानव जाति एक दिन पूर्णतः समाप्त हो जाएगी तो विश्व अत्यन्त अशुभ सत्ता होगी।' इसकी

आलोचना करते हुए ब्रॉड का कहना है कि इसके लिए आवश्यक है कि हम ये कि मान लें कि मानव जाति के बाद ऐसी कोई प्रजाति नहीं आएगी जो कला, साहित्य, विज्ञान के ज्ञान को आगे विकसित करें। क्योंकि यदि मानव जाति के बाद कोई ऐसी प्रजाति आती है जो ज्ञान, विज्ञान, साहित्य मूल्यों को आगे बढ़ाती है तो मानव प्रजाति के समाप्त होने पर भी विश्व को अत्यन्त अशुभ सत्ता नहीं कहा जा सकता।

आगे ब्रॉड का कहना है कि यह भी संभव है कि मानवीय अमरता को स्वीकार करने पर भी यह विश्व जितना अशुभ है उससे अधिक अशुभ हो जाएगा अथवा विश्व में अशुभत्व की मात्रा मानवीय अमरता को स्वीकार करने पर बढ़ सकती है। क्योंकि यदि सभी मनुष्य अमर हैं और अधिकतर मनुष्य अपना शाश्वत जीवन नरकीय स्थिति में व्यतीत कर रहे हैं तो विश्व में मरणशीलता स्थिति की अपेक्षा अशुभ में वृद्धि होगी। इस प्रकार ब्रॉड का कहना है कि जहां अमरता टेलर द्वारा शुभत्व की पूर्व शर्त के रूप में स्वीकार की गई है वहीं ये अशुभत्व की पूर्व शर्त भी हो सकती है अर्थात् इससे अशुभत्व की वृद्धि भी हो सकती है।

टेलर द्वारा प्रस्तुत मूल युक्ति के प्रथम रूप का दूसरा आधार वाक्य यह है कि 'विश्व इतना अशुभ नहीं है जितना यह प्रतीत होता है।' यहाँ ब्रॉड का प्रश्न है कि टेलर किस आधार पर कहते हैं कि विश्व इतना अशुभ नहीं है। ब्रॉड का कहना है कि टेलर ने विश्व की अशुभता को असिद्ध करने के लिए अमरता को पहले ही स्वीकार कर लिया है, जबकि वास्तव में उन्हें अमरता की सिद्धि करनी थी। यदि वे अमरता के विचार से स्वतंत्र रूप में विश्व के अशुभत्व की

असिद्धि कर देते तो अमरता संबंधी उनके निष्कर्ष को स्वीकार किया जा सकता था, लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

यदि हम टेलर की युक्ति की कमजोरी को नजरअंदाज भी कर दें तो वह युक्ति मात्र कुछ व्यक्तियों की अमरता को ही पुष्ट कर सकती है, सभी व्यक्तियों की अमरता को नहीं।

वैज्ञानिक असंगता की बात करते हुए, दूसरे रूप में अपनी युक्ति को प्रस्तुत करते हुए टेलर का कहना है कि एक वैज्ञानिक यह जानता है कि चेतन नैतिक प्राणी होने के नाते उसके अमुक कर्तव्य हैं। लेकिन प्राकृतिक विज्ञानों के अध्ययन से वह यह भी जानता है कि मानव जाति के द्वारा किये गये उचित अनुचित सभी प्रयास अन्ततः समाप्त हो जायेंगे। यह सत्य है कि प्राकृतिक विकास की एक अवस्था में मनुष्य का जन्म हुआ जो उचित और अनुचित में भेद स्थापित कर सकता है, है तथा चाहिए में भेद कर सकता है और उच्च मूल्यों को स्थापित कर सकता है। लेकिन वह ब्रह्माणीय प्रक्रिया का परीक्षण भी कर सकता है जिसे वह मूल्यों के प्रति उदासीन और अंततः विध्वंसकारी पाता है। यदि अन्ततः सब कुछ समाप्त हो जाता है तो उच्च मूल्यों की प्राप्ति भी संभव नहीं है। अतः टेलर के अनुसार एक वैज्ञानिक की समस्या यह है कि जहाँ एक ओर वह अपने कर्तव्यों एवं मूल्यों को जानता है, वहीं दूसरी ओर वह यह भी जानता है कि इन मूल्यों की प्राप्ति सम्भव नहीं हैं, क्योंकि अन्ततः सभी मानवीय प्रयास समाप्त हो जायेंगे। वह नैतिक नियमों की सार्थकता स्वीकार करता है लेकिन साथ ही वह यह भी मानता है कि संसार की घटनाएं तार्किक और प्राकृतिक 'नियमों' का पालन करता है पर साथ ही नैतिक मूल्यों को नष्ट करती हुई भी प्रतीत होती है। इस तरह इन दोनों नियमों में असंगतता है जो

नहीं होनी चाहिए। लेकिन यदि ऐसा मान लिया जाये कि मनुष्य अमर हैं तो एक सीमा तक इस असंगतता से बचा जा सकता है। इसी आधार पर टेलर ने मानवीय अमरता को स्वीकार किया है। टेलर के शब्दों में- "I see that it is my duty to act in such and such a way. I also know from my study of natural science that the efforts of the human race will all come at naught in the end, wether we do what is right or what is wrong. So much worse for nature. It is a fact that it has a certain stage produced beings who can distainguish between right and wrong and can be guided in their action by this distinction. Such beings can judge the cosmic process and condern it as is different to and in the end distructive of all that is valuable. It is a fact that, it men survived the death of their bodies, their would be at least a chance that their efforts and experiences might be some of permanent value. But we have no right to think that this provides any reason for holding that men will survive bodily death; what ought to be and what is fall into two ulterly different spheves and we cannot argue from the former to the latter. Their sole conneseion is that the world of what is has under temporary and exceptional circumstances, thrown up for a moment beings who can contemplate the world of ought to be and can criticise from its standands the material world which has made and will soon break its critics."[58]

सी०डी० ब्रॉड ने अपने लेख में कहा है कि वे प्रो० टेलर की स्थिति को समझते हुए इस असंगतता को स्वीकार करते हैं कि विश्व बौद्धिक है क्योंकि वह वैज्ञानिक ज्ञान उपलब्ध कराता है

58. Prof. A.F. Tayor, "The Moral Argument for Imortality in Holborn Review."

तथा प्राकृतिक और तार्किक नियमों का पालन कराता है, लेकिन साथ ही यह अबौद्धिक भी है, क्योंकि यह नैतिक मूल्यों को अंततः समाप्त कर देता है। आगे ब्रॉड का कहना है कि अब सर्वप्रथम दो विभिन्न तर्कवाक्यों पर विचार करेंगे जो इन तथ्यों को व्यक्त करता है। (a) ''विश्व तार्किक रूप से ससक्त है'' (Coherent) और ''विश्व नैतिक रूप से अससक्त (Incoherent) है'' ये दोनों तर्क वाक्य आपस में असंगत है ऐसा टेलर मानता है। उसके अनुसार इस असंगतता को दूर करने का एक ही उपाय है, आत्मा की अमरता को स्वीकार करना।

(b) टेलर की आलोचना करते हुए ब्रॉड का कहना है कि इन दो तर्कवाक्यों में कोई असंगतता नहीं है। इसके अनुसार, ये दोनों वाक्य सत्य हो सकते हैं कि विश्व तर्कशास्त्र के नियम का पालन करता है और नैतिक नियमों को भूल जाता है।

आगे ब्रॉड का कहना है कि टेलर ने- ''विश्व तार्किक रूपसे ससक्त है'' और ''विश्व नैतिक रूप से असम्बद्ध है'' इन दोनों तर्कवाक्यों को एक साथ स्वीकार करने में असंगतता मानी है। अर्थात् टेलर ने तार्किक संगतता को नैतिक संगतता का आधार मान लिया है। दूसरे शब्दों में, टेलर का मानना है कि यदि कोई वस्तु तार्किक रूप से संगत है तो उसे अनिवार्यतः नैतिक रूप से भी संगत होना चाहिए। जबकि ब्रॉड का कहना है कि- विश्व को तार्किक रूप से संगत स्वीकार करना नैतिक रूप से संगत स्वीकार करने का आधार नहीं बन सकता। इसी कारण ब्रॉड का कहना है कि प्रथम को स्वीकार कर दूसरे का निषेध करने में कोई असंगतता नहीं है।

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में ब्राड का कहना है कि टेलर ने मानवीय अमरता पर विश्वास को सिद्ध करने के लिए कोई सशक्त आधार नहीं प्रस्तुत किया है।

सी०डी० ब्रॉड के द्वारा की गई टेलर की कर्तव्य और विश्व को अशुभ न मानने सम्बन्धी युक्ति की आलोचनाओं का उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है।

जिस प्रकार काण्ट उचित अनुचित के आधार पर स्वतन्त्रता पर पहुँच जाता है, उसी प्रकार कर्तव्य के आधार पर अमरता के विचार पर भी पहुँचा जा सकता है। यदि हमें यह ज्ञात हो कि हमारे कर्तव्य क्या हैं, अर्थात् क्या उचित है और क्या अनुचित है, तो इसके बल पर अमरता को स्वीकार किया जा सकता है। हमें कर्तव्य तथा उचित-अनुचित का ज्ञान समाज की स्वीकार्यता के आधार पर भी हो सकता है और प्रातिभा ज्ञान के द्वारा भी। उसके लिए अमरता का ज्ञान पहले से आवश्यक नहीं है, यद्यपि उसे बाद में कर्तव्य के ज्ञान की पूर्वमान्यता के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है। इस तरह ब्रॉड की आलोचना का निराकरण हो जाता है।

जहाँ तक विश्व को अशुभ न मानने संबंधी युक्ति का प्रश्न है, तो ब्रॉड ने टेलर की इस आधार पर आलोचना की है कि अमरता को सिद्ध करने के लिए टेलर विश्व के अशुभ नहीं मानते वरन् विश्व के अशुभत्व की असिद्धि के लिए वे अमरता को स्वीकार कर लेते हैं। इसीलिए ब्रॉड का कहना है कि विश्व का अशुभत्व अमरता से भिन्न आधार पर सिद्ध किया जाना चाहिए वरना युक्ति वैध नहीं होगी।

यदि विश्व के अशुभत्व को ईश्वर के आधार पर असिद्ध किया जाए तो ब्राड को काई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। अर्थात्, यदि यह माना जाये कि विश्व एक सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान एवं सर्वगुणसम्पन्न ईश्वर की कृति है और ऐसी सत्ता की कृति गहन रूप से अशुभ नहीं हो सकती, तो अमरता से भिन्न आधार पर अशुभत्व की असिद्धि हो जाती है और तब ऐसे अशुभत्व के अभाव में अमरता के विचार को स्वीकार किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त विश्व के गहन अशुभत्व की असिद्धि और फलस्वरूप आत्मा की अमरता शाश्वत नैतिक व्यवस्था के आधार पर भी की जा सकती है। यदि हमारे नैतिक अनुभव सत्य या सार्थक हैं तो, सद्गुण अनिवार्य रूप से आनन्द से जुड़ा होना चाहिए, क्योंकि यदि ऐसा नहीं है तो सम्पूर्ण नैतिकता ही असंगत हो जायेगी। दूसरे शब्दों में, ऐसा स्वीकार किया जा सकता है कि एक शाश्वत नैतिक व्यवस्था विश्व को संचालित करती है और यदि कुछ भी नैतिक व्यवस्था के विपरीत है तो नैतिक व्यवस्था ही उसे नष्ट कर देती है। यदि कोई नैतिक व्यवस्था नहीं है तो सम्पूर्ण उचित-अनुचित का अन्तर अर्थ शून्य हो जाएगा, जिसे कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार यह विश्वास किया जा सकता है कि जो भी बुराइयाँ या अशुभ हैं वे नैतिक व्यवस्था से अन्ततः शुभ के रूप में परिवर्तित हो जायेंगी और विश्व के अशुभत्व का अंततः विनाश हो जाएगा। दूसरी तरफ, यदि विश्व में अशुभत्व है, तो हमारे सभी नैतिक प्रयास अन्ततः व्यर्थ ही हो जायेंगे। तो क्या यह स्वीकार कर लिया जाये कि नैतिकता हमें ऐसी ओर ले जा रही है, जहां अन्ततः कुछ भी प्राप्ति संभव नहीं है। निश्चित ही ऐसा स्वीकार नहीं किया जा सकता।

अतः नैतिकता के लिए शाश्वत नैतिक व्यवस्था अनिवार्य है, जिसके द्वारा विश्व के गहन अशुभत्व की असिद्धि की जा सकती है। आत्मा की अमरता इसी का अंग है।

अध्याय : पाँच

अमरता के लिए परामनोवैज्ञानिक प्रमाण

अभी तक आत्मा की अमरता को सिद्ध करने के प्रयास में जिन प्रमाणों की चर्चा की गई है वे शुद्ध वैचारिक एवं चिन्तनशील गतिविधियों पर आधारित प्रागनुभाविक प्रमाण थे, किन्तु अब जो तर्क प्रस्तुत किये जा रहे हैं, वह वास्तविक घटनाओं पर आधारित है और इनके लिए किसी न किसी रूप में अनुभव के साक्ष्य पर जिन्हें परामनोविज्ञान द्वारा एकत्रित किया गया हैं, आश्रित रहना पड़ता है। ये परामनोवैज्ञानिक तर्क पूर्वचर्चित तर्कों की भाँति मात्र आराम से बैठकर विचार करते हुए नहीं प्रस्तुत किए जा सकते, बल्कि इनके लिए शारीरिक प्रयास करते हुए आनुभविक तथ्यों को जुटाना आवश्यक है। अध्ययन की सुविधा के लिए परामनोवैज्ञानिक तर्क को चार शीर्षकों में समझा जा सकता है-

मृत्यु आसन्न में किये गये अनुभव (Near death experiences)

प्रेतात्मा संबंधी अनुभव (Apparitional experiences)

मीडियम के द्वारा सूचनाओं की प्राप्ति (Communications via mediums)

पुनर्जन्म संबंधी प्रमाण (Evidence of Reincarnations)

इनके अन्तर्गत हम अनेक व्यक्तियों के साथ घटित होने वाली वास्तविक घटनाओं एवं तथ्यों की चर्चा करेंगे और साथ ही यह देखने का प्रयास करेंगे कि क्या इन व्यक्तिगत आनुभाविक तथ्यों के आधार पर आगमन के द्वारा मानवीय अमरता के विषय में कोई निष्कर्ष निकाला जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि पूर्वचर्चित युक्तियाँ जहां सामान्य सिद्धान्तों से आरम्भ होकर व्यक्तियों की अमरता को सिद्ध करने का प्रयास करती है, वहीं वर्तमान परामनोवैज्ञानिक युक्ति में हम व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर अमरता के सामान्य सिद्धान्त की सिद्धि का प्रयास करेंगे। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि आनुभविक तथ्यों के आधार पर निश्चित एवं अनिवार्य निष्कर्ष नहीं प्राप्त किए जा सकते, लेकिन फिर भी कम या अधिक सम्भावना तो व्यक्त की ही जा सकती है जैसा कि प्रायः अन्य विज्ञानों में भी देखा जा सकता है। निःसंदेह इस प्रकार के आनुभाविक सामान्यीकरण के निष्कर्ष किसी दिशा में जा सकते है, क्योंकि हो सकताहै कि इन आधारों पर व्यक्तिगत अमरता के पक्ष में कुछ दृढ़ निष्कर्ष निकाले जा सकें लेकिन साथ ही इसका विरोधी विकल्प भी सम्भव है।

५.१ मृत्यु आसन्न में किए गए अनुभव सम्बन्धी प्रमाण

सोसायटी फार साइकल रिसर्च (SPR) जिसकी स्थापना इंग्लैण्ड में 1882 में हुई थी और जिसका उद्‌देश्य परासामान्य (Paranormal) तथ्यों एवं घटनाओं का अनुसंधान करना था, के संस्थापक सदस्यों में से एक सर विलियम बैरेट ने 1962 में Death Bed Vision के नाम से कुछ घटनाओं का संग्रह प्रकाशित किया जिसमें यह कहा गया है कि बहुत से मरने वाले व्यक्तियों

को मृत्यु के ठीक पूर्व अपने ऐसे विशिष्ट रिश्तेदारों व मित्रों का प्रत्यक्ष दर्शन होता है, जिनकी कि पहले मृत्यु हो चुकी है। ऐसे भी केस सामने आये हैं, जिसमें अनुभवकर्ता को तो यह विश्वास था कि व्यक्ति जीवित है, लेकिन वास्तव में व्यक्ति की मृत्यु हो चुकी थी। 20वीं शताब्दी में प्रसूति विशेषज्ञ लेडी बैरेट ने एक केस का उल्लेख किया है, जिसमें एक युवा महिला की प्रसव में मृत्यु हो जाती है, जिसने अपनी मृत्यु के कुछ क्षण पहले न केवल अपने मृत पिता को देखा, बल्कि अपनी बहन विडा को भी देखा, जिसकी मृत्यु दो सप्ताह पहले हो चुकी थी, किन्तु उसकी गम्भीर स्थिति की वजह से उसे बताया नहीं गया था।[59]

आगे के और व्यवस्थित अध्ययन में 20वीं शताब्दी के पेशेवर अमरीकी परामनोवैज्ञानिक कार्लिस ओसिस ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि बैरेट का यह मानना गलत है कि मृत्यु आसन्न (Death bed vision) में केवल मृत व्यक्तियों के ही अनुभव प्राप्त होते हैं इस सम्बन्ध में कुछ सांख्यिकीय ऑकड़ों पर भी दृष्टि डालना आवश्यक है। 1959-60 में कार्लिस ओसिस 10000 (दस हजार) अमरीकी चिकित्सकों व नर्सों को एक प्रश्नावली वितरित कराई और प्राप्त होने वाले 640 उत्तरों का विश्लेषण कर बताया कि 35000 (पैंतीस हजार) मरने वाले मरीजों का सर्वेक्षण किया गया जिनमें से 1300 (एक हजार तीन सौ) उदाहरण प्रेत शरीर अनुभवों (Apparitional experiences) के थे।[60] उत्तर देने वाले 190 व्यक्तियों से गहराई से पूछताछ की गई और पाया गया कि 18% प्रेत शरीर अनुभव (Apparitions) जीवित मनुष्यों के थे, 54% मृत रिश्तेदारों के 28% धार्मिक विभूतियाँ जैसे जीसस, सन्त, देवदूत आदि के थे।

---

[59] 540 W Barrett, Death bed visions. (London: Methuan, 1926) PP. 10-17

[60]. K. Osis, Death bed Observations by Physlcians and Nurses (New York: Parapsychology Foundation, 1961).

इसके पश्चात्, कार्लिस ओसिस व उनके साथी अमरीकी परामनोवैज्ञानिक अरलेण्डर हेराल्डसन ने 1977 में भारत और अमरीका दोनों देशों में एक सर्वेक्षण कराया[61] जिसमें अमरीकी सर्वेक्षण में 17% प्रेत- आकृतियाँ (Apparitional figures) जीवित व्यक्तियों के 70% मृत रिश्तेदारों के और 13% धार्मिक विभूतियों के थे। जबकि भारत में कराये गये सर्वेक्षण में 21% जीवित व्यक्तियों के 29% मृत रिश्तेदारों के और 50% धार्मिक विभूतियों की प्रेत–आकृतियाँ (A pparitional figure) थीं। यदि मृत व्यक्ति और धार्मिक विभूतियों को एक साथ मिलाकर अन्य जगत के साथ संबंधित किया जाये तो अमेरिका और भारत में क्रमशः 83% और 79% उदाहरण अन्य जगत से और क्रमशः 17% और 21% इस जगत से संबंधित थे।

ये गणनाएँ पर्याप्त सार्थक लगती हैं। साथ ही 1975 में कराये गये ग्रीन और मैकरीरे 20वीं के उत्तरार्द्ध के ब्रिटिश परामनोवैज्ञानिक के सर्वेक्षण में यह तथ्य सामने आया कि Appratlonal प्रेत–आकृतियों में 72% पहचाने नहीं जा सके। यद्यपि पहचाने गये अनुभवों में से 2/3 ऐसे व्यक्तियों के थे जिन्हें अनुभवकर्ता जानता था कि वे मर चुके हैं।[62] जबकि मृत और धार्मिक Apparitions की संख्या ओसिस और हेराल्डसन के सर्वेक्षण में लगभग 80% थी। लेकिन यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ओसिस और हेरेल्डसन के सर्वेक्षण में जनसंख्या के एक बहुत छोटे से वर्ग का निरीक्षण किया गया था (लगभग 880 केसों का) और साथ ही अधिकतर Apparitional cases ऐसे थे, जो किसी व्यक्ति द्वारा पूरे जीवन में केवल एक बार अनुभव किये गये थे। ओसिस और हेरेल्डसन को सर्वेक्षण में 62% प्रयोग ऐसे व्यक्तियों पर किये गये थे जो मरणासन्न बीमारी की अवस्था में थे और मृत्यु के 24 घण्टे पहले उनका निरीक्षण किया गया। इनमें से 20% एक से 6 घण्टे में मर गये, जबकि 27% एक घण्टे में ही मर गये।

Death bed experience के विषय में जो साक्ष्य बैरेट, ओसिस और हेरेल्डसन के द्वारा एकत्र किये गये हैं, वे डाक्टरों, नर्सो व सम्बन्धियों के द्वारा ऐसे मरीज के शब्दों, भावों व व्यवहारों के प्रेक्षण पर आधारित थे, जो प्रायः मर जाते थे और इस प्रकार ये हमारे पास परोक्ष

---

61. K. Osis and E.Haraldson, At the Hour of Death (New York: Avon, 1977).
62. G. Green and C. Mc Geery, Apparitions (London, Hamish Hamilton, 1975, P. 178)

रूप से (Second hand) पहुँचते थे। किन्तु पिछले कुछ दशकों में चिकित्सा विशेषज्ञों, मनाचिकित्सकों और परामनोवैज्ञानिकों ने ऐसे व्यक्तियों की रिपोर्ट पर ध्यान केन्द्रित किया है, जो लगभग मृत्यु के समीप थे और ठीक होने के बाद वे प्रत्यक्ष रूप में (First hand) अपने उस अनुभव के बारे में बता सकते थे, जो उन्होंने उन कुछ मिनटों में प्राप्त किया जब वे लगभग मृत थे। ऐसे Near Death Experience को ही सही अर्थ में प्रामाणिक माना जाता है।

Near Death Experience पर कार्य करने वाले Elizabeth Kulber Ross अमरीकी परामनोविज्ञानी को भी प्रसिद्धि प्राप्त हुई है, जिन्होंने 20 शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दो दशकों तक मरणासन्न मरीजों के साथ काम किया है। और उनके महत्वपूर्ण अनुभवों को रिकार्ड किया। 1975 में एक अमरीकी चिकित्सक Raymond Moody की पुस्तक Life After death प्रकाशित होने के बाद अपेक्षाकृत अधिक लोगों का ध्यान इस प्रक्रिया और सम्बन्धित पक्षों पर आकृष्ट किया है। इसके पश्चात्, Sabom (अमरीका) और Rawlings (अमरीका) जैसे हृदय रोग विशेषज्ञों, Noyes और Stevenson (अमरीका) जैसे मनोचिकित्सकों, Ringh (अमरीका) और Gray (इंग्लैण्ड) जैसे मनोवैज्ञानिकों तथा Rogo और Blackmore (इंग्लैण्ड) जैसे परामनोवैज्ञानिक चिकित्सकों ने आगे इस संबंध में अनेक अध्ययन किए हैं। अब पुनर्जीवित करने के नवीन उपायों के द्वारा अधिक लोगों की जाने बचायी जाने लगी है, जिससे अब पहले की अपेक्षा अधिक ऐसे मरीजों का साक्षात्कार किये जाने की सम्भावना बढ़ जाती है जो मृत्यु के बिन्दु पर पहुँच कर वापस वर्तमान जीवन में लौट आते हैं और उनसे यह ज्ञात किया जा सकता है कि मृत्यु के बिन्दु पर उन्होंने क्या अनुभव किया था? फिर, यह विचार उठता है कि क्या इन

अनुभवों के बल पर यह माना जा सकता है कि मृत्यु के बाद भी व्यक्ति किसी रूप में जीवित रहता है?

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि जब ये व्यक्ति वास्तव में नहीं मरते तो उन्हें किस संदर्भ में मृत्यु के समीप कहा जा सकता है? और साथ ही, क्या इनके द्वारा वर्णित अनुभवों को उस समय निश्चित रूप से होने वाली घटनाओं के विषय में उपयोगी, प्रमाण के रूप में माना जा सकता है? हल (Hull) विश्व विद्यालय यू०एस०ए० के प्रोफेसर R.W.K. Patterson के अनुसार इन प्रश्नों का सरल उत्तर यह है कि संबंधित मरीज ऐसी स्थिति में होते हैं, जहाँ इनकी जैविक क्रियाएं शीघ्र समाप्त होने का संकेत दे देती हैं और इनके विषय में चिकित्सा विशेषज्ञों का यह निर्णय होता है कि ये कुछ मिनटों में ही बन्द होने वाली हैं। इस प्रकार चिकित्सकीय सहायता के बिना वे भौतिक रूप से मृत ही होते हैं। इस संदर्भ में उन्हें मृत्यु के बिन्दु पर (At the point of death) कहा जा सकता है। अतः ये व्यक्ति वास्तव में भौतिक जीवन की अन्तिम सीमा पर होते हैं और यह माना जा सकता है कि इस स्तर पर ऐसे व्यक्तियों को इस सीमा के परे की भी झलक मिल सकती है। अतः यदि व्यक्ति, अपने ऐसे मृत्यु के बिन्दु पर के अनुभवों को याद रख पाता है, तो इसे निश्चित ही गम्भीरता से लेना होगा।[63]

जहाँ तक ऐसे अनुभवों की विशेषताओं का प्रश्न है, तो R.W.K. Patterson ने इन्हें दो भागों में बाँटा है सामान्य विशेषताएं ¼General characteristics½ और श्रृंख्लाबद्ध विशेषताएं

63. R.W.K. Patterson, Philosophy and the belief in a life after death P. 140.

(serial characteristics) A[64] Near death experience(NDE) की सामान्य विशेषताएं इस प्रकार है-

सर्वप्रथम, ये अनुभव कुछ सीमा तक अकथनीय होते हैं जिन्हें भाषा के माध्यम से पूर्णतः और अक्षरशः व्यक्त नहीं किया जा सकता, और इसीलिए ऐसे अनुभवों का गहराई या सम्पूर्णता के साथ न्याय नहीं किया जा सकता। द्वितीय, इन अनुभवों के दौरान काल बोध या तो समाप्त हो जाता है या अप्रासांगिक हो जाता है। तृतीय, ये अनुभव गहन वास्तविकता के बोध का एहसास लिए रहते हैं और इसी रूप में याद किये जाते हैं। अनुभवकर्ता कहते है कि ये अनुभव स्वप्न के अनुभव की काल्पनिकता तथा दवाओं के प्रभाव से उत्पन्न काल्पनिकता से पूरी तरह भिन्न हैं। चतुर्थ, इस अनुभव को मृत्यु के अनुभव के रूप में याद किया जाता है, अर्थात् पूरे अनुभव के दौरान अनुभवकर्ता को यह विश्वास होता है कि अब वे मर गये हैं अथवा मृत्यु प्राप्त करने की प्रक्रिया में हैं। पंचम, इस अनुभव में पूर्णतया शान्ति, विश्राम और स्थिरता की अनुभूति होती है। षष्ठम्, N.D.E. के सभी अनुभवकर्ता यह मानते हैं कि ये अनुभव भौतिक शरीर के बाहर होते हैं, और यह अशरीरी तत्व ही व्यक्ति का स्वत्व होता है।

जहाँ तक N.D.E. की श्रृंखलाबद्ध विशेषताओं का प्रश्न है, तो वे इस प्रकार हैं। प्राथमिक अवस्था (first stage) में तीव्र शारीरिक पीड़ा और मनोवैज्ञानिक अवसाद (Psychological distress) जिनसे होकर मरीज गुजर रहा होता है, एकाएक बन्द हो जाते हैं और वह चिन्तामुक्त, सुरक्षित और आराम की अनुभूति करने लगता है। व्यक्ति की चेतना शरीर की सतह

---

64. Ibid, P. 140

से कुछ फिट ऊपर से शरीर को देखती रहती है कि भौतिक शरीर पड़ा हुआ है, जो चेतना का कोई संकेत नहीं दे रहा है और मृत्यु से जूझ रहा है। व्यक्ति अपने मृतप्राय शरीर (Dying body) को बिना किसी रूचि के देखता है। यहाँ तक कि कभी-कभी वह दया भाव से और यहाँ तक कि देखता है। वह समझता है कि उसके चारों ओर लोग क्या कर रहे हैं, प्रायः वह सुन भी सकता है कि लोग क्या कह रहे है? वह देखता है कि डाक्टरों का जीवन रक्षक दल आता है और वे डाक्टर उसे बचाने का पूरा प्रयास कर रहे हैं। प्रायः वह चाहता है कि वे लोग यह प्रयास बन्द कर दें। वह उनका ध्यान भी आकर्षित करने का प्रयास करना है, लेकिन असफल रहता है। वह पाता है कि वह अपनी अशारीरिक अवस्था में तैरते हुए घूम सकता और यहाँ तक कि बिल्डिंग के अन्य भागों में भी जा सकता है। पूरे समय में वह अपने को मानसिक रूप से सचेत और प्रेक्षक के रूप में अनुभूत करता है। और उसे अपने प्रत्यक्ष और संवेदनाएं पूर्णतः स्पष्ट लगती हैं। वह पहली अवस्था, जिसे आटोस्कोपिक अवस्था (Autoscopic stage) भी कहा जाता है, अनुभवकर्ता के उसी प्राकृतिक परिसर में होती है, जहाँ वह अपने शरीर को मृतप्राय या मृत देखता है।

NDE की उत्तरवर्ती अवस्थाएं अप्राकृतिक वातावरण में घटित होती हैं और इन्हें सामूहिक रूप से NDE का अतीन्द्रिय चरण (Transcendental phase) कहा जाता है। यहाँ विषयी यह अनुभव करता है कि उसे एक अन्धकारमय क्षेत्र में ले जाया जाता है, जो प्रायः एक सुरंग के समान होता है। सुरंग में घुसने पर अनुभवकर्ता उसके अन्तिम सिरे पर प्रकाश को देख सकता है। सुरंग से निकलने पर शीघ्र ही वह एक प्रकाश में लाया जाता है। आश्चर्यजनक रूप

से उसे कोई डर महसूस नहीं होता। जब वह अंधकार से निकलता है, तो वह उज्जवल आकाररहित अस्तित्व का सामना करता है, जिसे प्रायः प्रकाश की सत्ता (Being of light) कहा जाता है और वह इसे ईश्वर, ईसा अथवा अन्य महान् आत्माओं की सुखद उपस्थिति समझ सकता है। यहाँ पर दैवी सत्ता प्रेरित करती है कि वह अपने द्वारा उस जीवन में, जिसे अब वह छोड़ रहा है, किये गये या न किये अच्छे-बुरे कार्यों की समीक्षा करें। अब अनुभवकर्ता अपने को एक नये वातावरण में पाता है, जिसे स्वर्गिक वातावरण कहा जा सकता हैं, तथा जो सौन्दर्य में परिपूर्ण होता है। यहाँ उसे बहुत सी आकृतियाँ दिखलाई पड़ती हैं, जिनमें से कुछ परिचित होते हैं, तो कुछ अपरिचित। यहाँ पर ही वह मृत रिश्तेदारों को देखता है तथा कभी भी ऐसे व्यक्तियों से नहीं मिलता जो उस समय पृथ्वी पर जीवित हैं। इन आकृतियों के साथ वह मूक भाषा में (Non verbal way) वार्तालाप भी कर सकता है। कुछ स्थितियों में उसका सामना कुछ अवरोधकों (Barriens) से होता है। ये अवरोधक गेट, दीवार, नदी या किसी अन्य रूप का हो सकता है, जिन्हें पार करना होता है। अब यहाँ पर NDE समाप्त होने को होते हैं। इसके लिए उसे एक आवाज सुनाई देती है या वह कुछ प्रभुत्व से भरा हुआ अशाब्दिक सन्देशों (Authoritative Non Verbal Massage) को ग्रहण करता है, जो उसे वापस जाने का निर्देश देती हैं कि अभी उसका समय नहीं आया है और अनुभवकर्ता इसे अनिच्छा से स्वीकार करता है। अब वह अपने को तेज गति से पीछे की ओर तब तक जाता हुआ पाता है, जब तक कि वह भौतिक शरीर में सामान्य चेतना के साथ अस्पताल के बिस्तर पर नहीं आ जाता। और अब वह पुनः शारीरिक कष्ट का अनुभव करने लगता है।

ठीक होने पर वह पाता है कि अन्य लोग जिनमें वह विश्वास करता था और जिन्हें वह अपना अनुभव बताता है, उसके प्रति अनजाना, व्याकुलता भरा एवं अविश्वासपूर्ण व्यवहार करते हैं, यहाँ तक कि उसका उपहास भी करत हैं। ऐसा क्यों हैं, यह उसकी समझ में नहीं आता। फिर भी वह मृत्यु के करीब के अपने अनुभवों को भूल नहीं पाता। इस अनुभव के फलस्वरूप जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण बदल जाता है, क्योंकि वह अब एकदम खुले व्यक्तित्व का हो जाता है तथा अन्य लोगों के प्रति अधिक सरल स्पष्टवादी व संवेदनशील हो जाता है और मृत्यु के प्रति उसका भय सदा के लिए समाप्त हो जाता है।

लेकिन यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या Near Death Experience को भौतिक शरीर से बाहर किए गए मानवीय आत्मा के एक ऐसे अनुभवों के समुच्चय के रूप में देखा जाये, जिससे मृत्यु के उपरान्त अस्तित्व की बात सिद्ध होती है अथवा इसे पूर्णतः एक आत्मनिष्ठ भ्रम के रूप में स्वीकार किया जाये जो मस्तिष्क के पूर्णतः समाप्त होने के पूर्व एक काल्पनिक प्रतिमाओं के रूप में सामने आता है। एक सीमा तक यह कम सम्भावना लगती है कि हजारों व्यक्ति जिन्होनें NDE प्राप्त किया है, उन्होंने चेतन अथवा अचेतन, किसी भी रूप में, पूरी चीजों को काल्पनिक रूप से गढ़ा हो। इस बात की सम्भावना भी कम है कि अनुभवकर्ता के अनुभव उन बातों से उत्पन्न स्वीकार किये जाएं जो उसने उस समय अपने चारों ओर सुनी हैं। अर्द्ध चेतना अवस्था में भी लोग प्रायः अपने आस-पास की बातों को सुन सकते हैं। लेकिन यह सत्य नहीं लगता, क्योंकि कुछ NDE लोगों को ऐसे समय में होते हैं जबकि वे पूर्णतः अकेले होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ मरीज जिन्होंने अर्द्धचेतनावस्था में कुछ सुना भी है और NDE ग्रहण

किया हैं, तो वे इन दोनों अवस्थाओं में अन्तर करते हैं। साथ ही NDE को स्वप्न कहना भी मूर्खता होगी, क्योंकि स्वप्न को तो उसके समाप्त होने पर अवास्तविक ही मान लिया जाता है जबकि NDE को अनुभवकर्ता कभी अवास्तविक नहीं मानता। इसके आगे हम NDE को मरीज के पूर्व अपेक्षाओं से उत्पन्न की कल्पना भी नहीं कह सकते, क्योंकि किसी भी केस में अनुभवकर्ता को NDE का पूर्वज्ञान नहीं होता है और स्वयं अनुभव करने के पूर्व लोग प्रायः इसके विवरणों की उपेक्षा ही करते हैं।

कुछ मनोचिकित्सकों ने NDE की आटोस्कोपिक अवस्था (Autoscopic Stage) की समानता मानसिक मरीजों के आटोस्कोपिक भ्रान्तियों (Autoscopic hallucinations) से की है किन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि मानसिक मरीजों के अनुभव प्रायः अवास्तविक भयानक और नकारात्मक होते हैं, जबकि NDE में ऐसा नहीं होता। कुछ अन्य मनोचिकित्सकों ने NDE की तुलना निर्वैयक्तिक (Depersonalized) प्रतिक्रिया से की है जो प्रायः जीवन के लिए अघातक परिस्थितियों में देखी जाती है जैसे मोटर दुर्घटना जहां घटनाग्रस्त व्यक्ति स्वयं से तटस्थ होकर देख सकता है कि क्या हो रहा है। किन्तु यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि जहाँ Depersonalized reaction में ऐसा माना जाता है कि व्यक्ति अपनी शीघ्र होने वाली मृत्यु से अवगत रहता है और ऐसा सोचता है कि जो हो रहा है वह अवास्तविक है, वहीं NDE में चेतना का अचानक क्षय भावी घातक परिणामों के विषय में कोई चेतावनी नहीं देता और अनुभवकर्ता यह सोचता है कि जो कुछ हो रहा है वह वास्तविक है।

NDE की रासायनिक व भौतिक व्याख्या भी महत्वपूर्ण हो सकती है, यदि ये आवश्यक रूप से NDE को एक भिन्न प्रकार का अनुभव सिद्ध कर दें। इसी क्रम में कहा जाता है कि NDE एक ऐसा भ्रम हैं, जो दवाओं के परिणाम से या मस्तिष्क के प्रभावित होने के परिणामस्वरूप होता है। यद्यपि यह सत्य है कि ये सभी प्रकार के अनुभव मनुष्य के अनुभवों में गम्भीर बदलाव लाते हैं, किन्तु आपत्ति यह है कि ये सभी अनुभव NDE से पूर्णता भिन्न है। उदाहरण के लिए कैंसर पीड़ित के लिए B-endorphins 73 घण्टों तक दर्द को समाप्त करती है, जबकि NDE में शारीरिक पीड़ा और अन्य सभी शारीरिक संवेदन पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं और ऐसा केवल NDE के क्षणों तक होता है, जो प्रायः कुछ ही मिनटों के होते हैं। साथ ही B-endorphins के प्रभाव से नींद आती है, जबकि NDE अनुभवकर्ता जागरूक रहता है। साथ ही नशीली दवाओं से उत्पन्न विभ्रम में विशिष्टता (Idiosyncratic) तथा परिवर्तनशीलता होती है जबकि NDE में ऐसा नहीं होता। इसके अतिरिक्त जिन मरीजों ने नशीली दवाओं से उत्पन्न भ्रम (Drug induced Hallucination) और NDE दोनों प्राप्त किए हैं वे स्पष्ट रूप से दोनों में अन्तर करते हैं। साथ ही बहुत से NDE बिना चिकित्सीय भ्रम कारकों के भी मरीजों को प्राप्त हो जाते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि NDE को आत्मनिष्ठ भ्रम के रूप में सिद्ध करने के प्रयास सफल नहीं हो सके हैं। साथ ही इस दिशा में सकारात्मक प्रमाण भी उपलब्ध है कि NDE के अनुभव वास्तविक और वस्तुनिष्ठ है, विशेष रूप से वे अनुभव जब वह अतीन्द्रिय अवस्था (Transcendental Stage) पर पहुँचता है, जिसका कि प्रत्यक्ष सत्यापन नहीं हो सकता है।

सर्वप्रथम अतीन्द्रिय अवस्था (Transcendental Stage) के अनुभव की वास्तविकता के लिए पूर्ववर्ती आटोस्कोपिक अवस्था (Autoscopic Stage) के अनुभवों से कुछ दृढ़ता प्राप्त होती है। यह अनुभव सामान्य स्वास्थ्य के लोगों के आउट ऑफ बॉडी एक्सपीरिएन्स (Out of the Body Experiences or OBE) से समान ही है, जो प्रायः लगभग 7 या 8 व्यक्तियों में से एक को प्राप्त होता है । यद्यपि OBE भी भ्रम हो सकता है और यह भी पर्याप्त परिणाम उत्पन्न करने में असफल है, फिर भी हम इसे कुछ महत्व देने को बाध्य है, क्योंकि बहुत से केसों में OBE अनुभवकर्ता आस-पास के वातावरण के विषय में जानकारी देता है, जिसे पर्याप्त रूप से सत्यापित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, कभी-कभी NDE के आटोस्कोपिक अवस्था के अनुभवों को प्रत्यक्षतः सत्यापित किया जा सकता है। थोड़े बहुत केसों में अपरिचित चिकित्सकीय तकनीकों का सन्दर्भ दिया जाता है। साथ ही वे चिकित्सा में संलग्न व्यक्तियों के बारे में ऐसी विशिष्ट सूचनाएं देते हैं जिसे उन्होंने पहले कभी नहीं देखा, जैसे उनके द्वारा पहने हुए वस्त्रों का विवरण, उनके द्वारा प्रयुक्त औजारों का वर्णन, उनका चलना-फिरना, उनका प्रवेश और निकास और उस स्थान का भौतिक विवरण जहाँ NDE घटित हो रहा है, जैसे दरवाजों और खिड़कियों की स्थितियाँ, पर्दों के रंग फर्श के विषय में इत्यादि। कभी इनमें परिवार के ऐसे व्यक्तियों व मित्रों के विवरण भी होते हैं, जो अनपेक्षित रूप से अस्पताल पहुँच जाते हैं और शल्य कक्ष के बाहर मरीज की प्रतीक्षा करते रहते हैं। प्रायः NDE अनुभवकर्ता ऐसी वस्तुओं व ऐसे स्थानों का भी विवरण प्रस्तुत कर देता है, जिसके प्रेक्षण का कोई अवसर ही नहीं होता। उदाहरण के लिए किसी में एक मरीज ने तीसरी मंजिल के एक कमरे में एक टेनिस के जूते का अनुभव करने का दावा किया और वह वहीं पाया गया। A patient who claimed to remember spotting a

strange tennis shoe stuck on the ledge of a thindfloor room which wal almost in visible from within that room when a hospital social worker was eventually persuaded to look for it and retrieve it.[65]

पुनः कोई भी असाधारण घटना जब विभिन्न गवाहों के द्वारा पुष्ट की जाती है तो वह और भी सुदृढ़ हो जाती है और इस परीक्षण से NDE के Transcendental Stage में वास्तविक अनुभव होने की सम्भावना और भी बढ़ जाती है, क्योंकि इसकी पुष्टि अनेक cases में हुई है। यद्यपि NDE के विषय में विभिन्न सर्वेक्षणों के परिणाम भिन्न-भिन्न है, लेकिन इनसे इतना तो निश्चित है कि मनुष्यों का एक वर्ग मृत्यु के समीप NDE घटना को सिद्ध कर सकता है। मनुष्यों का यह वर्ग, आयु, लिंग, सामाजिक, आर्थिक स्थिति, शैक्षिक योग्यता और धार्मिक दृष्टि से अलग-अलग था और फिर भी उनके अनुभव स्पष्ट, विस्तृत, संगत एवं सन्तुलित थे।

पुनः विभिन्न शरीरों के द्वारा अनुभूत होना इस जटिल घटना का स्वतन्त्र और निष्पक्ष प्रमाण है, जिससे अनिवार्यतः यह सिद्ध होता है कि वह घटना वास्तव में घटित हुई है, जिसे अनुभव किया गया। साथ ही सभी अनुभवों का लगभग एक जैसा होना इसे और भी पुष्ट करता है। किन्तु बहुत से मृत्यु से बचने वाले ऐसे भी हैं, जो किसी भी प्रकार के NDE को नहीं बता पाते। किन्तु यह बात NDE प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के अनुभवों को असिद्ध नहीं करती है। किन्तु फिर भी जब तक NDE को याद करने की असफलता की सामान्य व्याख्या न हो जाये, तब तक यह NDE को कमजोर अवश्य कर देती है।

---

65 - D. Scott Rogo, The Return from silence (welling borought : The Aquarian Press 1989) PP. 191-2

एक अन्य साक्ष्य जो NDE को अप्रत्यक्ष रूप से पुष्ट करता है, वह शारीरिक प्रमाण है और सर्वाधिक उपयुक्त शारीरिक साक्ष्य है EEG की रेखा का सीधा या लगभग सीधा (Flator Near flat हो जाना। ऐसा तब होता है, जब मरीज का मस्तिष्क किसी भी प्रकार का संकेत देना बन्द कर देता है या यों कहा जाये कि काम करना बन्द कर देता है। मस्तिष्क क्रिया के बन्द होने का अर्थ यही है कि अनुभव बिना मस्तिष्क के किया जा रहा है। इस कारण इसे आत्मनिष्ठ भ्रम भी नहीं कहा जा सकता। निश्चित रूप से जब NDE होता है, तो डॉक्टर मरीज को मौत के मुँह से निकालने के प्रयास में लगे होते हैं और मस्तिष्क की किसी क्रिया का रिकार्ड नहीं होता। इसलिए इसके अधिक प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं, जो कि खेद का विषय है। लेकिन फिर भी कभी-कभी मस्तिष्क क्रिया को निरन्तर प्रेक्षित किया जाता है अतः हमें थोड़े बहुत साक्ष्य उपलब्ध हो जाते हैं। उदाहरण के लिए डॉ० फ्रेड शूमेकर ने इस दिशा में प्रयास किया है-

"In a Denver candiologist Dr. Fred Schoonmaker, reported that out of a total of 1400 NDE cases collected by him since 1961 there were 55 examples of subjects whose EEG were temporerily Flat.[66]

लेकिन इन सभी बातों पर विचार करने के पश्चात् निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि न तो डेथ-बेड विजन (Death-Bed-Vision) न Near Death Experience और न ही दोनों मिलकर व्यक्तिगत अमरता के लिए कोई निर्णायक साक्ष्य प्रदान करते हैं। यद्यपि उसकी सम्भावना को अवश्य प्रश्रय देते हैं। अर्थात् ओसिस और हेरेल्डसन, मूडी आदि शोधकर्ताओं के

66- F. Schoonmaker, Denver Candiologist disclosed finding after 18 years of near death research Anabiosis, May 1979, P. 102.

कठिन प्रयासों के बाद भी बहुत सी सन्दिग्धता, त्रुटियाँ व असुलझी समस्याएं बनी हुई है, जिनके भावी शोध से समाप्त होने की आशा की जा सकती है। लेकिन फिर भी इन प्रयासों से इस धारणा को धक्का अवश्य पहुँचा है कि शरीर की मृत्यु के साथ मन भी पूर्णतः समाप्त हो जाता है।

५.२ प्रेतात्माओं के अनुभव सम्बन्धी प्रमाण

अब परामनोवैज्ञानिक तर्क के दूसरे भेद प्रतात्माओं के अनुभव संबंधी प्रमाण पर चर्चा की जायेगी। इसके अन्तर्गत मृत व्यक्तियों की प्रेतात्माओं का प्रत्यक्ष अनुभव आता है। कुछ विद्वानों ने इसे मृत मनुष्यों के आकाशीय प्रत्यक्ष की संज्ञा दी है, जिसमें मृत व्यक्ति इस प्रकार के विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से उस स्थान पर अपने वास्तविक अस्तित्व की घोषणा करते हैं। इस प्रकार की प्रेताकृतियों के प्रत्यक्ष की घटनाएं कम से कम उन व्यक्तियों को बिल्कुल निश्चित लगती है, जिन्होंने ऐसे प्रत्यक्ष किये हैं यद्यपि दूसरों की वे काल्पनिक लग सकती हैं।

यद्यपि कभी-कभी प्रेताकृतियों के प्रत्यक्ष को स्पष्ट रूप से भ्रामक कह दिया जाता है ये प्रत्यक्ष शराबियों, नशीली दवाओं का सेवन करने वालों और सिजोफेरेनिक्स (Schizopherenics) या अन्य प्रकार के विकृत चित्त वाले व्यक्तियों के भ्रामक अनुभवों से भिन्न होते हैं। नशीली दवाओं से उत्पन्न इस प्रकार के विभ्रम (Hallucination) मानसिक बीमारी के दौरान बार-बार होते रहते हैं, जिसमें अनुभवकर्ता ऐसी तीव्र ध्वनियों को सुनता है, उदाहरण के लिए जो कभी उसे हिंसात्मक कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं और मरीज

होते हैं। कोई व्यक्ति भीड़भाड़ वाले रेलवे स्टेशन पर तो अपनी पत्नी को पहचानने में गलती कर सकता है, लेकिन घर के अन्दर स्पष्ट प्रकाश में उससे ऐसी गलती की अपेक्षा नहीं की जा सकती।[67] अब प्रेतात्माओं के अनुभव संबंधी कुछ उदाहरणों को देख लेना उचित होगा-

ग्रीन और मैकरीरे की पुस्तक Apparitions में उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि रसोईघर के काम में व्यस्त एक महिला ने देखा कि एक लम्बी और ग्रे बालों वाली एक महिला उसे हाल से देख रही है। उसने पुराना मैला कपड़ा पहना हुआ है और ऊपर से लम्बा चोगा पहना है और अचानक ही वह सिर से नीचे के क्रम में धीरे-धीरे गायब हो गई।[68]

इसी पुस्तक में एक अन्य उदाहरण इस प्रकार दिया गया है कि एक युवा महिला अपनी सुबह की चाय पीकर जैसे ही रसोईघर की तरफ बढ़ी तो देखती है कि उसके बाबा (Grandfather) सिगार पी रहे हैं, जिनकी मृत्यु 13 वर्ष पहले हो चुकी थी।[69]

Proceedings of the SPR के Vol. 6 में एक उदाहरण देते हुए कहा गया है कि एक सेल्समैन दोपहर में अपने होटल के कमरे में था। वह सिगार पीते हुए अपना काम कर रहा था अचानक उसे लगा कि कोई उसके बगल में खड़ा है, यह उसकी वह बहन थी जिसकी मृत्यु

---

67. Green and McCreery, Apparitions (London, Hanish Hamilton, 1975) P.123
68. Op. at, P. 138
69. Op. cit, PP. 189-90

9 वर्ष पहले हो चुकी थी। उसने देखा कि उसकी बहन के चेहरे पर लाल स्क्रैच है। बाद में उसकी माँ ने उसे इस स्क्रैच के बारे में बताया जो घटना अन्य किसी को नहीं पता थी।[70]

इसी प्रकार Myers ने एक उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि एक महिला अपनी बेटी और पति के साथ बिस्तर पर लेटी थी और पति का मुँह दूसरी तरफ था। इतने में महिला ने देखा कि नौसैनिक अधिकारी की वर्दी में कोई पैताने की तरफ झुका हुआ है। उसने अपने पति को जगाया और उसके पति ने भी यह आकृति देखी और उस आकृति ने पति से कुछ शिकायत भरे शब्द भी कहे और फिर दीवार में गुम हो गया। इसके बाद पति ने पत्नी को बताया कि यह आकृति उसके पिता की थी, जिनकी 15 वर्ष पहले मृत्यु हो चुकी थी।[71]

ग्रीन मैकरीरे की पुस्तक Apparition में ही एक उदाहरण इस प्रकार दिया गया है कि कारखाने में काम करने वाले एक कर्मचारी ने अपने साथी से जब Good Morning किया तो वह उसे आश्चर्यजनक रूप से एक टक देखता रहा। इस पर उस कर्मचारी को भी आश्चर्य हुआ। घर लौटने पर उसे पता चला कि उस व्यक्ति की कल शाम दुर्घटना हुई और आज सुबह उसकी मृत्यु हो गई।[72]

Proceeding of the SPR के vol 23 में ई.एम. सिजविक ने एक उदाहरण देते हुए कहा है कि सर्दियों के मौसम एक दिन एक युवा एयरमैन अपने घर में बैठा था तभी उसने देखा

---

70. Proceedings of the SPR, Vol 6 (1889-90) PP. 17-20

71. F.W.H. Myers, Human Personality and its survival of Bodily Death (London: Longmans, 1903) Vol. II PP.-326-29

72. Green and Mc Creery, Apparitions, P-96-97

कि उसके एक मित्र ने दरवाजा खोला और प्रसन्नता से उसका अभिवादन किया। बाद में शाम को उस एयरमैन को ज्ञात हुआ कि उसके मित्र की लगभग उसी समय के आस-पास मृत्यु हो चुकी थी, जब वह उसके पास आया था।[73]

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि ये अनुभव मनोचिकित्सीय (Psychopathological) और ऐन्द्रिक भ्रम नहीं हैं ऐसे अनुभवों के विभिन्न पक्षों की व्याख्या किस प्रकार की जा सकती है? मुख्य रूप से मृत व्यक्तियों के अनुभवों की व्याख्या कैसे होगी, क्योंकि ग्रीन मैकरीरे सर्वेक्षण से यह स्पष्ट है कि पहचाने गये अनुभवों में से लगभग 2/3 ऐसी प्रेतात्माओं के अनुभव होते हैं, जिनकी मृत्यु के विषय में अनुभवकर्ता को पता था, क्योंकि कुछ अनुभव तो व्यक्ति की मृत्यु के कुछ समय बाद होते हैं, जबकि कुछ अनुभव व्यक्ति की मृत्यु के 24 घण्टे के अन्दर ही हो जाते हैं। साथ यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है कि इस प्रकार के अनुभवों को कैसे मृत्योपरान्त जीवन के प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जाये?

सर्वप्रथम हमें यह ध्यान रखना चाहिए प्रेतात्माओं के अधिकतर अनुभव (लगभग 72%) पहचाने नहीं जा पाते हैं, जैसा कि पहले उदाहरण में देखा गया है और इस प्रकार इन्हें आत्मनिष्ठ विभ्रम कहा जा सकता है, लेकिन हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रायः ऐसे प्रेतात्माओं के अनुभव एक ही व्यक्ति के द्वारा नहीं किये जाते, बल्कि आस-पास के अन्य व्यक्तियों के द्वारा भी देखे जाते हैं। अतः इन्हें आत्मनिष्ठ विभ्रम नहीं कहा जा सकता।

---

73. E.M. Sidgevick, 'Phantasms of the Living', Proceedings of the SPR, vol. 33 (1923), PP. 152 FF.

अब हमें उन मापदण्डों पर विचार करना चाहिए, जिनके आधार पर इस प्रकार के अनुभवों को मृत्योपरान्त जीवन के लिए एक प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। ये इस प्रकार हैं:-

(१) प्रेतात्माओं के अनुभव होने की बारम्बारता (The frequency with which they occur)। एक सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि कुल जनसंख्या का लगभग 1/10 भाग अपने जीवन के किसी न किसी समय में शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रहते हुए भी इस प्रकार के अनुभव करता है, जो चाहे पहचाना जा सके या न पहचाना जा सके। ग्रीन मैकरीरे के सर्वेक्षण से यह भी स्पष्ट है कि पहचाने गये अधिकांश अनुभव मृत व्यक्तियों के थे, और इस आधार पर कहा जा सकता है कि न पहचाने गये अनुभवों में भी यही स्थिति होगी अर्थात् उनमें भी अधिकतर मृत व्यक्तियों के अनुभव ही होंगे। साथ ही, सर्वेक्षण के दौरान यह तथ्य भी सामने आया है कि ऐसे अधिकांश अनुभव औसत आयु के ऐसे युवाओं को प्राप्त हुए जिनका लगभग आधा जीवन अभी शेष है। इस प्रकार विश्व में सैकड़ों मिलियन ऐसे व्यक्ति होंगे, जिन्होंने अपने जीवन में प्रेतात्माओं का अनुभव कर लिया है या भविष्य में करेंगे। अतः प्रतिशत की दृष्टि से कम होते हुए भी प्रेतात्माओं के अनुभव की बारम्बारता की संख्या को कम नहीं कहा जा सकता।

(२) साक्ष्यों की विश्वसनीयता (The reliability of the testimony) किसी भी क्षेत्र में जहां निष्कर्ष मानवीय साक्ष्यों पर आधारित होते हैं, वहां साक्ष्यों की विश्वसनीयता अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। यद्यपि यह संभव है कि कुछ व्यक्तियों ने ऐसे अनुभवों के विषय में झूठ बोले हो और साथ ही यह भी संभव है कि बहुत से लोगों के द्वारा ऐसे अनुभवों में स्मृति सम्बन्धी

त्रुटियाँ हो गयी हों। लेकिन इस कमियों की पूर्ति करते हुए हम प्रेतात्माओं के अनुभव निम्नलिखित आधारों पर पर्याप्त महत्व प्रदान कर सकते हैं।

सर्वप्रथम सर्वेक्षणकर्ताओं ने बहुत से ऐसे लोगों के सर्वेक्षण किए हैं, जिन्हें Apparitions के अनुभव प्राप्त हुए हैं और इनमें से निश्चित ही ऐसे व्यक्तियों के अनुभवों को निकाल दिया गया होगा, जिनके विवरण सन्देहास्पद हों और जिनकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी न हो। साथ ही अनुभवकर्ताओं के झूठ बोलने का कोई आधार नहीं माना जा सकता, क्योंकि ऐसे छलात्मक विवरणों के लिए सर्वेक्षणकर्ता उन्हें कोई भौतिक लाभ नहीं दे सकते। अतः अनुभवकर्ताओं की बातों को सत्य ही मानना चाहिए। इसके अतिरिक्त बहुत से व्यक्तियों ने अपने इस प्रकार के अनुभव अपने परिवार के सदस्यों, मित्रों व साथियों को बतायें हैं और इन लोगों ने भी ऐसे App. Exp. को पुष्ट किया है। यहाँ स्मृति की गौण त्रुटियों तथा अनुभव के अनिवार्य तथ्यों को पूर्णतः गलत याद करने (Misremembering) में अन्तर करना आवश्यक है। क्योंकि स्मृति संबंधी गौण त्रुटियाँ तो किसी भी घटना के विषय में हो सकती है और इसके आधार पर अनुभवकर्ता की बात को तो अस्वीकार किया जा सकता है, लेकिन यह अनुभव के सामान्य महत्व को असिद्ध नहीं करती। जबकि यदि किसी अनुभव के अनिवार्य तथा महत्वपूर्ण पक्षों को पूर्णतः गलत ढंग से याद किया गया है, तो वह ऐसे साक्ष्यों को स्वीकृत प्रमाण को रूप में अस्वीकार करने के लिए पर्याप्त है। इस प्रकार हमें प्रायः यह स्वीकार करना होगा कि व्यक्ति जैसा वर्णन अपने अनुभवों के बारे में प्रस्तुत करते हैं उन्हें वैसा ही अनुभव प्राप्त हुआ होगा, अन्यथा हम अपने सामान्य जीवन में स्मृति पर होने वाली निर्भरता की व्याख्या नहीं कर पायेंगे। साथ ही

बहुत से केसों में प्रेतात्माओं के अनुभव एक साथ दो या अधिक व्यक्तियों के द्वारा किये जाते हैं और उन व्यक्तियों के द्वारा की गई अनुभव की व्याख्या भी एक जैसी थी और यह तथ्य प्रेतात्माओं के अनुभव के साक्ष्य के प्रामाणिक मूल्य को पर्याप्त रूप से मजबूत करते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रेतात्माओं का अनुभव करने वाले व्यक्तियों में पर्याप्त विभिन्नता पाई जाती है। क्योंकि सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि अनुभवकर्ताओं की आयु, लिंग, राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और उनके पूर्व विश्वास अलग-अलग थे। फिर, भी उनके उन विवरणों में सामंजस्य पाया जाता है, जिसमें उन्होंने प्रेतात्माओं की आकृतियों व उनके व्यवहार के बारे में सूचना दी है। एक ओर, वे कहते हैं कि प्रेतात्माएं मानवीय आकृति के समान होती है। वे ठोस, लगते, स्थान घेरते हुए, लगते हैं और अनुभवकर्ताओं से दूर जाने पर उनकी आकृतियों में परिवर्तन भी होता है। वे प्रकाश को ढकते हैं तथा शीशे में उनका प्रतिबिम्ब भी पड़ता है। दूसरी ओर अनुभवकर्ताओं का कहना है कि वे वास्तविक मानवीय आकृतियों से कुछ मानों में बहुत भिन्न होते हैं, क्योंकि उनका प्रत्यक्ष होना और लुप्त होना असाधारण ढंग से होता है और प्रायः अचानक होता है, जो अनुभवकर्ता की समझ में नहीं आता है। साथ ही, यद्यपि वे भौतिक क्रियाकलाप करते प्रतीत होते हैं, लेकिन कोई भौतिक प्रभाव नहीं उत्पन्न करते। इस प्रकार अधिकांशतः वे अन्य व्यक्तियों के लिए अदृश्य तथा अश्राव्य होते हैं। वे दीवारों के बीच से या बन्द दरवाजों में से भी आ जा सकते हैं। वाह्य रूप से शारीरिक और व्यवहार में अशारीरिक ऐसे चरित्रों को परामनोवैज्ञानिक शोधकर्ताओं ने बहुत से अध्ययनों के पश्चात् कई लेखकों द्वारा कल्पित या सिनेमाघरों में सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित किये जाने वाले चरित्र 'भूत' (Ghost) से

अलग माना है। एक दूसरे से अनभिज्ञ रहते हुए बहुत से व्यक्तियों ने इस प्रकार के अनुभव प्राप्त किये हैं लेकिन आश्चर्यजनक रूप से उनके इस प्रकार के अनुभवों के अनिवार्य तथ्य एक जैसे हैं, जो इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि वे व्यक्ति जिस प्रकार के अनुभवों को प्राप्त करने का दावा कर रहे हैं, वह तथ्य वास्तव में घटित हुआ है।

अन्त में प्रेतात्माओं के अनुभवों के साक्ष्यों की प्रामाणिकता के पक्ष में कहा जा सकता है कि विभिन्न सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि इस प्रकार के अनुभवों में तत्कालीन आस-पास की परिस्थितियों का भी विस्तृत वर्णन रहता है। जैसे-

उदाहरण संख्या एक में 'प्रेतात्मा को लम्बी नाक, ग्रे बाल, एवं नीली आँखों वाला बताया गया है और वह एक बड़ा वाटरप्रूफ ऐप्रन (Waterproof Arpon) भी पहले हुए है तथा वह आश्चर्य के साथ आधुनिक रसाईघर की वस्तुओं व गैस स्टोव को देख रहा है। उदाहरण संख्या दो में अनुभव करने वाली महिला ने अपने पिता को ग्रे सूट, सफेद शर्ट, काली टाई, जूते व मोजे को पहने हुए देखा और साथ उस धुएं को भी देखा जो आकृति के सिगार से निकल रहा था। उसने घड़ी में समय भी देखा कि सुबह के दस बजकर दस मिनट हो रहे हैं।

उदाहरण संख्या तीन में सेल्समैन ने अपने बहन के बालों के पिन तथा कंघी को भी देखा App. आकृति का निचला हिस्सा उस मेज से छिपा हुआ था जिस पर वह लिख रही थी।

उदाहरण संख्या चार में बेडरूम के पूरे नक्शे को स्पष्ट किया गया है और मृत पिता को नोकदार टोपी पहने बताया गया है। जब आकृति ने लैम्प को पार किया तो उसकी छाया भी आई और कमरे में अंधेरा हुआ।

उदाहरण संख्या छह में लेफ्टिनेन्ट लारकिन ने अपने मित्र लेफ्टिनेन्ट मैकोनल को आधा कमरे के बाहर देखा, जिसके हाथ में दरवाजे का हैण्डिल था। वह कपड़ों के साथ नौसना की टोपी भी पहने हुए था, जो उसे जीवित रहने पर प्रदान की गई थी तथा जिस टोपी को स्टेशन यूनिट में केवल दो व्यक्ति ही पहन सकते थे।

अब ऐसे और इस प्रकार के अन्य परिस्थितियों के विस्तृत वर्णन प्रेतात्माओं के अनुभव संबंधी साक्ष्यों को सत्यता की झलक प्रदान करते हैं। ये वर्णन स्पष्ट रूप से कहते हुए प्रतीत होते हैं कि जो व्यक्ति ऐसे अनुभवों का दावा कर रहे हैं, उन्हें निश्चित ऐसे अनुभव हुए होंगे।

(३) प्रेतात्माओं की जानकारी का विस्तार व उसकी तीव्रता (Degree of Awarness which they exhibit)- बहुत सी प्रेतात्माएं उस वातावरण के प्रति जागरूक प्रतीत होते हैं, जिसमें वे दिखलाई पड़ते हैं। जैसे उदाहरण संख्या एक में अनुभव करने वाली महिला ने देखा कि प्रेताकृति आश्चर्यजनक ढंग से आधुनिक रसोईघर की वस्तुओं को देख रही है। उदाहरण संख्या पांच में मृत पिता उस बिस्तर के पैताने का देख रहा था, जिस पर वह झुका हुआ था। प्रायः उन जीवित मनुष्यों के प्रति भी जागरूक रहती है, जिनके सामने वे आती हैं। जैसे उदाहरण संख्या 2,

4 और 6 में देखा जाता है, और कभी-कभी जीवित मनुष्यों से वार्तालाप का प्रयास भी करती हैं जैसा कि उदाहरण 4 और 6 में देखा गया है।

(४) प्रेतात्माओं के अपने उद्देश्य को प्रकट करने की तीव्रता और मात्रा (The degree to which they evince a purpose)- निश्चित रूप से यह दावा किया जा सकता है कि मृत व्यक्तियों के App. का अन्तर्निहित उद्देश्य मृत्योपरान्त जीवन के लिए प्रमाण प्रस्तुत करना है। लेकिन इस दिशा में किये गये उनके प्रयत्न अधिक सफल नहीं है, क्योंकि बहुत से केसों में ऐसा होता है कि प्रेतात्माएं पहचानी नहीं जा पाती हैं। मृत्योपरान्त जीवन की परिकल्पना के आधार पर हम यह सोच सकते हैं कि क्यों मृत प्रेताकृतियाँ अक्सर अजनबी व्यक्ति के समक्ष स्वयं को प्रदर्शित करती है। उदाहरण के लिए, ऐसा देखा गया है कि अधिकांश प्रेतात्माओं के प्रत्यक्ष स्थान केन्द्रित (Placed Centered) होते हैं न कि व्यक्ति केन्द्रित (Person-Centered) इस प्रकार की प्रेताकृतियाँ प्रायः उसी स्थान पर दिखलाई पड़ती हैं, जो मृत व्यक्ति के लिए जीवन में सार्थक थे और जहाँ प्रायः उच्च संवेदनशीलता से युक्त कुछ जीवित मनुष्यों के उपस्थित रहने की सम्भावना होती है। यद्यपि बहुत कम केसों में मृत व्यक्तियों के प्रत्यक्ष कुछ अन्य स्पष्ट उद्देश्यों के लिए भी होते हैं, जैसे उदाहरण संख्या चार में मृत पिता की प्रेताकृति अपने पुत्र से शिकायत करने के उद्देश्य से दिखलाई पड़ी है। परामनोवैज्ञानिक शोधों का इतिहास ऐसे बहुत से केसों का उल्लेख करता है, जिनके माध्यम से यह सिद्ध किया गया है कि मृत व्यक्तियों की प्रेतात्माएँ जीवित मनुष्यों के समक्ष एक निश्चित परोपकारी उद्देश्य से आती हैं।

(५) प्रेतात्माओं द्वारा सच्ची नई सूचनाएँ प्रदान करना (Accuracy of the information they seem to convey)- अधिकांश केसों में App. सत्यापित होने वाली ऐसी कोई सूचनाएं प्रदान नहीं करते जो अनुभवकर्ता के पास पहले से न हो। फिर भी प्रायः ऐसा होता कि App. आकृतियाँ कुछ ऐसी सूचनाएं दे देती हैं जिनकी प्रामाणिकता अनुभवकर्ता को बाद में ज्ञात होती है जैसे, कभी-कभी मृत आकृतियों के प्रत्यक्ष ऐसे व्यक्ति के समक्ष होते हैं जिन्हें उस व्यक्ति की मृत्यु की सूचना नहीं होती और बाद में अनुभवकर्ता को ज्ञात होता है कि वह व्यक्ति तो मर चुका है। जैसे उदाहरण संख्या पांच में उसी दिन बाद में उस काम करने वाले को ज्ञात हुआ कि उसके साथी की मृत्यु दुर्घटना में हो चुकी है। उदाहरण संख्या छः में लेफ्टिनेन्ट लारकिन को मैकोनेल की हवाई दुर्घटना में मृत्यु की सूचना शाम को मिली। मृत्यु के काफी समय बाद होने वाले प्रत्यक्ष अपनी आकृति, पहनावे, व्यवहार या कला के माध्यम से सूचनाएं प्रदान कर सकते हैं जो अनुभवकर्ता के लिए नवीन हो। जैसे उदाहरण संख्या तीन में सेल्समैन ने अपनी मृत बहन के प्रत्यक्ष में लाल स्क्रैच देखा था और उदाहरण संख्या पांच में महिला जो अपने मृत ससुर (Father in Law) से जीवन में कभी नहीं मिली थी और यह नहीं जानती थी कि वह एक नौसैनिक अधिकारी (Naval Officer) है, क्योंकि वे नेवी से जल्दी अवकाश ले चुके थे और ऐसा उन्होंने उस महिला के पति के जन्म लेने के पहले ही कर लिया था। इस महिला ने अपने ससुर को नौसेना की वर्दी में देखा।

अब उपरोक्त तथ्यों की व्याख्या तीन प्रकार से की जा सकती है-

सर्वप्रथम इनकी पूर्णतः प्रकृतिवादी व्याख्या की जा सकती है। इसके अनुसार, मृत व्यक्तियों के अनुभव अनुभवकर्ता की आत्मनिष्ठ घटनाएं हैं और इसकी व्याख्या सांस्कृतिक तत्वों, विकृत मनोविज्ञान (Abnormal Psychology) के द्वारा की जा सकती है। साथ ही यह कहा जा सकता है कि प्रेतात्माओं के अनुभव के द्वारा जो भी सूचनाएं प्राप्त की गई वह मात्र एक संयोग है। किन्तु इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्रेतात्माओं के अनुभवों से नयी सूचनाओं की प्राप्ति का बार-बार घटित होना मात्र संयोग नहीं हो सकता। साथ ही यदि शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता की अवस्था के इस अनुभव को यदि वास्तविक न माना जाये तो अन्य प्रकार के अनुभवों या ज्ञान की प्रामाणिकता कैसे सिद्ध होगी?

इनकी द्वितीय व्याख्या एक ऐसी परामनोवैज्ञानिक परिकल्पना द्वारा दी जा सकता है जो प्रकृतिवादी व्याख्या के समान मृत्योपरान्त जीवन को स्वीकार नहीं करती। इस परामनोवैज्ञानिक परिकल्पना की व्याख्या के अनुसार, प्रेतात्मा संबंधी अनुभव अनुभवकर्ता तथा कुछ अन्य जीवित व्यक्तियों के मस्तिष्क के मध्य टेलीपैथी के द्वारा उत्पन्न होते हैं। मृत्यु के तुरन्त बाद होने वाले प्रेताकृतियों के अनुभव के मामले में यह संचार अनुभवकर्ता तथा उस व्यक्ति के बीच तब शुरू होता है, जब वह जीवित तो होता है, लेकिन मृत्यु के गहन संकट में होता है, लेकिन जब तक यह संचार या सन्देश अनुभवकर्ता तक पहुंचता है, उसके पहले ही व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। इसके अतिरिक्त मृत्यु के काफी समय बाद होने वाले प्रेतात्माओं के अनुभवों के विषय में कहा जा सकता है कि अनुभवकर्ता के मन में मृत व्यक्ति के प्रतिबिम्ब किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा टेलीपैथी के माध्यम से उत्पन्न किये जाते हैं। जैसे तीसरे, उदाहरण में सेल्समैन की मां व चौथे उदाहरण

में पति। क्योंकि दोनों को प्रेतात्माओं द्वारा दी गई सूचना की पूर्व जानकारी थी। इस व्याख्या के विरूद्ध आपत्ति यह है कि इस प्रकार मृत्योपरान्त जीवन को अस्वीकार करने वाली यह व्याख्या जीवित मनुष्यों के मन के बीच टेलीपेथी की प्रामाणिकता की पूर्वमान्यता के साथ ही स्वीकार की जा सकती है। जो विवादास्पद है। इसके अतिरिक्त, इन अनुभवों की व्याख्या के लिए टैलीपैथी की परिकल्पना करने के अतिरिक्त टेलीपैथी के अन्य उदाहरण तथ्य के रूप में प्राप्त नहीं होते। साथ ही टेलीपैथी के उदाहरण न तो उस पैमाने तक पाये जाते हैं और न ही इसमें उतनी यथार्थ नवीन सूचनाएं रहती हैं, जितनी कि प्रेतात्मा संबंधी अनुभव में पायी जाती है।

प्रेतात्माओं के अनुभवों की तृतीय और सर्वाधिक सन्तुलित व्याख्या मृत्योपरान्त जीवन के पक्ष में है। इसके अनुसार, प्रेतात्माओं के अनुभव मृत्यु के उपरान्त भी सुरक्षित मन की गतिविधियों की निरन्तरता को सिद्ध करते हैं, और जो उन व्यक्तियों के जीवित अवस्था के समान कार्य करता है। मृत व्यक्तियों के अनुभव या तो ऐसे व्यक्तियों के समक्ष होते हैं जो उन्हें पहचान सकते हैं या उन स्थानों पर होते हैं, जो जीवित अवस्था में उस व्यक्ति के लिए सार्थक थे और जहाँ प्रायः ऐसे अजनबी व्यक्ति ही आते हैं जो उच्च संवेदनशीलता वाले होते हैं। यद्यपि मृत व्यक्तियों का ऐसा अनुभव मानसिक और विभ्रमात्मक लग सकता है, लेकिन मृत्योपरान्त जीवन की पूर्वमान्यता के आधार पर कहा जा सकता है कि यह वास्तविक विभ्रम (Vevidical Hallucination) है। वास्तविक इस कारण है कि ये अनुभव उन्हीं मानसिक अवस्थाओं के अभिव्यक्त कर रहे हैं, जो कि व्यक्ति में मृत्यु से पूर्व थी और विभ्रम इस कारण है क्योंकि ये

शारीरिक रूप में आभासित हो रहे हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मृत व्यक्तियों की स्मृतियाँ, भावनाएँ, इच्छाएं किसी न किसी रूप में जीवित रहती है।

मृत्योपरान्त जीवन का समर्थन करने वाली इस व्याख्या में भी बहुत दृढ़ता नहीं हे, क्योंकि प्रेतात्माओं के अनुभव संबंधी यह व्याख्या इस पर विश्वास करने को बाध्य नहीं करती। फिर भी तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह विश्वास करने योग्य साक्ष्य प्रदान कर सकती है। यदि दूसरे प्रकार के साक्ष्यों से इसे समर्थन मिले। इस माध्यम से प्राप्त ऐसी सूचनाओं को विभिन्न अनुभवकर्ताओं के द्वारा पुष्ट भी किया जा सकता है, जो कि अन्य माध्यमों से नहीं प्राप्त होती।

लेकिन, यदि निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाये यह व्याख्या स्वयं अपने बल पर मृत्योपरान्त जीवन को दृढ़तापूर्वक सिद्ध नहीं करती, बल्कि मात्र अपने निष्कर्ष के सम्बन्ध में अधिक प्रसम्भाव्यता को व्यक्त करती है।

अतः यह प्रमाण भी सार्वभौमिक रूप से मृत्योपरान्त जीवन को प्रमाणित करने में सफल नहीं हो पाता है।

५.३ मीडियम के द्वारा प्राप्त सूचनाएँ, संदेश

मृत्यु के उपरान्त जीवन को स्वीकार करने के लिए अब जिस प्रमाण को प्रस्तुत किया जायेगा वह सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रमाण है, लेकिन यह सर्वाधिक विवादास्पद भी है। इसे कम्यूनिकेशन

वाया मीडियम्स (Communication via Mediums) कहा जाता है और इसमें मृत व्यक्तियों के मन की बातों को विभिन्न माध्यमों से जीवित मनुष्यों तक पहुँचाया जाता है। मीडियम के दो भेद किये जा सकते हैं। मानसिक मीडियम (Mental Mediums) और भौतिक मीडियम (Physical Mediums)। मानसिक मीडियम में भी कुछ तो ऐसे मीडियम होते हैं जो भावसमाधि की अवस्था में प्रेतात्माओं से सम्पर्क कर सूचनाओं को प्राप्त करने का दावा करते हैं। इन्हें ट्रांस मीडियम (Trance Mediums) कहा जाता है, जबकि कुछ अन्य अपने समान्य व्यक्तित्व को बनाये रखते हुए अतीन्द्रिय दृष्टि या अतीन्द्रिय श्रवण के माध्यम से सूचनाओं को प्राप्त करने का दावा करते हैं और इन्हें नॉन ट्रांस मीडियम (Non-Trance Mediums) कहा जाता है। जबकि भौतिक मीडियम में प्रायः भौतिक वस्तुओं के माध्यम से प्रेतात्माओं से सूचनाओं को प्राप्त किया जाता है, जैसे खटखट की आवाज के माध्यम से, चार्ट के माध्यम से या अन्य किसी भौतिक वस्तु के माध्यम से। यह मानवीय आकृतियों के पूर्ण या आंशिक भौतिकीकरण का दावा करता है जिसे मृत व्यक्तियों का सूक्ष्म शरीर (Ecto Plasmic Body) कहा जा सकता है। ऐसे भी मीडियम्स है, जो किसी अन्य आत्मा के द्वारा मृत व्यक्तियों के सन्देश प्राप्त करते हैं और कुछ अन्य ऐसे मीडियम्स है, जो मृत व्यक्तियों से सीधे बात करते हैं (Propria Persona)। अधिकांश मीडियम्स अपने सन्देशों को वाणी के द्वारा देते हैं, जबकि कुछ लिखकर भी सन्देश प्रदान करते हैं और इनकी लिखावट कभी भी मृत व्यक्ति की जीवित अवस्था की लिखावट से मिलती-जुलती रहती है। कुछ मीडियम्स का प्रदर्शन आध्यात्मिक गिरजाघरों में किया जाता है, जबकि कुछ का जनसाधारण के बीच। इसके अतिरिक्त कुछ अक्सर थोड़े से विश्वास करने वाले व्यक्तियों के मध्य प्रदर्शित किये जाते हैं, जबकि कुछ व्यक्तिगत रूप से भी Sitting करते हैं जबकि कुछ इन सभी में भागीदारी

करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य भी कई प्रकार की मीडियमशिप हो सकती है, जिनकी संख्या बहुत है।

मृत्योपरान्त जीवन को सिद्ध करने के लिए मानसिक मीडियमशिप (Mental Mediumship) ही महत्वपूर्ण है, अतः इस पर विस्तार से चर्चा की जायेगी। लेकिन इसके पहले मीडियम, सिटर (Sitter), कन्ट्रोल (Control) जैसे शब्दों को समझ लेना आवश्यक है। मीडियम वह व्यक्ति होता है, जो यह दावा करता है कि वह मृत व्यक्तियों के साथ सम्पर्क स्थापित कर सूचनाएं प्राप्त कर सकता है। Sitter वह व्यक्ति होता है, जिसके लिए मृत व्यक्तियों से सम्पर्क कर सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं, जबकि कन्ट्रोल (Control) उस मृत व्यक्ति को कहा जाता है, जिससे सम्पर्क स्थापित कर सूचनाएं प्राप्त की जाती है।

मीडियम के द्वारा सर्वप्रथम ऐसी सूचनाएं ली जाती है, जो सिटर के द्वारा सत्यापित की जा सके। लेकिन इसके अतिरिक्त बहुत सी ऐसी सूचनाएं भी प्राप्त की जाती हैं, जिन्हें अन्य प्राकृतिक माध्यमों से प्राप्त नहीं किया जा सकता। मीडियमशिप के इतिहास में कुछ मीडियम इतने अच्छे रहे हैं जिन्होंने समय-समय पर आकर्षक परिमाण प्रस्तुत किये हैं। अब यह प्रमाणित करने की आवश्यकता है कि अच्छे मीडियम्स के द्वारा जो सूचनाएँ प्राप्त की गई हैं, वह छलात्मक नहीं है, अर्थात् यह चेतन या अचेतन रूप से सिटर के प्रत्यक्ष या प्रतिक्रिया के द्वारा नहीं ज्ञात हैं और न ही उसके कथनों से निकली हैं, और साथ ही यह संभावना भी सुनिश्चित नहीं की जा सकती कि यह मात्र एक संयोग का परिणाम है। बहुत से ऐसे Mediumistic Communication हैं जो इन आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

उदाहरण के लिए Proceedings of SPR vol. 16 में उल्लिखित उन सूचनाओं को लिया जा सकता है, जिन्हें बास्टन की मीडियम श्रीमती पाइपर ने प्रोफेसर जे.एच. हिसलॉप को दी थी और जो प्रोफेसर हिसलॉप के मृत पिता से प्राप्त की गई थी। इन सूचनाओं में बहुत सी महत्वपूर्ण जानकारी थी, जैसे परिवार के सदस्यों के नाम, प्रो० हिसलॉप और उनके पिता के बीच हुई कुछ निजी बातें, अन्य कई विशिष्ट घटनाएँ, पिता की शारीरिक स्वभाव विशेषता (Idiocyncrasies) पहनावा आदतें आदि ये सभी बातें उनके मृत पिता की बोलने के ढंग में मीडियम द्वारा कही गई थीं।[74]

श्रीमती पाइपर ने अमरीकी SPR के सचिव डॉ० रिचर्ड हाडसन के द्वारा कई वर्षों तक गहन शिक्षा प्राप्त की। कुछ समय तक श्रीमती पाइपर व उनके पति पर प्राइवेट जासूस द्वारा नजर भी रखी गई और सभी सिटिंग के प्रबन्धक डॉ. हाडसान ने एक गुमनाम सिटर दिया, लेकिन जानबूझकर गलत सूचना देने की कोई घटना सामने नहीं आई। उनका ही एक सन्देशवाहक (Communicator) जार्ज पेल्यू नामक एक युवा वकील की प्रेतात्मा थी, जिसकी न्यूयार्क में अचानक मृत्यु हो गई थी। पेल्यू ने कई वर्षों तक के 150 गुमनाम सिटर में से बिना किसी त्रुटि के ऐसे 30 को पहचान लिया, जिनसे उसका जीवित रहने पर परिचय था। उसने उन्हें जीवन के उन अनुभवों की यादें दिलाई, जो उन्होंने एक साथ किए थे। और इसके अतिरिक्त, उनके साथ सुगमतापूर्वक वार्तालाप की, उनके प्रश्नों का उत्तर दिया और आपस के

---

74. Proceedings of the SPR, Vol. 16 (1901)

संबंधित विषयों का बहुत सही प्रेक्षण किया तथा इस दौरान उसने तीव्र बुद्धि और मजाकिया चरित्र का भी परिचय दिया जिसके लिए कि वह अपने मित्रों में जाना जाता था।[75]

Proceedings of SPR के vol. 6 में कहा गया है कि श्रीमती पाइपर को इग्लैण्ड लाया गया, जहाँ उनका गहन परीक्षण इंग्लैण्ड के प्रो० ओलिवर लॉज के द्वारा किया गया। एक सिटिंग में श्रीमती पाइपर के कन्ट्रोल ने प्रो० लॉज के मृत चाचा (अंकल) जेरी से बात की जिन्होंने अपने बचपन की बहुत सी महत्वपूर्ण घटनाओं की सूचना दी जैसे स्मिथ के मैदान में बिल्ली को मारना, साँप के केचुल (Snakeskin) को रखना अपने भाइयों के साथ क्रीक में तैरना और दौड़ते हुए गिरना। लॉज के जीवित चाचा ने राबर्ट Snake Skin की बात को तो याद किया लेकिन बिल्ली के मारने वाली घटना को नहीं, जबकि लॉज के एक अन्य जीवित चाचा ने Snake-Skin और बिल्ली को मारने की दोनों घटनाओं को याद किया और साथ ही क्रीक वाली घटना को विस्तार से बताया।[76]

अपनी मृत्यु के बाद डॉ० हडसन श्रीमती पाइपर के नये कन्ट्रोल बन गये। और अब मि. हडसन ने अन्य बातों के अलावा सिटर को उन बातों को बताने में भी सक्षम थे, जो उसके द्वारा कुछ दिन पहले कही गई थी और जो उन्होंने जीवन काल में निजी वार्तालापों के दौरान कही थी और जिसे सिटर ने छिपकर सुना था। उदाहरण के लिए, उन्होंने प्रो. W.R. Newbold को पिछले सप्ताह हुई विलियम जेम्स के उनकी मुलाकात की याद दिलाई जिसमें जेम्स ने कहा था कि स्वर्गीय हाडसान बहुत गुप्त और सजग थे। यद्यपि सिटिंग के दौरान न्यूबोल्ड जेम्स के द्वारा कही

75. Ibid. Vol. 13 (1897-98) PP. 284-582

गई इस बात को याद नहीं कर पाये, लेकिन हाडसन लगातार आग्रह करते रहे कि जेम्स के द्वारा ऐसा कहा गया। बाद में जब न्यू बोल्ड ने जेम्स से भेंट की तो जेम्स ने कहा कि हाँ मुझे याद है कि मैंने ऐसा कहा था।[77]

आर्थर फिन्डले नामक व्यापारी की दिवंगत आत्माओं के द्वारा सूचना प्राप्त करने वाली पहली बैठक जॉन लोन की Direct Voice Medium वाली थी, जो ग्लैस्गों के किसी भाग में आयोजित की गई थी। यहाँ फिण्डले एक अजनबी थे, क्योंकि वह न कभी मीडियम से मिले थे और न ही उस बैठक में भाग लेने वाले किसी अन्य व्यक्ति को जानते थे। कुछ समय बाद उन्होंने एक ऐसी ध्वनि सुनी जो फिण्डले की पिता राबर्ट डाउनी फिण्डले की ध्वनि होने का दावा कर रही थी। उसके पिता ने उससे इस बात के लिए क्षमा माँगी कि उसने अपने जीवनकाल में फिण्डले को अपने परिवार के व्यवसाय में लेने से मना कर दिया था। दिवगंत पिता ने ह भी कहा कि उनके पूर्व सहभागी डेविड किडसन जो अब दिवंगत हो चुके हैं, भी इस मामले में बातचीत करना चाहते थे। एक दूसरी आवाज, जो किडसन की आवाज होने का दावा कर रही थी ने भी स्वीकार किया कि उन्होंने ही चौदह वर्ष पहले इस बात का विरोध किया था कि युवा आर्थर को व्यापार ने सहभागी बनाया जाये, क्योंकि उस समय उनका यह मानना था कि व्यापार एक अतिरिक्त सहभागी को सपोर्ट नहीं कर पायेगा। इसके आगे कहा कि अपने दिल की बात कहकर अब मैं खुश हूँ। यह सभी बातें फिण्डले जानते थे कि सत्य हैं।[78]

---

76. Proceedings of the SPR, Vol. 6 (1889-90) PP. 443-557.
77. Proceeding of the SPR, Vol. 23 (1909), P.77.
78. A. Findlay, On the Edge of the Etheric (London; Psychic Press, 1931 PP.96-102

जब ब्रिटिश विद्वान श्रीमती विनिफ्रेड कूम्बे टेनान्ट की 1956 में मृत्यु हुई तो उन्हें एक प्रभावशाली, व्यवस्थित ऊर्जावान महिला के रूप में याद किया जाता था। बहुत कम लोग यह जानते हैं कि उन्होंने कई वर्षों तक श्रीमती विलेट के छद्म नाम से मीडियम के रूप में भी कार्य किया। इसी नाम से उन्होंने पूर्व ब्रिटिश प्रधानमंत्री आर्थर बाल्फर, उनके भाई गेराल्ड, सर ओलिवर लॉज सहित जैसे विशिष्ट व्यक्तियों को भी सिटिंग दी थी। मृत्यु के बाद भी उनकी Mediumship गुप्त थी। इस बीच SPR के W.H. Salter ने अन्य मीडियम कुमारी Geraldine Cummins से सम्पर्क किया, जिससे कूम्बे टेनन्ट की दिवंगत माँ से सम्पर्क किया जा सके। आयरलैण्ड की एक छोटी सी झोपड़ी में जहां वह रहती थी कुमारी कमिन्स ने अपने को तैयार किया कि एकान्त में कोई आलेख लिखा जाय, जो सम्भवतः किसी अपरिचित आत्मा के द्वारा बोली गई थी। इस आलेख की पूरी कहानी C.D. Broad के प्राक्कथन के साथ Swan a Black Sea के नाम से प्रकाशित की गई।[79]

यह आलेख शीघ्र ही बहुत अच्छी सामग्री के रूप में सामने आ गई और जिसके विषय में श्रीमती कमिन्स के अनुभव किया कि जिस दिवंगत आत्मा से यह रचना निर्गमित हुई थी वह स्वर्गीय श्रीमती विलेट की थी। 2½ वर्षों में लिखी गई 40 स्क्रिप्ट के द्वारा श्रीमती कूम्बे टेनान्ट के Early Married Life के विषय में बहुत से तथ्य प्रकाश में आये, जैसे उनके परिवार के विषय में, उनके पति के परिवार के विषय में, उनके सम्बन्धियों व उनकी गतिविधियों के विषय में और उनके बदलते हुए सम्बन्धों के विषय में। पूरी स्क्रिप्ट के दौरान निष्पक्षता, अनुशासन, जादुई

[79]. G. Cummins, Swan on a Black Sea (London; Routledge and Kegam Paul, 1965).

आवाज और कभी-कभी हास्य व पश्चाताप से भरा उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व आकर्षक बना रहता है और नाटकीय रस की अनभूति देता है। उनकी पुरानी यादें जो अधिकांशतः ऐसे व्यक्तियों की भी थीं जिनकी मृत्यु बहुत पहले हो चुकी थी, उनके मृत्यु के उपरान्त जीवन में रुचि को सिद्ध करती है। सत्यापित की जा सकने वाली सभी सूचनाएँ सिद्ध की गई थी, कुछ जीवित मनुष्यों की स्मृतियों के द्वारा और कुछ प्रकाशित सामग्रियों के द्वारा। लेकिन एक सीमा तक यह आलेख ही अपने आप में संबंधित उद्देश्य की प्रबल सम्भावना को व्यक्त करती है। बहुत से समीक्षकों का मानना है कि एक मीडियम और एक कम्युनिकेटर के द्वारा प्राप्त किया गया यह सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण है मृत्योपरांत जीवन का।

इसी प्रकार डेविड केनेडी ने अपनी पुस्तक A Venture in Immortality में भी कुछ ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। 1970 में रिवरेण्ड डेविड केनेडी की पत्नी अन (Ann) की मृत्यु हो गई। इसके बाद श्री केनेडी ने बहुत से मीडियमों के साथ सिटिंग आरम्भ कर दी, विशेष रूप से स्काटलैण्ड के मीडियम श्री अलबर्ट बेस्ट के साथ आने वाले दो वर्षों में उन्होंने 'अन' के द्वारा बहुत सी ऐसी सूचनाएं प्राप्त की जो उनकी तत्कालीन परिस्थितियों और गतिविधियों के विषय में थी, और ऐसा लगता था कि उनकी पत्नी दैनिक जीवन में उनके साथ है और उन्हें सहायता देने का प्रयास कर रही हैं।

जैसे एक रविवार को दोपहर के बाद वे दो घण्टे की कड़ी मेहनत के बाद घर लौटे, और सोफे पर आराम करने लगे और गहरी नींद में आ गये। उनकी चर्चा में 6:30 बजे से शाम की सर्विस थी, लेकिन वह गहरी नींद में सो रहे थे। ६ बजे वे एक टेलीफोन की घण्टी से उठे। ये

फोन श्रीमती फिन्डलाटर नामक एक मीडियम का था, जो यद्यपि श्री केनेडी के नाम को तो जानते थे लेकिन उनका पता और फोन नम्बर उन्होंने डायरेक्टरी ने लिया था। उस महिला पर 'अन' ने दबाव डाला था कि वह 'अन' के पति को फोन करके कहे कि "Get out Now and use the old notes" यद्यपि श्रीमती फिन्डलाटर को यह नहीं समझ में आया कि इसका अर्थ क्या है। श्री केनेडी अभी भी आधी नींद में ही थे, लेकिन Old Sermon से नोट्स लेकर समय से चर्च पहुँच गये।[80]

एक अन्य घटना में भी केनेडी एक अन्तिम संस्कार के लिए काला ड्रेस पहने हुए थे, लेकिन उन्हें कोई Clear Stift Clerical Collars उस आलमारी में नहीं थी, जिसमें वे उन्हें रखते थे। पुनः एक टेलीफोन आया और इस बार मीडियम Albent Best का फोन था, जिन्होंने श्री केनेडी से कहा कि मृत पत्नी 'अन' ने उन पर श्री केनेडी को यह सूचित करने के लिए दबाव डाला है कि यदि वे अमुक आलमारी में देखें तो कुछ कमीजों के नीचे उन्हें तीन साफ कालर्स मिल जायेंगी। श्री केनेडी के उस स्थान पर देखने पर उन्हें कालर्स प्राप्त हुए। अल्वर्ट ने यह भी कहा कि अन ने यह भी याद दिलाया है कि वे उन २३ गन्दे कालर्स को लांड्री में धोने के लिए भेज दें, जो इतने दिन से एकत्रित हैं और जिन्हें श्री केनेडी ने एक विशेष बक्से में रखा हुआ है। जब श्री केनेडी ने उन कालर्स को गिना, तो उनकी संख्या ठीक २३ ही थी।[81]

श्री केनेडी के जीवन में इसी प्रकार की अन्य बहुत सी घटनाएँ घटी थीं, जिसमें किसी भी मीडियम ने यह बताया था कि स्व० श्रीमती 'अन' ने उससे सम्पर्क किया और तुरन्त ही उस

---

80. D. Kennedy, A Venture in Immortality (Gerrards Cross; Colin Smythe, 1973) PP. 44-45
81. Kennedy, A Venture in Immmortality (Gerrards Cross; Colin smythe, 1973) PP. 105-6

मीडियम से कहा कि वह उसके पति अर्थात् श्री केनेडी को उसकी भावनाओं, अनुभवों व स्मृतियों से अवगत कराये।

पूर्व चर्चित उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि मीडियमशिप के इतिहास में बहुत से ऐसे दृष्टान्त प्राप्त होते हैं जो कम से कम उन व्यक्तियों के लिए समान रूप से पूर्णतः प्रामाणिक हैं, जिन्होंने इसके माध्यम से सूचनाएं प्राप्त की हैं या इसके विषय में लिखा है।

जहाँ तक मीडियमशिप के भेदों का प्रश्न हैं, तो इसके मुख्यतः तीन भेद किये जा सकते हैं- प्रथम प्रावसी सिटिंग (Proxy Sitting) द्वितीय Dropin Communications और तृतीय Cross Corespondence। इन भेदों को संक्षेप में समझ लेना आवश्यक है।

Proxy Sitting उसे कहते हैं जिसमें कोई अन्य व्यक्ति सिटर की भूमिका निभाता है जबकि वास्तविक सिटर मीडियम के साथ-साथ मीडियम के साथ-साथ Proxy Sitter से भी पूर्णतः अपरिचित होता है। अनुपस्थित रहते हुए भी यही प्रधान सन्देशवाहक या कन्ट्रोल को पहचानने के लिए कुछ सीमित सूचनाओं व वस्तुओं को उपलब्ध कराता है।

Proceddings of SPR vol. 45 में इस प्रकार की एक सिटिंग का उल्लेख किया गया है जिसे श्रीमती लीविश की ओर से प्रो. ई.आर. डॉड्स के द्वारा आयोजित किया गया था जो अपने मृत पिता श्री मैकाले से कुछ सन्देश प्राप्त करना चाहती थी। वे जो जीवित अवस्था में वाटर इन्जीनियर थे।[82] रिवरेण्ट C. Dryton थामस प्रतिनिधि या प्रोक्सी के रूप में कार्य कर रहे

82. Proceedings of the SPR, Vol. 45 (1938-39) PP. 257-306.

थे, जबकि श्रीमती Leanard मीडियम थीं। अपने कन्ट्रोल के द्वारा मीडियम ने मैकाले के औजारों के बाक्स में रहने वाले औजार, गणितीय सूत्रों और ड्राइंग आफिस के बारे में सूचना दी और Godfrey नामक एक व्यक्ति का नाम भी लिया, जो श्री मैकाले का सबसे विश्वसनीय क्लर्क था। इस प्रकार ली गई लगभग 124 सूचनाओं में पूर्णतः सही थी, १२ अन्य भी लगभग वहीं थीं, 32 ठीक-ठाक थी २ कमजोर, २२ सन्देहास्पद और 5 बिल्कुल गलत थी।

द्वितीय, Drop in Communications उसे कहते हैं जब संदेशवाहक या कन्ट्रोल मीडियम और सिटर से अपरिचित तो रहता ही है, लेकिन वह प्रेतात्मा किसी सिटिंग में बिना बुलाए ही चला आता है। अर्थात् जब किसी सिटिंग में किसी विशेष मृत व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा हो और उसके स्थान पर किसी अन्य मृत व्यक्ति से सम्पर्क हो जाये, तो उसे *Drop in Communication* कहा जाता है। उदाहरण के लिए, सेयान्स अर्थात् दिवंगत लोगों से सम्पर्क करने वाली सभा में (आत्मापन) मृत इरविन ने सबसे पहले उस सिटिंग में सन्देश दिया जहां कि सर Auther Canan Doyle की आत्मा से सम्पर्क करने का प्रयास किया जा रहा था। इस प्रकार के व्यवधान कभी-कभी सिटिंग में आ जाते हैं जिसमें कम्युनिकेटर या सन्देशवाहक अपनी पहचान के लिए कोई साक्ष्य नहीं देता। कभी-कभी वे अपने बारे में ऐसी सूचनाएं दे देते हैं, जिसका ज्ञान सभा में उपस्थित लोगों में से किसी को नहीं होता, लेकिन जिसकी सत्यता का बाद में ज्ञान होता है।

अन्ततः यदि Cross Correspondence पर दृष्टि डाली जाये तो यह तब होता है, जब किसी मीडियम से संप्रेषित सूचना लगभग वैसी ही हो, जो किसी दूसरे स्थान की सिटिंग में किसी दूसरे मीडियम के द्वारा प्राप्त की गई हो (या ऐसी सूचनाओं के अनुरूप हो जो किसी अन्य स्थान पर कुछ व्यक्तियों के द्वारा बिना मीडियम के संप्रेषित की जा रही हो)।

मीडियम के द्वारा प्राप्त सूचनाओं के सम्बन्ध में हमें उस समयान्तराल को भी कम करके नहीं आँकना चाहिए जिनसे होकर सूचनाएं गुजरती हैं, क्योंकि सम्पर्क ऐसे व्यक्ति के द्वारा किया जाता है, उस समय जीवित होता है और ऐसे व्यक्ति से किया जाता है जो मृत होता है। हम समझ सकते हैं कि पहले सूचनाएं मीडियम के अचेतन मस्तिष्क में आती होंगी, जहाँ कुछ काट-छॉट, होती होगी। सूचनाओं को व्यवस्थित किया जाता होगा और निश्चित ही ऐसा करने में सूचनाओं का एक अंश नष्ट हो जाता होगा अर्थात् वे सूचनाएं मौलिक होती है, जो कम्युनिकेटर या मीडियम के अचेतन मस्तिष्क से निकलती हैं। लेकिन इन सूचनाओं को पकड़ने और व्याख्या करने के क्रम में मीडियम अचेतन मस्तिष्क से ही अपने ज्ञान, विश्वास और प्रकृति के आलोक में सूचनाएं प्रेरित करते होंगे। इससे यह अन्दाजा किया जा सकता है कि मीडियमशिप की यान्त्रिकी द्वारा सूचनाओं का रूप कुछ बदल जाता होगा और प्रायः वह महत्वहीन लगती होगी। लेकिन यदि मीडियमशिप की समीक्षा करने के क्रम में आत्मा की परिकल्पना को अस्थाई रूप से स्वीकार कर लिया जाये, तो सूचनाओं के तलछट से बहुत सी ऐसी मूल्यवान चमत्कारिक और आश्चर्यजनक सूचनाएं सामने आयेंगी जो हमें अचम्भे ये डाल देंगी।

अब मीडियमशिप के विषय में सम्भावित निष्कर्ष यह दिया जा सकता है कि अपनी कुछ कमियों के होते हुए भी मृत्योपरान्त जीवन के लिए यह अपने आप में एक अकेला ऐसा प्रमाण है, जो सर्वाधिक विश्वसनीय लगता है। इसमें जिस प्रकार से सूचनाओं को एकत्रित किया जाता है वह अन्य प्रमाणों की तुलना में इसे और अधिक विश्वसनीय बना देता है। Near death Exp. और प्रेतात्माओं घटनाओं के विपरीत मीडियम की सिटिंग अधिक समय तक होती है और कई बार तो सिटिंग की श्रृंखलाएं आयोजित की जाती हैं। मीडियमशिप और अन्य प्रमाणों में एक अन्तर यह है कि विभिन्न मीडियम और सिटर के परिणाम दुहराया जा सकता हैं, जबकि NDE व प्रेतात्मा संबंधी अनुभव जीवन में प्रायः एक बार ही होते हैं। इसके अतिरिक्त मीडियमशिप की एक विशेषता यह भी है कि यह एक सार्वजनिक घटना है, जिसे ऐसे बहुत से प्रेक्षकों के द्वारा देखा जा सकता है, जो शारीरिक व मानसिक तौर पर स्वस्थ होते हैं और इसके विषयों को रिपोर्टिंग की विधियों के द्वारा सिटिंग के स्थान पर जाकर संकलित भी किया जा सकता है। इस कारण इसके साक्ष्यों पर अधिक निर्भर किया जा सकता है।

लेकिन अभी भी बहुत से प्रश्न अनुत्तरित रह गये हैं जैसे कि क्यों मीडियम के द्वारा प्राप्त होने वाली बहुत सी सूचनाएं झूठी आशाएं दिलाती हैं और मात्र सांकेतिक होती हैं? क्यों प्रतिमिनट बहुत से मरने वाले लोगों में से बहुत कम के द्वारा सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं? लेकिन इन प्रश्नों के होते हुए भी कहा जा सकता है कि मेन्टल मीडियमशिप का प्रमाण प्रभावशाली है और इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि मेन्टल मीडियमशिप की घटना को हमें सामान्य अनुभव की घटना से पूर्णतः अलग वर्ग में

स्थान देना चाहिए और इसे मृत्योपरान्त जीवन की सम्भावना के लिए एक प्रबल प्रमाण के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

५.४ पुनर्जन्म संबंधी प्रमाण

अब हमें संक्षेप में मृत्योपरान्त जीवन को सिद्ध करने के लिए पुनर्जन्म के प्रमाण पर दृष्टि डालनी है। पुनर्जन्म का विचार अत्यन्त व्यापक है और इसकी चर्चा विभिन्न धर्मों में की जाती है। यद्यपि पुनर्जन्म हिन्दू और बौद्ध धर्मों का मुख्य विचार है, लेकिन कुछ विद्वानों का मानना है कि पुनर्जन्म के तत्व हमें यहूदी, इस्लाम ओर ईसामसीह की शिक्षाओं में भी मिल जाते हैं। यद्यपि पश्चात्य जगत में प्राचीन युग के बहुत से दार्शनिकों, धार्मिक शिक्षकों ने पुनर्जन्म में विश्वास किया है। पाइथागोरस से प्लोटिनस तक के बहुत से दार्शनिकों ने पुनर्जन्म को माना है। आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में पुनर्जन्म के समर्थक कम ही हैं, लेकिन २० शताब्दी के दार्शनिक मैक्टेगार्ट इसके अपवाद हैं। पुनर्जन्म के कई भेद हो सकते हैं, लेकिन उन सबका सार यह है कि यह संभव है कि मृत्यु के बाद मनुष्य पुनः मनुष्य या पशु के रूप में धरती पर जन्म ले सकता है या कोई पशु भी मनुष्य या पशु के रूप में जन्म ले सकता है। कभी-कभी यह भी माना जाता है कि पुनर्जन्म पृथ्वी पर न होकर किसी अन्य जगत में होता है। प्रायः पुनर्जन्म के सभी सिद्धान्त विश्व की न्याय संबंधी प्रक्रिया में विश्वास से जुड़े हुए हैं, जिसके अन्तर्गत यह माना जाता है कि हमें अपने अच्छे और बुरे कर्मों का फल अवश्य प्राप्त होता है और यह फल हमें इस जीवन में भी मिल सकता है और भावी जीवन में भी।

यद्यपि पुनर्जन्म के सिद्धान्त के कुछ विवरणों में कहा गया है कि एक जीवन से दूसरे जीवन के बीच की अवधि बहुत अधिक होती है, जबकि कुछ अन्य विवरणों में इस अवधि को कम बताते हुए कहा गया है कि ये कुछ हफ्ते या दिनों की भी हो सकती है। लेकिन महत्वपूर्ण यह है कि इतना निश्चित है कि एक जीवन से दूसरे जीवन में कुछ समयान्तराल होता है। अर्थात् इसके जीवन का आरम्भ तुरन्त नहीं होता और इस अन्तराल में आत्मा या अन्य कोई तत्व जो मृत व्यक्ति का सारतत्व होता है और जिसका पुनर्जन्म होता है, वह बिना जैविक और भौतिक शरीर के अस्तित्व में रहता है। अतः पुनर्जन्म के लिए, कुछ काल के लिए ही सही, लेकिन भौतिक शारीर रहित अस्तित्व को स्वीकार करना पड़ता है, क्योंकि इसे स्वीकार किये बिना पुनर्जन्म की सम्यक् व्याख्या नहीं की जा सकती है।

वर्तमान समय में मृत्योपरान्त जीवन को सिद्ध करने के लिए पुनर्जन्म के प्रमाण के भेदों में दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं प्रथम सम्मोहन (Hypnotic) प्रक्रिया से उत्पन्न पूर्वजन्म की स्मृतियाँ और द्वितीय बाल्यावस्था में सहज ही उत्पन्न पूर्वजन्म की यादें।

जिस व्यक्ति का सम्मोहन किया जाता है उसे सम्मोहनकर्ता यह निर्देश देता है कि वह अपने पूर्व अनुभवों को याद करे और सम्मोहनकर्ता के निर्देशानुसार वह अपने पूर्व अनुभवों को याद करता है। कभी-कभी उसकी स्मृतियों में ऐसे विषय भी आ जाते हैं, जो उसके वर्तमान जीवन में जन्म लेने से पहले के हैं। वे पूर्वजन्म के अपने नाम के साथ-साथ रिश्तेदारों व निकट सहयोगियों के विषय में भी सूचनाएं देते हैं। इसके अतिरिक्त वे महत्वपूर्ण तिथियों, विशिष्ट स्थान के नामों, पूर्व में घटित स्थानीय घटनाओं के साथ-साथ अपने घर की सजावट, अपनी आदतें,

खान-पान, रहन-सहन और उस अवधि के आचरण के बारे में भी विशिष्ट रूप से सूचना देते हैं, जहां तक वे स्मरण कर पाते हैं जिसका सम्मोहन किया जाता है उस व्यक्ति की आवाज परिवर्तित हो सकती है और उसके बोलने का ढंग उसके पूर्वजन्म के समय और स्थान में प्रचलित ढंग से समानता रख सकता है और इस प्रकार वह वर्तमान में प्रचलित बोलचाल के ढंग से भिन्न होता है। जिस व्यक्ति का सम्मोहन किया जाता है वह पूरी प्रक्रिया के दौरान दर्शकों के समक्ष पूर्वजन्म के अपने व्यक्तित्व से समानता रखता हुआ प्रस्तुत होता है। सम्मोहन के माध्यम से जो भी सूचनाएं सामने आती हैं, यदि उनका परीक्षण किया जाये तो अधिकांश घटनाओं का सत्यापन नहीं किया जा सकता, क्योंकि इतने पुराने साक्ष्य ऐतिहासिक ग्रन्थों या जीवनियों में ही पाये जा सकते हैं, जिनका कि अभाव होता है। लेकिन जो थोड़ी बहुत जानकारी सत्यापित की जा सकती है, उनमें सत्यता पायी जाती है। इस बात से यह सम्भावना बनती है कि सम्मोहन के परिणाम स्वरूप ही उस व्यक्ति की पूर्वजन्म की स्मृतियाँ वर्तमान जीवन में पुनः जागृत हो गई हैं।

एक अर्थ में इन्हें प्रतिबिम्बों की क्रमबद्धता से अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। इस रूप में यह सम्मोहनकर्ता के आग्रह से उत्पन्न कल्पनाएं हो सकती हैं। लेकिन यह अकेला तथ्य उस सम्पूर्ण घटना के लिए उत्तरदायी नहीं माना जा सकता जिसमें सम्मोहन किया गया व्यक्ति एक मृत व्यक्ति के साथ साम्यता रखते हुए उसके विषय में ऐसी-ऐसी सूचनाएं दे देता है, जो सम्मोहनकर्ता की जानकारी के भी बाहर होती है। लेकिन फिर भी यह बात सिद्ध करना बहुत कठिन है कि ये सूचनाएं सम्मोहन किए गए व्यक्ति को साधारण माध्यमों से प्राप्त नहीं हुई हैं। प्रयोग के लिए कभी-कभी एक ही व्यक्ति को बार-बार सम्मोहित किया जाता है और ऐसी स्थिति

में यह पाया गया कि कुछ केसों में पुनः सम्मोहन में व्यक्ति ने लगभग वैसी ही आश्चर्यचकित करने वाली जानकारी दी जैसी कि उसने पहले व्यक्त की थीं, जबकि उन केसों में नवीन रूचि व्यक्ति के मौलिक अभिव्यक्ति से पूर्णतः भिन्न होती है। इसकी व्याख्या के लिए सिद्धान्त रूप में यह कहा जा सकता कि ऐसे ज्ञान सम्मोहन भाव समाधि के दौरान भूतकाल काल के अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष (ESP) के द्वारा प्राप्त किए गए, यद्यपि इससे जिस व्यक्ति का सम्मोहन किया गया है उसकी मृत व्यक्ति से समानता की सम्यक् व्याख्या नहीं हो पाती। सिद्धान्तः यह भी संभव है कि सम्मोहन भाव समाधि के दौरान जिस व्यक्ति का सम्मोहन किया गया है। वह एक ऐसे मीडियम के रूप में कार्य करने लगता हो, जिसका मृत व्यक्ति से सम्पर्क हुआ हो और वह मृत व्यक्ति के विषय में सूचनाएं देने लगता हो। लेकिन मीडियम के रूप में स्वीकार करने पर भी केवल पुनर्जन्म का खण्डन किया जा सकता है, मृतयोपरान्त जीवन का नहीं।

जहां तक बाल्यावस्था में सहज उत्पन्न पूर्व जन्म की स्मृतियों का प्रश्न है, तो हम प्रायः देखते हैं कि बहुत से छोटे बालक जिनकी उम्र आमतौर पर दो से चार वर्ष की होती है और जो जैसे ही बातचीत करने में सक्षम होते हैं, यह दावा करने लगते हैं कि वे एक दूसरे परिवार से संबंधित है और उनका एक भिन्न व्यक्तित्व है। वे अपने पूर्व परिवार के विषय में विस्तृत जानकारी देने लगते हैं, जैसे अपने पूर्व नाम के साथ-साथ परिवार के सदस्यों का नाम बतलाते हैं, निवास स्थान बताते हैं और उन महत्वपूर्ण घटनाओं को भी बताते हैं जो पूर्व जन्म में उनके साथ घटी थीं। इसके अतिरिक्त वे अपने पहनावे, खानपान और आदतों के विषय में भी सूचनाएं देते हैं। कभी-कभी बालक अपने माता-पिता के प्रयासों के बाद भी इन यादों को बनाए रखता है, लेकिन प्रायः सात-आठ वर्ष का होते-होते या किशोरावस्था तक बालक धीरे-धीरे इन्हें भूल जाता है।

इस प्रकार के बहुत से केसों की छानबीन डॉ० इयान स्टीवेन्सन के द्वारा की गई है, जिन्होंने अमेरिका, कनाडा, अलास्का यूरोप, टर्की, लेबनान, भारत, श्रीलंका और अन्य बहुत से देशों का दौरा करने के पश्चात् 1960 से इस प्रकार के हजारों केस इकट्ठा किए और कई पुस्तकें लिखी, जिनमें पहली थी Twenty Cases Suggestive of Reincarnation जो 1966 में प्रकाशित हुई।[83] अपने शोध की गहन विधियों और एकत्रित गणनाओं के प्रति समीक्षात्मक दृष्टिकोण, प्रयुक्त वाक्यों का पुनः-पुनः परीक्षण करने की प्रवृत्ति, सम्भावित आलोचनाओं को देखना और अपनी परिश्रमयुक्त विश्लेषण की क्षमता के द्वारा प्रो० स्टीवेन्सन ने प्रत्येक केस का मूल्यांकन किया है और अपने साथियों के साथ-साथ ऐसे व्यक्तियों का भी सम्मान प्राप्त किया है, जिन्हें पुनर्जन्म में विश्वास नहीं था। यद्यपि प्रो० स्टीवेन्सन ने स्वयं माना है कि उनके द्वारा जुटाये गये साक्ष्य पुनर्जन्म को पूर्णतः सिद्ध नहीं कर सके हैं, लेकिन उनकी आशा है कि भावी शोधकर्ता पुनर्जन्म के सिद्धान्त या प्राक्कल्पना को शक्ति प्रदान करेंगे।

प्रो० स्टीवेन्सन कहना है कि छानबीन में यह तथ्य सामने आया है कि पुनर्जन्म के मामले में बहुत से व्यक्तियों के मृत्यु हिंसात्मक गतिविधियों में हुई हैं और कभी-कभी उनकी मृत्यु के तरीके का प्रभाव वर्तमान बालक पर आवेश एवं व्यग्रता के रूप में सामने आ जाता है और कभी-कभी बालक में जन्म चिन्ह के रूप में पाया जाता है, जो लगभग उस आघात के जैसा होता है जो उसकी पूर्वजीवन की मृत्यु का कारण था। कुछ केसों में गर्भावस्था में माँ को घोषणा करने वाले स्वप्न (Announcing Dreams) आते हैं, जिसमें माँ को उसके जन्म लेने वाले बालक के पूर्वजन्म के व्यक्तित्व के विषय में सूचना मिलती है। यह बात सत्य है कि डा० स्टीवेन्सन के अधिकांश केस विश्व के ऐसे क्षेत्रों से लिए गए हैं, जिसकी संस्कृति में पुनर्जन्म में सामान्य विश्वास पाया जाता है। फिर भी इस प्रकार की घटनाओं की व्याख्या कई प्रकार से की जा सकती है जिस पर उन्होंने चर्चा भी की है। उनका कहना है कि यह संभव है कि किसी प्रकार का धोखा किया गया हो, या झूठ बोला गया हो। लेकिन बहुत से ऐसे कारण तो हो सकते हैं जो

---

83. I Stevension, Iwenty cases suggestive of Reinearnation (charlotterville; University press of Virginia, 1974).

पुनर्जन्म के किसी केस को असंभव बना सकते हो, किन्तु वे सामान्य सिद्धान्त के रूप में वे पुनर्जन्म को असंभव नहीं बनाते।

वर्जीनिया वि० वि० मेडिकल स्कूल के प्रो० ईयान स्टीवेन्सन के अनुसंधानों में यह पाया गया है कि जिन बालकों का प्रेक्षण किया गया उन बालकों के द्वारा दी गई सूचनाओं में 90% सूचनाएं सत्य है, और जब उन्हें उनके पहले वाले घरों में लाया गया तो उन्होंने घर और पड़ोस में उन परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से बता दिया जो उनकी मृत्यु के बाद हुए थे। इसी प्रकार एक आठ वर्ष की बालिका ने अपने पूर्व रिश्तेदारों, पड़ोसियों, मित्रों, नौकरों को पहचान लिया, और उन सबके द्वारा उसे बहकाने के प्रयास के बावजूद उसने उस मृत व्यक्ति के साथ इन सभी का अलग-अलग सही संबंध बता दिया जिस मृत व्यक्ति होने का वह दावा कर रही थी। वह अक्सर अपने पहले के पति, भाई, बहन और बच्चे (जो अब जवान हो गया था) के साथ स्वाभाविक सा व्यवहार करने लगती थी। शीघ्र ही उसके पूरे परिवार के सदस्यों ने यह स्वीकार कर लिया कि यह उनकी पूर्वजन्म की पत्नी, बहन, या मां का प्रत्यक्ष पुनर्जन्म है। कभी-कभी यह अपने पूर्वजन्म के उन विशिष्ट गुणों को भी प्रदर्शित करती थी, जो उसने जीवित रहते हुए सीखा था, जैसे नृत्य करना, बांग्ला भाषा में गीत गाना, जबकि वर्तमान समय में वह केवल हिन्दी बोलती थी। उसके व्यवहार, सोच और भावनाएं लगातार वैसी ही थी, जैसे कि पूर्व जन्म में थी।

अब यदि धोखा देने, झूठ बोलने और संयोग की संभावना को हटा दिया जाये तो इस प्रकार की घटनाओं की एक प्रकृतिवादी व्याख्या क्रिप्टोनेसिया (Cryptomnesia) के आधार पर की जा सकती है, जिसमें यह माना जाता है कि हो सकता है कि बालक को वर्तमान जीवन में

कोई सूचना मिली हो, जिसे वह अब भूल गया हो, और उस सूचना को अपनी स्मृतियाँ मानकर व्यक्त कर रहा हो, लेकिन उपलब्ध घटनाओं की यह व्याख्या ठीक नहीं है, क्योंकि मामूली सूचनाओं के द्वारा उतनी विशिष्ट, तथ्यात्मक और स्पष्ट ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती जैसी कि पुनर्जन्म के केस में देखी जाती हैं।

इसके अतिरिक्त यह व्याख्या भी दी जा सकती है कि यद्यपि मीडियम प्रायः वयस्क होते हैं, लेकिन इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि वह बालक एक प्रकार के मीडियम के रूप में कार्य करने लगा हो। साथ ही, यह की संभावना हो सकती है कि बालक को किसी मृत व्यक्ति की आत्मा के द्वारा कब्जे में कर लिया गया हो और जिसके व्यक्तित्व को बालक व्यक्त कर रहा हो धीरे-धीरे समय के साथ बालक का अपना व्यक्तित्व उभरता है और वह अपने वास्तविक मन व शरीर से कार्य करने लगता है। लेकिन ये व्याख्याएं भी उचित नहीं हैं, क्योंकि विभिन्न व्यक्तियों व स्थानों की पहचान की जो गहनता और स्पष्टता पुनर्जन्म की व्याख्या में पाई जाती है, वैसी इन व्याख्याओं में नहीं प्राप्त होती।

तो क्या हम यह कह सकते है कि इस प्रकार के पुनर्जन्म के प्रमाणों के आधार पर मृत्योपरान्त जीवन को सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया जा सकता हैघ लेकिन इस विषय पर निग्रय देने के पूर्व हमें बहुत से प्रश्नों पर विचार करना होगा, जैसे क्या सभी का पुनर्जन्म होता है? यदि नहीं तो क्यों नही ? यदि हाँ, तो कितनी बार ? क्या पुनर्जन्म की प्रक्रिया कभी समाप्त होती है ? इन प्रश्नों के उत्तर में अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि कुछ व्यक्तियों का पुनर्जन्म हो सकता है और अन्य व्यक्तियों के विषय में कुछ नही कहा जा सकता। साथ ही ये ीाी

नही कहा जा सकता कि पुनर्जन्म कितने बार होता है और ये प्रक्रिया कभी समाप्त होती है या नहीं अथवा स्थायी रूप से कोई अशारीरिक अवस्था प्राप्त हो जाती है अथवा आत्माओं के साथ विलय हो जाता है अथवा किसी तत्वमीसांसीय निरपेक्ष सत्ता में विलय हो जाता है। अतः यह प्रमाण भी मृत्योपरान्त जीवन को सिद्ध नहीं कर पाता।

अन्ततः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि यद्यपि पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर बहुत से दार्शनिक व वैज्ञानिक आक्षेप किये गये है, जो शारीरिक मृत्यु के उपरान्त जीवन के विचार को निश्चित रूप से प्रभावित करते है, लेकिन इनमें से अधिकतर उन सिद्धानतो पर अधिक लागू होते है जो कि सीधे-सीधे मृत्योपरान्त देहरहित पृथक अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयास करते है न कि पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर। पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मृत्योपरान्त जीवन को दिये गये अन्य सिद्धान्तो पर वरीयता देने के लिये कहा जा सकता है कि इसके लिए शारीरिक अस्तित्व अधिक सहज रास्ता है न कि अशारीरिक अस्तिव क्योकि ये तो निश्चित ही है कि एक शारीरिक अवस्था से दूसरी शारीरिक अवस्था में आने के लिए मध्यवर्ती स्थिति में अशारीरिक अवस्था से गुजरना ही होगा। अतः पुनर्जन्म के विचार और मृत्योपरानत जीवन के विचार में कोई आवश्यक विरोध नही है।

इस प्रकार परामनोवैज्ञाानिक तर्को के आधार पर भी इस बात की केवल संभावना ही व्यक्त की जा सकती है कि आत्मा या इसके जैसा कोई अन्य शाश्वत है या अमर है।

अध्याय : छः

निष्कर्ष

"आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में अमरता की समस्या" पर प्रस्तुत अपने शोध प्रबन्ध में मैने अभी तक क्रमशः अमरता के प्रत्यय का परिचय, उसका ऐतिहासिक विकास और तत्पश्चात् व्यक्तिगत अमरता को सिद्ध करने के लिए दिये गये विभिन्न प्रमाणों की विवेचना की है। मैंने अमरता के संबंध में दिए गए प्रमाणों की चर्चा मुख्यतः तीन शीर्षकों के अन्तर्गत की है-

१. तत्वमीमांसीय एवं धार्मिक प्रमाण

२. नैतिक प्रमाण

३. परामनोविज्ञान संबंधी तर्क

इन सभी प्रमाणों का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि इनमें से कोई भी तर्क व्यक्तिगत अमरता को निर्विवाद सिद्ध कर पाने में पूर्णतः सफल नहीं रहा फिर भी, अमरता के विचार को महत्वहीन समझ कर हम इसे त्याग नहीं सकते। दूसरे शब्दों में, अमरता की समस्या इतनी महत्वपूर्ण है कि इसे छोड़ा नहीं जा सकता और यही कारण है कि, प्राच्य हो या पाश्चात्य, प्राचीन हो या आधुनिक, सभी देश-कालों में अमरता पर गहन विचार करने वाले दार्शनिकों के दर्शन हो जाते हैं। इन दार्शनिको समक्ष यह प्रश्न शेष रह जाता है कि क्या व्यक्ति मृत्यु के साथ पूर्णतः समाप्त हो जाता है अथवा मृत्यु के उपरांत भी वह किसी रूप में अथवा

उसका कोई अंश जीवित बना रहता है। मृत्यु का यह रहस्य दार्शनिक जिज्ञासा का मुख्य विषय है, जिसके आरंभिक साक्ष्य हमें प्लेटो के संवाद 'फीडो' में देखने को मिलता है। फीडो में मुख्य वक्ता सुकरात ने दर्शन को ''मृत्यु पर मनन' (Meditation on death) के रूप में परिभाषित किया है। जिसका सीधा अर्थ कि मुख्य दार्शनिक प्रश्न यही है कि मनुष्य मर्त्य है अथवा अमर्त्य (अमर) ।

पाश्चात्य दर्शन का ऐतिहासिक अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि बहुत से प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिकों ने सुकरात के अमरता संबंधी इसी वक्तव्य का अनुमोदन किया है। यद्यपि दार्शनिक विचार अन्तगोतत्वा अमरता को निश्चयात्मक रूप से सिद्ध करने में सफल न भी हो तो भी मनुष्य के जीवन के लिए उसके महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि बारंबार दार्शनिक अमरता के प्रश्न को उठाते है और उसे सत् प्रमाणित करने का प्रया करते है।

अमरता के विचार का महत्व सिद्ध करने के लिए कुछ आधार प्रस्तुत किए जा सकते हैं-

प्रथम आधार प्रस्तुत करते हुए यह कहा जा सकता है कि अमरता का विचार सभी विकसित धर्मों का स्वीकृत सिद्धान्त है जो अनिवार्यतः ईश्वर संबंधी विचार से जुड़ा होता है। विश्व के अधिकांश धर्मों में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया है और उसे केन्द्रीय स्थान प्रदान किया गया है। किन्तु अमरता संबंधी प्रश्न पर विचार करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि धर्म के लिये 'अमरता का विचार' 'ईश्वर के विचार' से अधिक महत्वपूर्ण है। इस तथ्य की पुष्टि

करते हुए महान मनोवैज्ञानिक दार्शनिक विलियम जेम्स ने धर्म को परिभाषित करते हुए कहा है कि हमारी प्रजाति के अधिकांश लोगों के लिए धर्म का अर्थ मुख्यतः अमरता ही है। और ईश्वर अमरता का सृजक (Creator) है। विलियम जेम्स के शब्दों में -

'Religion, in fact, for the great majority of our own race, means immortality, and nothing else. God is the producer of immortality.[84]

अमरता के महत्व को स्पष्ट करते हुए कुछ अमरीकी विद्वानों का मानना है कि अधिकतर मनुष्य शाश्वत जीवन के अतिरिक्त अन्य किसी बात का आश्वासन नहीं चाहते। यही कारण है कि यदि अमरता को बाजार में बेचा या खरीदा जा सकता तो निश्चित रूप से इसे अन्य सभी वस्तुओं की अपेक्षा अधिक कीमत पर खरीदा या बेचा जाता।[85]

इसी क्रम में मार्टिन लूथर ने अमरता के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि यदि शाश्वत जीवन में विश्वास न किया जाय, तो ईश्वर का महत्व अत्यन्त साधारण रह जाता है। लूथर के शब्दों में-

'If you believe in no future life, I would not give a mushroom for your God.'[86]

---

84. William James, The varieties of Religious Experience, Longmans Coreen, 1910, P. 524
[85] A. Avery Gates, Ed,., My Belief in Immortality, Doubleday, Doran, 1928, P.5
[86] Outted in Radoslav A. Tsanoff, The Problem of Immortality, Macmillan, 1924 P. 245.

टेनीसन (Tennyson) ने अमरता के विचार का महत्व स्पष्ट करते हुए यहां तक कह डाला कि अमरता के अभाव में हमें यह मानना होगा कि हमारी रचना ईश्वर ने नहीं की है वरन् हम किसी उपहासात्मक शैतान द्वारा रचित है। Tennyson के शब्दों में If immortatily be not true, then no God but a mocking fiend Created us.[87]

सभी धर्मो के अनुसार ईश्वर आदर्श और पूर्ण व्यक्तित्व है जो इस जगत् की न्यूनताओं से रहित और आनन्दमय है। अमरत्व उसका अनिवार्य अंग है। और मानव ऐसी ही पूर्णता और आनन्द की स्थिति प्राप्त करना चाहता है। किन्तु ईश्वर और अमरता के बीच यह अटूट सम्बन्ध होते हुए भी अमरता का विचार ही प्राथमिक अथवा वरीय है। यदि अमरता को न स्वीकार किया जाय तो ईश्वर अपूर्ण और मृत त होगा। अमरता के विचार से ही को ईश्वर के विचार को महत्ता मिलती है।

आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में अन्य कालों की अपेक्षा आत्मा की अमरता के विचार को अधिक वरीयता प्रदान की गई है। इस विषय में मार्टिन लूथर और अन्य आधुनिक चिंतकों के विचारों को हम देख चुके हैं। लेकिन इस संबंध में मुख्य उदाहरण कांट का दिया जा सकता है। कांट ने अमरता की मांग को नैतिकता की दो अन्य पूर्वमान्यताओं (ईश्वर और स्वतन्त्रता) के साथ आवश्यक बताया और अमरता की मांग को पूरा करने के लिए ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कांट ने ईश्वर को अमरता की गारंटी प्रदान करने के लिए ही स्वीकार किया हे।

[87] Onoted in A.Seth Pringle-Pattison, The Idea of Immortality, oxford University Press, 1922, P. 184

इसी क्रम में Fosdick ने ईश्वर के शुभत्व (The Goodness of God) को अमरता के लिए अनिवार्य माना है। उनका कहना है कि यदि मृत्यु के साथ ही सब कुछ खत्म होने वाला है तो हमें मानना होगा कि सृष्टिकर्ता ईश्वर ने मनुष्य को रेत के मकान के समान बनाया है। Dr. Fosdick के शब्दों में, "The Goodness of God is plainly at stake when one discusses immortality, for if death ends all, the creator is building men like sand houses on the shore, caring not a whit that the fateful waves will quite obliterate them...... The Universe distinctly is not friendly, if it has reared with such pain the moral life of man, only to topple it over like a house of cards."[88]

Dr. George A Gordon ने भी अमरता के प्रश्न को रचनाकार के बुद्धि और शक्ति के औचित्य और अनौचित्य से जोड़ा है। Dr. Gordon के शब्दों में 'the ultimate reasonableness or unreasonableness, the intelligence or brutality of the power that is responsible for our existence.'[89]

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि Gordon और Dr. Fosdick जैसे विद्वानों ईश्वर के शुभत्व और समझदारी का श्रेय अमरता को दिया हे।

आधुनिक काल के एक अन्य धर्म मनोविज्ञान के विद्यार्थी जेम्स बी० प्रैट का मानना है कि धर्म में शेष अतिप्राकृतिक का मात्र व्यवहारिक मूल्य है मृत्योपरांत जीवन में विश्वास है। उसके शब्दो में, "As the belief in miracles and special answer to prayer and in the interference of the supernatural within the natural has gradually disappeared,

---

[88] Harry Emerson Fosdick, The Assurance of Immortatity, Association Press, 1926 P.P. 100-102

[89] George A. Gordon, Immortality and the new Theadicy, Houghton Mifflin, 1897, P. 17

almost the only pragmatic value of the supernatural left to religion is the belief in a personal future life.[90]

Dr Lawton का भी मानना है कि ईश्वर का महत्व हमारे जीवन में बहुत कम है। हमारी रूची आत्माओं और उनके साथ संबंध तथा मृत्यु के बाद के जीवन में ही अधिक होता है। Dr. Lawton के शब्दों में 'God.....plays a very minor part in the belief system as well as in the daily life of the spiritualists not simply because of his inaccessibility. but because they are not interested in him. They are interested in spirits and all the details of the after-life. Communication with the spirits, their saints, they *find for more desirable than communion with God, and easier, I may add."*[91]

इस प्रकार यद्यपि ईश्वर और अमरता एक दूसरे से अंतः संबंधित हैं और दोनें ही महत्वपूर्ण है, किन्तु दोनों को समान महत्व का नहीं कहा जा सकता। ईश्वर अमरता का गारंटर हे और अमरता गारंटी का महत्व गारंटर से अधिक होता है। दूसरे शब्दों में यह अधिक महतवपूर्ण है कि किस चीज़ की गारंटी दी जा रही है न कि कौन गारंटी दे रहा है।

अमरता के महत्व को सिद्ध करने के लिए द्वितीय आधार इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है कि यदि अमरता को स्वीकार न किया जाय तो विश्च में व्याप्त अशुभ की क्षतिपूर्ति संभव नहीं होगी। यह सर्वविदित है कि अमरता के द्वारा सद्गुणी को विशिष्ट सुख

---

[90] James B. Pratt, The Religious Consciousness, Macmillan, 1928, P. 253
[91] George Lowton, The Drama of Life after Death, Holt, 1932, P.P.35-36.

(marvelous happiness) की प्राप्ति होती है और संसार में व्याप्त अशुभ की पूर्ण क्षतिपूर्ति (compensation) होती है।

विश्व में व्याप्त अशुभ से हम सभी परिचित हैं जो शरीरिक अथवा मानसिक पीड़ा के रूप में संसार में व्याप्त है। सभी पशु, पक्षी मनुष्य इत्यादि आंधी, तूफान, बाढ़, भूकम्प, सूखा, अकाल, महामारी आदि प्राकृतिक आपदाएं और अनेक प्रकार के शारीरिक या मानसिक रोगों एवं अपने प्रिय जनों की असामयिक मृत्यु के कारण प्राप्त होने वाले दुःख के रूप में निरंतर अशुभ का अनुभव करते हैं।

इसके अतिरिक्त हम अपने व्यवहारिक अनुभव से यह भी जानते हैं। कि व्यक्ति जीवन में बहुत से बौद्धिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक, कलात्मक, साहित्यिक तथा सद्गुण संबंधी मूल्यों की प्राप्ति करता है, लेकिन एक निश्चित आयु में उसका जीवन समाप्त हो जाता है जिसे घोर अन्याय कहा जा सकता है। इस प्रकार हमारे वैज्ञानिक आईसंटीन, गैलीलियों, न्यूटन आदि के द्वारा वैज्ञानिक विकास के लिए किये गये प्रयासों का उनके लिए कोई मूल्य नही रह जाता। इसी प्रकार हमारे महान साहित्यकार शेक्सपीयर, कालिदास, महान दार्शनिक प्लेटो, अरस्तू शंकराचार्य; महान संगीतज्ञ तानसेन, बैजूबावरा जैसी हस्तियों के भी बहुमूल्य कृतित्व का उनके लिए कोई महत्त्व नहीं रह जाता, क्योंकि इस प्रकार के सभी व्यक्ति एक निश्चित आयु में आकर मर जाते हैं। निश्चित रूप से ऐसे व्यक्तियों व अन्य विद्वानों की जीवन अवधि कुछ और अधिक होती तो मानव सभ्यता के विकास में उनका योगदान भी और अधिक होता। इस प्रकार यहां दोहरी क्षति होती

है। क्योंकि मनुष्य की मृत्यु के साथ उसकी उपलब्धियां कम से कम उनके लिए तो समाप्त हो ही जाती है और साथ ही आगे जो वे समाज को योगदान देते उसकी भी हानि होती है।

इसी प्रकार बहुत से बच्चों और अल्पव्यस्कों को उनके वर्तमान जीवन में विकसित होने का पर्याप्त अवसर ही नहीं मिल पाता क्योंकि उनकी जीवन लीला बिना अपनी क्षमताओं का पूर्ण प्रदर्शन किए अल्पायु में ही समाप्त हो जाती है। इस प्रकार यह स्थिति ऐसे व्यक्तियों के लिए अत्यन्त अन्यायपूर्ण और अशुभ कही जाएगी। सैकड़ों वर्ष पूर्व गौतम बुद्ध ने 'सर्वं दुखं' कहकर संसार को दुःखमय बताते हुए इसी सत्य को अपने प्रथम आर्यसत्य के रूप में स्वीकार किया था।

स्पष्ट रूप से केवल अमरता ही अपूर्ण विश्व के अशुभत्व और हमारे प्रिय जनों के बिछुड़ने की क्षति पूर्ति कर सकती है।

अमरता की समस्या के महत्व को सिद्ध करने के लिए एक अन्य आधार नैतिकता और नैतिक नियमों का दिया जा सकता है। जिसके सर्वोच्च आदर्श आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक कांट और भारतीय दर्शन की प्रस्थानत्रयी में से एक श्री मद्भगवद्गीता में दिखलाई पड़ते हैं। कांट और श्री मद्भगवद्गीता के नैतिक आदर्श हमें सुख प्राप्ति के लक्ष्य के लिए कार्य करने से रोकते हैं। कांट का मानना है कि सुख प्राप्ति को हम अपना अधिकार भले मान लें लेकिन वह हमारा कर्तव्य नहीं हो सकता। यही कारण है कि कांट ने नैतिक नियम के अनुसार कर्म करने को कहा है जबकि गीता ने निष्काम कर्म का संदेश दिया है।

लेकिन नैतिकता की एक मांग यह भी है कि व्यक्ति जिस अनुपात में शुभ कर्मों का सम्पादन करता है उसी अनुपात में उसे सुख की प्राप्ति होनी चाहिए। अतः जिस प्रकार शाश्वत नैतिकता अशुभ कर्मों के सम्पादन के फल के रूप में दण्ड व्यवस्था का समर्थन करती है उसी प्रकार वह शुभ कर्मों के अनुपात में आनन्द का भी समर्थन करती है। अतः शाश्वत नैतिकता कर्म व आनन्द में संश्लेषण की मांग करती है और यह संश्लेषण कभी-कभी इस जीवन में दिखलाई पड़ता है, जबकि कभी-कभी ऐसा नहीं होता। अतः यह मानना पड़ता है कि यह संश्लेषण भावी जीवन में अवश्य होगा । हमें अपने सभी कर्मों के फल एक ही जीवन में प्राप्त नहीं हो जाते। वरन् यह भी संभव है कि हम वर्तमान जीवन में अपने पूर्वजन्म के कर्मों के फल प्राप्त कर रहे हों और वर्तमान जीवन के कर्मों का फल आगामी जीवन में प्राप्त हो। इस तथ्य की सम्यक् व्याख्या तब तक संभव नहीं है, जब तक कि पुनर्जन्म को न स्वीकार कर लिया जाये और पुनर्जन्म से अनिवार्यतः अमरता का विचार आपादित होता है।

साथ ही हम अपने व्यवहारिक जीवन में यह भी देखते हैं कि बहुत से सद्गुणी व्यक्ति दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं, जबकि इसके विपरीत बहुत से दुर्गुणी व्यक्तियों का जीवन सुख और आनन्द से भरा हुआ दिखाई देता है। हम सद्गुणी और नैतिक व्यक्तियें को नैतिकता के मार्ग पर अग्रसर रहने का सन्देश तभी दे सकते हैं जब उन्हें इस बात का आश्वासन दिया जाये कि उनके द्वारा इस जन्म में किए गये नैतिक कर्म व्यर्थ नहीं जाएंगे; वरन् इसका शुभ फल उन्हें या तो इस जीवन में या आगामी जीवन में प्राप्त होगा। इस प्रकार की व्याख्या को भी अमरता के बिना स्वीकार नहीं किया जा सकता हैं

इसके अतिरिक्त नैतिकता हमें कर्तव्य, त्याग, परोपकार और यहां तक कि आत्मबलिदान तक का सन्देश देती है। मानव सभ्यता के इतिहास में बहुत से व्यक्ति इन आदर्शों पर कार्य करते रहे हैं और बहुत से कर रहे हैं। लेकिन आत्मबलिदान के द्वारा जीवन समाप्त कर देने और नैतिकता के लिए जीवन भर कष्ट उठाने के कार्य को तब तक सार्थक नहीं कहा जा सकता है जब तक कि अमरता को स्वीकार न कर लिया जाय। क्योंकि उन्हें मृत्यु में पूरी तरह से समाप्त होने की हालत में कुछ भी वास्तविक लाभ नहीं होगा। ऐसी स्थिति में उच्च मूल्यों के आधार पर कर्म करने का सन्देश नही दिया जा सकता। और इस प्रकार नैतिकता तथा नैतिक नियमो की कोई सार्थकता नहीं रह जाएगी। क्यों कोई व्यक्ति नैतिक नियमों का पालन करेगा? इस प्रकार यदि नैतिकता का उद्देश्य उच्च मूल्यों को स्थापित करना है तो इससे अमरता का विचार अनिवार्यतः आपादित होता है। व्यक्ति और समाज दोनों के मूल्यों को नैतिकता और साथ में ईश्वर से ही संरक्षण (insurance) मिलता है।

ऐसी हालत में अमरता को अस्वीकार करना कठिन है। और मनुष्य की सदैव यही चेष्टा रहती है कि किस प्रकार अमरता के लिए सुदृढ़ आधार खोजे जायं।

पुनः सोचने का विषय यह है कि अमरता को किस रूप में स्वीकार किया जाय? क्या अमरता सब के लिए है अथवा यह भी एक मूल्य है जिसे हमें अपने प्रयत्नों से अर्जित करना होगा।

यदि अमरता को सार्वभौमिक रूप से सभी के लिए स्वीकार कर लिया जाय, तो विश्व में अशुभ को उत्पन्न करने वाले तत्व भी अमरत्व को प्राप्त कर लेगें। इस प्रकार विश्व में अशुभ की सत्ता स्थयी रूप से सिद्ध हो जाएगी। इसी आधार पर बहुत से दार्शनिकों ने सार्वभौम अमरता का विश्व में स्थायी रूप से अशुभ उत्पन्न करने वाले सिद्धान्त होने के कारण विरोध किया है। मानव इतिहास के अवलोकन करते समय हमें बहुत से ऐसे अशुभ को उत्पन्न करने वाले तत्व दिखलाई पड़ते हैं। जैसे रावण, कंस, हिरण्यकश्यप इतयादि ने अपने समय में विभिन्न अशुभ कार्य किये हैं जिनके द्वारा जन सामान्य सहित इनके सगे संबंधियों को पीड़ा पहुंची है। इस प्रकार अमरता सभी के लिए स्वीकार्य नहीं मानी जा सकती क्योंकि तब अशुभ को भी प्रश्रय मिलेगा वास्तव में अमरता भी एक प्रकार का मूल्य (Value) है जिसे हम अपने प्रयत्न से प्राप्त या अर्जित कर सकते हैं न कि इसे पहले से ही सभी के लिए उपलब्ध माना जा सकता है जिन्होंने जीवन में कोई मूल्य अर्जित नहीं किया है उनकी अमरता का क्या लाभ है। अमरता का वही मत उचित या वांछनीय माना जा सकता है जिससे बुराई (अशुभ) का विनाश हो और शुभ का संरक्षण हो। इस मत के अनुसार अमरता को केवल वे ही लोग अर्जित कर सकते हैं जिन्होंने अपने प्रयास से उच्च मूल्यों अथवा आदर्शों को उपलब्ध किया है और अपने में नैतिक आध्यात्मिक गुणों का विकास कर लिया है। इस प्रकार की सीमित अमरता का विचार ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म और हिन्दू धर्म आदि में भी देखने को मिलता है। ईसाई धर्म में माना जाता है कि वे ही लोग अमर होंगे जिन्होंने ईश्वरीय गुणों या मूल्यों तथा ईश्वर की आज्ञाकारिता को जीवन में प्राप्त कर लिया है। लूक रचित सुसमाचार के 20:35 में स्पष्ट लिखा है कि केवल अच्छे मूल्य और योग्य व्यक्ति

ही अमर जीवन के अधिकारी होगें। अनंत जीवन का अधिकार ईश्वरीय प्रसन्नता और उसकी आज्ञाकारिता पर निर्भर करता है।

प्रसिद्ध इस्लामी विचारक मो० इकबाल के अनुसार अमरता पर सभी का अधिकार नहीं है। इसके लिए मनुष्य को अथक प्रयास करना पड़ता है।

हिन्दू धर्म दर्शन में प्रचलित प्रार्थना 'असतो मा सद्गमय.....' जिसमें ईश्वर से मरणशीलता से अमरत्व की ओर ले जाने का आग्रह किया गया है। इससे भी ऐसा लगता है कि अमरता सभी के लिए पहले से उपलब्ध नहीं है, तभी ईश्वर से अमरत्व प्रदान करने की प्रार्थना की जाती है।

यहां एक अन्य तथ्य की ओर भी मैं ध्यान दिलाना चाहुंगी कि अमरता को सिद्ध कराने के लिए प्रस्तुत किए गए प्रमाणों में से नैतिक और परामनो वैज्ञानिक प्रमाण आंशिक रूप से सीमित अमरता के लिए ही साक्ष्य कहे जा सकते हैं। क्योंकि नैतिक प्रमाण में नैतिकता और नैतिक नियमों के आधार ही अमरता को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है । और नैतिक नियम केवल शुभ कर्मों को उत्पन्न करने वाले तत्वों को ही सुरक्षित रखते हैं और अशुभ तत्वों को नष्ट करना ही उनका लक्ष्य है। साथ ही परामनोवैज्ञानिक युक्ति के अंतर्गत हमने जिन दृष्टान्तों को प्रस्तुत किया है उससे भी ज्ञात होता है कि मृत्यु के समीप अनुभव केवल कुछ लोगों को ही प्राप्त होते हैं, प्रेतात्मा संबंधी अनुभव भी केवल कुछ व्यक्तियों को ही होते हैं, मीडियम के द्वारा वार्ता करने में केवल कुछ ही व्यक्ति सफल होते हैं और पूर्वजन्म की यादों को स्मरण करने

वाले व्यक्ति भी कुछ ही होते हैं। अतः कहा जा सकता है कि नैतिक और परामनोवैज्ञानिक तर्क सीमित अमरता की ही बात करते हैं।

अन्त में कुछ अन्य विचार भी ऐसे हैं जिन्हें यद्यपि अमरता के पक्ष में दिये गये शुद्ध प्रमाण के रूप में नही स्वीकार किया जा सकता, लेकिन वे हमारा झुकाव अमरता में विश्वास की ओर अधिक से अधिक बढ़ाते हैं। इस संबंध में Dr. Haynes Holmes ने १६६२ में अपने विचार 'Ten Reasons for Believing in Immortality' नामक लेख में व्यक्त किए हैं जिसे सार रूप में यहां व्यक्त किया गया है। सर्वप्रथम हम अमरता में विश्वास कर सकते हैं क्योंकि इस बात के कोई कारण नही दिखलाई पड़ते कि इसमें विश्वास न किया जाय। इस विषय पर चर्चा करते समय प्रश्न यह उठता है कि अमरता को किसी भी तर्क से पूर्णतया प्रमाणित नहीं किया जा सका है। लेकिन, इसका उत्तर यह कह कर दिया जा सकता है कि अमरता को अप्रमाणित भी नही किया जा सका है अर्थात् जिस प्रकार अमरता के पक्ष में कोई निर्णायक साक्ष्य नहीं है, उसी प्रकार अमरता के विपक्ष में भी निर्णायक साक्ष्य उपलब्ध नही होते हैं।

अमरता में विश्वास के लिए एक अन्य कारण यह है कि विभिन्न कालों के महान व्यक्तित्वों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, विद्वानों, समाज सुधारकों ने अमरता में विश्वास किया है। ऐसे ही श्रेष्ठ व्यक्तियें के बीच, जिनके विचारों से समाज प्रभावित होता है, जिस विचार की सहमति रही हो उसे सामान्य सहमति के रूप में स्वकीार किया जा सकता है। अमरता के प्रत्यय के ऐतिहासिक विकास पर चर्चा करते समय हमने देखा है कि जहां प्राचीन ग्रीक वैज्ञानिक अरस्तू से लेकर बहुत से आधुनिक काल के वैज्ञानिकों ने भी अमरता को किसी न किसी रूप में स्वीकार

किया है वही दार्शनिकों में प्लेटो से लेकर कांट और बर्गसां तक, कवियों में साफोक्लीज़ से लेकर गेटे और राबर्ट ब्राउनिंग तक और नैतिक शिक्षकों तथा समाज सुधारकों में सुकरात से लेकर टॉलस्टॉय और महात्मा गांधी तक ने किसी न किसी रूप में अमरता का समर्थन किया है। इस संबंध में Voltaire का कहना है कि "reason agrees with revelation .... that the soul is immortal." इसी प्रकार Thomas Panic का भी मानना है कि "The power Which gave existence is able to continue it is any form.

अमरता में विश्वास के लिए तीसरा कारण सार्वभौमिकता के आधार पर दिया जा सकता है। क्योंकि अमरता के विचार को किसी न किसी रूप में सभी कालों में एक केन्द्रीय विचार के रूप में महत्व दिया जाता रहा है। साथ ही, अधिकांश व्यक्तियों ने इसका समर्थन किया है। कदाचित मनुष्य का अस्तित्व ही कभी भी अमरता के विचार के बिना नहीं रहा है। पृथ्वी पर अपने जीवन के आरंभ से ही मनुष्य संदैव अमरता के विचार से संबंधित रहा है यहां तक कि मनुष्य ने जब भी इससे इन्कार करने का प्रयास किया है तो भी वह उसमें सफल नहीं हुआ है। अर्थात् अमरता का विचार मनुष्य के जीवन का एक अंग बन गया है। हमारी क्षमताएं, हमारे, गुण हमारे विचार आदि सभी वातावरण के प्रतिबिम्ब (reflection) है जिनसे हम अपने को अस्तित्व बनाये रखने (surviaval) के अनुकूल बनाते हैं। जिस प्रकार आंखों की अपेक्षा या आशा प्रकाश है और उससे प्रकाश का अस्तित्व सिद्ध होता है, कानों की आशा ध्वनि है और उससे ध्वनि का अस्तित्व सिद्ध होता है उसी प्रकार हमारी चेतना की अपेक्षा या आशा अमरता है और उससे अमरता को स्वीकार किया जा सकता है।

इमरसन (Emerson) ने अमरता विषयक अपने निबन्ध में अमरता का समर्थन करते हुए ऐसे दो व्यक्तियें का उल्लेख किया है जिन्होंने लम्बे समय तक एक साथ अमरता पर कार्य किया और बाद में एक दुर्घटना के बाद वे अलग हो जाते हैं। और लगभग २५ वर्षों के बादपुनः मिलने पर जब उन्होंने एक दूसरे से अमरता संबंधी समस्या के समाधान हेतु किसी उम्मीद की बात की तो दोनों ने ही इस पर नकारात्मक उत्तर दिया। इस विषय में Emerson का मानना है कि उन दोनों व्यक्तियें का इतने लम्बे समय तक इस समस्या पर करने की प्रेरक शक्ति अमरता ही होनी चाहिए। वास्तव में प्रमाण की आवश्यकता तो दूसरों के लिए होती है। यदि अमरता की प्रेरणा न होती तो इतने लम्बे समय तक इस विषय पर कार्य करना कठिन होता।

मानव अमरता के लिए चौथा विचार प्रस्तुत करते हुए कहा जा सकता है कि मनुष्य की प्रकृति स्वयं अमरता के लिए एक साक्ष्य हे। पृथ्वी पर जीवित रहने के लिए किन चीजों की आवश्यकता है इसके लिए हम किसी भी पशु को देख सकते हैं। क्योंकि पशुओं के भौतिक शरीर, उनके गुण एवं शक्तियाँ उनके वातावरण से उन्हें अनुकूल बनाने के लिए होती है, जबकि पशुओं के विपरीत मनुष्य एक उच्च जीव है और इसमें मानसिक गुण, नैतिक प्रेरणा, आध्यात्मिक आदर्श पाए जाते हैं,। साथ ही, मनुश्य अपने प्रयासों से अपनी इन शक्तियों में विस्तार भी कर सकता है, जो मनुष्य और पशु में एक स्पष्ट अन्तर दिखलाते हैं। यदि मनुष्य का जीवन केवल इस जगत तक ही सीमित रहता है तो उसमें पाई जाने वाली विशेषताओं और विशिष्ट क्षमताओं का क्या महत्व रह जाएगा? इस प्रकार, इस बात को मानने के लिए एक आधार मिल जाता है। कि

मानव जीवन पशुओं के समान केवल इस भौतिक जगत तक ही सीमित नहीं है वरन् किसी न किसी रूप में मृत्यु के बाद भी बना रहता है।

मानवीय अमरता में विश्वास हेतु एक आधाार इस प्रकार भी दिया जा सकता है कि मानव देह और मन में परस्पर समन्वयन की कमी है। यदि मन और देह एक ही जीव (organism) के दो अंग या पक्ष है तो इनमें परस्पर समन्वयन होना चाहिए जबकि ऐसा नहीं है। आरंभ में कुछ समय तक यह कहा जा सकता है कि बचपन में मन और देह में समन्वयन रहता है लेकिन समय के साथ-साथ ये एक दूसरे से दूर होते जाते हैं और एक दूसरे पर हावी होने का प्रयास करते हैं। जहां शरीर का जन्म होता है एक सीमा तक वह विस्तृत होता है, कुछ समय के लिए यह विस्तार रुका रहता है और उसके बाद वह क्षीण होने लगता है और अंततः मृत (समाप्त) हो जाता है। इस प्रकार शरीर के संबंध में एक निश्चित चक्र देखने को मिलता है। जबकि आत्मा के संबंध में ऐसा चक्र दिखलाई नहीं पड़ता। मानव व्यक्तित्व में स्थायित्व (enduring thing) । इस प्रकार, शरीर समय के साथ-साथ क्षीण होता जाता है लेकिन आत्मा समय के साथ अधिक शक्तिशाली और समृद्ध (Stronger and wonderful) होती जाती है। शरीर तो अपने अंत की ओर बढ़ता जाता है परन्तु आत्मा में नवीन शुरूआत की ओर बढ़ने की अन्तः शक्ति है। Victor Hugo ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। Victor Hugo के शब्दों में "for half a century I have been writing my thughts in prose and verse ......but I feel that I have not said a thousandth part of what is in me. "

लगभग ऐसे ही विचार जेम्स मार्टिन्यू (James Martineau) ने अपने अस्सीवें जन्मदिवस पर व्यक्त किये हैं। मार्टिन्यू के शब्दों मे "How small a part of my plans have I been able to carry out! Nothing is so plain as that life at its fullest on earth is just a fragment."

इस प्रकार निश्चित रूप से आत्मा शरीर से भिन्न है। इस कारण आत्मा की नियति शरीर के समान नहीं स्वीकार की जा सकती है। अतः इस तथ्य को स्वीकार करने का आधार मिल जाता है कि शरीर के साथ आत्मा का विनाश नहीं होता है।

इसी कारण से मिलता जुलता एक अन्य कारण हमारे व्यक्तित्व और भौतिक जगत के परस्पर समन्वयन की कमी के आधार पर भी प्रस्तुत किया जा सकता है। हमारे व्यक्तित्व की क्षमताओं और योग्यताओं को भौतिक जगत के उतार चढ़ाव और नियति के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। हम देखते है कि बहुत से महान लोग, जिन्होंने समाज को बहुमूल्य योगदान दिया है समय से पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं जैसे शेली, फिलिप ब्रुक और भारतीय संदर्भ में शंकराचार्य, विवेकानन्द आदि। भौतिक विश्व की घटनाओं से जैसे बाढ़, सूखा, महामारी, भूकम्प में बहुत से लोगों की असमय ही जीवन लीला समाप्त हो जाती है। अतः मानव व्यक्तित्व और भौतिक विश्व में स्पष्टतः समन्वयन अथवा सामजस्य की कमी है अन्यथा ऐसा न होता।

क्या हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि हमारा व्यक्तित्व अपनी अनंत संभावनाओं और क्षमताओं के साथ, भौतिक शक्तियों द्वारा शरीर के नाश होने पर ही नष्ट हो जाएगा? निश्चित

रूप से इसका उत्तर निषेधात्मक होगा। आत्मा, शरीर के समान विनाशी नहीं है क्योंकि यदि दोनों की नियति एक ही होती तो दोनों में परस्पर अधिक सामंजस्य होता।

अमरता के विश्वास को पुष्ट करने का एक आधार विकासात्मक प्रक्रिया के आधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है। हम जानते हैं कि विश्व लाखों वर्षों से चल रही एक ऐसी प्राकृतिक विकासात्मक प्रक्रिया का परिणाम है जो नियमबद्ध है। यदि जिस प्रकार मनुष्य की क्रियाएं बौद्धिक हैं उसी प्रकार इस प्राकृतिक प्रक्रिया को भी बौद्धिक माना जाय तो यह माना जा सकता है कि युगों से लगातार चल रही इस प्रक्रिया का अंतिम लक्ष्य (अंत) स्थायी और मूल्यवान (Worthy) होना चाहिए। प्रश्न है कि यह लक्ष्य क्या है? यह अंतिम लक्ष्य भौतिक जगत नहीं हो सकता क्योंकि हम जानते हैं कि यह भौतिक विश्व उसी मूल अग्नि (Original fire-mist) में विलीन हो जाएगा जहां से इसकी उत्पत्ति हुई है। यह अंतिम लक्ष्य मानवीय कार्य भी नहीं हो सकते जो मानवीय जीवन के साथ ही नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार मानव देह भी अंतिम लक्ष्य नहीं हो सकता जो कि उस पृथ्वी जिस पर वह रहता है, के साथ ही समाप्त हो जाएगा।

किंतु यह बात निश्चित रूप से स्वीकार नहीं की जा सकती एक लम्बी प्रक्रिया के पश्चात हुई मनुष्य पूरी तरह समाप्त हो जाता है। चार्ल्स डार्विन का भी कहना है कि it is an intolerable thought that (man) and all other sentient beings are doomed to complete amnilhilation after such long continued slow process.'

संपूर्ण ब्रहमाण्डीय प्रक्रिया के बौद्धिक या विवेकपूर्ण होने का प्रमाण देने के लिए कम से कम कोई मूल्यवान तत्त्व ऐसा होना चाहिए जो भौतिकता के नष्ट होने के बाद भी शेष हो वह तत्व मानवीय आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जिसे मनुष्य का आध्यात्मिक सार कह सकते हैं, जो मानवीय शरीर के समाप्त होने के बाद भी बना रहता है।

इसी संदर्भ में John Fiske का कहना है कि 'The more we are likely to feel that to deny the everlasting persistence of the spiritual element in man is to rob the whole process of its meaning. It goes far toward putting us to permanent intellectual confusion.' ये कथन उन्हें उनके निर्णायक तथ्य पर पहुंचाता है। 'I believe in the immortality of the soul as a supereme act of faith in the resonableness of God's work.'

अमरता के पक्ष में एक कारण ऊर्जा संरक्षण के सिद्धांत के आधार पर दिया जाता है। इस सिद्धांत का सार यह है कि ब्रहमांड की कोई भी ऊर्जा पूरी तरह के समाप्त नहीं होती अर्थात् सभी ऊर्जा संरक्षित होती है। अधिक से अधिक ऊर्जा के स्वरूप में परिवर्तन किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, न तो ऊर्जा को उत्पन्न किया जा सकता है न ही इसे नष्ट किया जा सकता है। संक्षेप में ब्रहमांड की कुल ऊर्जा का योग सदैव एक ही रहता है। यदि इस सिद्धांत को भौतिक जगत के समान आध्यात्मिक जगत में भी लागू किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार यह स्वीकार करना असंभव है कि भौतिक ऊर्जा उत्पन्न और नष्ट होती है अर्थात अस्तित्व में आती है और उसका अस्तित्व समाप्त होता है। उसी प्रकार आध्यात्मिक, नैतिक एवं

बौद्धिक ऊर्जा की उत्पत्ति और विनाश भी असंभव है। जिस प्रकार यह कहना हास्यास्पद है कि कोई भी ऊष्मा ठंड (शीत) के प्रभाव से नष्ट हो जाती है उसी प्रकार यह कहना भी हास्यास्पद होगा कि मृत्यु के साथ मनुष्य भी पूरी तरह समाप्त हो जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि विज्ञान के द्वारा खोजा गया ऊर्जा संरक्षण का सिद्धांत धर्म के अमरता के सिद्धांत के समान है।

अमरता में विश्वास को दृढ़ करने का एक विचार मूल्यों के आधार पर प्रस्तुत करते हुए कहा जा सकता है कि महत्वपूर्ण जीवन के मूल्य मनुष्य में ही पाए जाते हैं। विश्व वैसा नही है जैसा हम इसे निरपेक्ष रूप से देखते हैं वरन् विश्व वैसा है जैसा हम अपनी आंतरिक सृजनात्मक शक्तियों से इसे बनाते हैं। ब्रहमांड में सूर्य और तारें हैं, आकाश छूती ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ हैं, तीव्र वेग से प्रवाहित होते नदियां और सागर हैं, पक्षियों के मधुर गीत हैं। किंतु इन सभी चीजों का मनुष्य के बिना कोई महतव नही है जो इन चीजों को देखकर, सुनकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है पक्षियों के लिए तारों का, पशुओं के लिए ऊँची-ऊँची पर्वत श्रृंखलाओं का क्या महत्तव हो सकता है? यह तो मनुष्य ही है जो कोयल की मधुर ध्वनि को सुनता है, विश्व की आश्चर्यचकित कर देने वाली घटनाओं और कृतियों का अनुभव करता है। संक्षेप में विश्व की सभी महत्त्वपूर्ण वस्तुएं उनके सौंद्रर्य, उनके आश्चर्यजनक स्वरूप और उनके अर्थ मनुष्य के संदर्भ में ही सार्थक कहे जा सकते हैं क्योंकि वे वास्तव में मनुष्य के द्वारा मनुष्य के लिए और मनुष्य में ही हैं। इस प्रकार मनुष्य ही विश्व को सार्थकता प्रदान करता है अतः यह निष्कर्ष निकालना तर्कसंगत नहीं लगता कि जो विश्व को मूल्य या महत्ता प्रदान करता है वही नष्ट हो जाता है।

सत्य तो यह है कि मनुष्य के बिना विश्व का ज्ञान ही संभव नहीं है। क्योंकि इस विश्व का बोध तो मानव बुद्धि ही कराती है। यदि मानव ही न हो तो विश्व के बारे में जानकारी कैसे होगी।

व्यवहारिक दृष्टिकोण भी अमरता में हमारे विश्वास को पुष्ट करता है। यह मानवीय आत्मा ही है जो ज्ञान, सत्य, शुभ और सौंद्रर्य जैसे शाश्वत मूल्यों की अनुभूति करती है। व्यवहारिक दृष्टिकोण का सार यह है कि जो चीजें हमारे जीवन में वृद्धि करती हैं, वे ही हमारे लिए उपयोगी हैं। और जो उपयोगी हैं वहीं हमारे लिए सत्य है। इसके विपरीत जो चीजें जीवन को हानि पहुँचाती है उनकी वृद्धि में बाधक है, वे अनुपयोगी हैं और जो अनुपयोगी है, वह हमारे लिए सत्य नहीं हो सकता। अमरता के विचार में विश्वास हमारे लिए कितना उपयोगी और सार्थक है यह कहना कठिन नहीं हैं। अमरता में विश्वास व्यक्ति को ऊर्जा प्रदान करता है उसे आशावान बनाता है जिससे वह जीवन में बहुत कुछ अर्जित करने का प्रयास करता है। जबकि अमरता में विश्वास न करने पर तो व्यक्ति घोर निराशा का शिकार हो जाता है।

इस प्रकार अमरता में विश्वास भावी जीवन के लिए ही नहीं वरन् वर्तमान जीवन के लिए भी उपयोगी है। इस विश्वास से प्रेरित होकर व्यक्ति अनेक गुण अथक योग्याएं अर्जित करता है। उसका जीवन स्तर ऊपर उठता है। डॉ० फॉसडिक का मानना है कि वह अमरता में विश्वास इसलिए करते हैं कि अमरता में विश्वास से जीवन स्तर उन्नत होता है। Dr. Fosdick के शब्दों में 'Immortality makes great living,' therefore I believe in immorlatity.'

अमरता में विश्वास करने के अनेक कारण है। जिनमें से उपर्युक्त दस वैचारिक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं जो एक सीमा तक विश्वसनीय जान पड़ते हैं। वस्तुतः अमरता जैसा विचार जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, तर्कों के द्वारा सिद्ध अथवा असिद्ध नहीं किया जा सकता बल्कि यह तो आस्था का विषय है। यदि हमारी इस बात में आस्था है कि विश्व किसी सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, पूर्ण, शुभ और हमसे प्रेम करने वाली सत्ता के द्वारा रचित है। और विश्व में नैतिकता और नैतिक नियम कार्य कर रहे हैं.तो निश्चित ही यह स्वीकार करना पड़ता है कि मनुष्य का अंत उसकी मृत्यु के साथ ही नहीं हो जाता है, वरन्, सीमित अर्थ में ही सही, हम अमरता को स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते। आस्था के आधार पर ही जेम्स मार्टिन्यू का कहना है कि हम अमरता पर इसलिए विश्वास नहीं करते कि हम इसे सिद्ध करते हैं, बल्कि हम अमरता को सदैव सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, क्योंकि हम इसमें विश्वास करते हैं। मार्टिन्यू के शब्दों में 'We do not believe immortality because we have proved it, but we forever try to prove it because we believe it.'

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. C.D. Broad, The Mind and its place in nature,
(London : Routledge & Kegan Paul Ltd, 1925 and New York : Humanities Press
2. P. Jannet & G. Seailles, History of Problem of Philesophy. Vol. II
3. A. Flew (ed.), Body, Mind and Death, The Macmillan Company, New York.
4. James H. Leuba, The Belief in God and Immortality, Open Court Company, (London)
5. Immanuel Kant, Critque of Pure Reason, (Ed) Lewis White beck, (London), The University of Chicago Press, Chicago.
6. Immanuel Kant, Critique of Practical Reason. (Ed) Lewis White Beck The University of Chicago Press, Chicago.
7. Edward Caird, The critical Philosophy of Immanuel Kant, Kraus print Co. New York 1968.
8. Immanuel Kant, Groundwork of the metaphysics of morals.
9. Hastings Rashdall, The Moral Argument for Personal Immortality. W.R. Matthews (ed.)
10. Carliss Lamont, The Illusions of Immortality, (London : Watts, New York : Putnam 1935)
11. Bertrand Russell, Why I am not a Christian and Other Essays, (London : Allen & Unwin, New York : Simon & Schuster, 1957 paperback)
12. H.H. Price; "Survival and the Idea of Another World", Proceedings of the society for Psychical Research, 1953.
13. A Flew, A New Approach to Psychical Research, (London : Watts 1953)
14. C.J. Ducasse, What would canstitute conclusive Evidence for survival ?
15. A.E. Tylor, The Christion Hope of Immortality (London : Unicorn Press 1938)
16. R.W.K. Patterson, Philosophy and Belief in a Life after Death.
17. Edward & Pap, Modern Introduction to Philosophy.
18. Paul and Linda Badham, Immortality or Extinction, The Macmillan Company New York.
19. Antony Flew, Reading in Philosophical Problems of Parasychology, Prometherus Books Buffala, New York.
20. C.D. Broad, Lectures on Psychical Research, Routledge & Kegan Paul, London, The Humanities Press. New York.

21. Charles J Caes, Beyond Time,
22. Douglas P. Lackey God, Immortality, Ethics : A concise Introduction to philosophy. Wordsworth publishing Company, California.
23. Joseph Butler, The anoalogy of Religion, (London 1736), Part I
24. William James, Human Immortality, (Boston and New York 1898)
25. F.W.H. Myers, Human Personality and its survivel of Bodily Death, (London and New York, 1903)
26. सभाजीत मिश्र कांट का दर्शन, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ
27. वेद प्रकाश वर्मा, धर्म दर्शन की मूल समस्याएं, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
28. तुलनात्मक धर्म दर्शन, याकूब मसीह, मोती लाल बनारसीदास, वाराणसी
29. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर
30. A Frank Thilly, A History of Philosophy, Central Publishing House, Allahabad.
31. Russell, Our knowledge of the External world, George Allen and Univin, London, 1914
32. C.D. Broad, five Types of Ethical Theory.
33. Pheado, Plato
34. Pheadrus plato
35. Republic, plato
36. Meno, Plato
37. डॉ दयाकृष्ण पाश्चात्य दर्शन का इतिहास I & II,राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, नई दिल्ली
38. डॉ0 दयाकृष्ण, पाश्चात्य दर्शन का इतिहास I & II, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
39. Nic. Ethics, Aristotle
40. Leibnitz, Principle of Nature and of Grace, 14
41. G.W. Leibnitz, Philosophische sohnften vol 4. ed (J. Gerhrad) (Hildesheim, oims (1960)
42. R. Descartas, Discourse on Method (London ; J. M. Dent, 1912)
43. G. Berkeley, The Principles of Human Knowledge (London Nelson, 1949)
44. J. Steavenson, Twenty cases of Reincanation.

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय छायावादोत्तर हिन्दी कविता का दार्शनिक और वैचारिक अनुशीलन है। इस शोध प्रबन्ध की रचना का उद्देश्य छायावादोत्तर हिन्दी कविता पर प्राच्य और पाश्चात्य दार्शनिक चिन्तन के प्रभाव का विवेचन और मूल्यांकन है। जिस प्रकार बीसवीं शताब्दी के योरोपीय साहित्य में दर्शन की झलक दिखाई पड़ती है। उसी प्रकार बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध (1936 और उसके बाद) के हिन्दी कविता और साहित्य में विभिन्न पाश्चात्य दार्शनिक विचारधाराओं की अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुतः इस काल की कविता यह रेखांकित करती है कि साहित्य न केवल अपने युग के समाज का बल्कि अपने समसामयिक दार्शनिक अनुशीलन का भी जीवन्त दर्पण होता है। वस्तुतः किसी भी युग का साहित्य अपने धर्म, विज्ञान, और समाज के साथ–साथ दार्शनिक अथवा तत्व मीमांसा चिन्तन के घात प्रतिघात से प्रभावित होता है। अतः इस आलोक में यह सहज जिज्ञासा का विषय है कि हिन्दी साहित्य को किस प्रकार और किस सीमा तक इस युग के दार्शनिक अनुशीलन ने प्रभावित किया। ऐसा प्रतीत होता है। जिस प्रकार युगानुरूप समाज को नवीन कविता की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार समय परिवर्तन के साथ–साथ प्रत्येक साहित्य के मार्ग दर्शन हेतु दार्शनिक चिन्तन और तत्व विज्ञान की भी आवश्यकता होती है। यह मान्यता केवल हिन्दी साहित्य और कविता के सन्दर्भ में ही नहीं प्रायः हर एक साहित्य के सम्बन्ध में सार्थक है। योरोप के प्रायः सभी अस्तित्ववादी दार्शनिक साहित्यकार थे। उन्होंने अपने दार्शनिक चिन्तन को उपन्यासों, कहानियों और कविता के माध्यम से ही प्रस्तुत किया। यह परम्परा पश्चिम में किर्केगार्ड के समय से ही प्रारम्भ हो गई थी। किर्केगार्ड ने 'एडिफाइंग डिस्कर्सेस में विभिन्न प्रकार के पात्रों के माध्यम से दार्शनिक चिन्तन को अभिव्यक्त किया है। इसी प्रकार नीत्शे ने 'दि ज्वाय फुल विजडम' शीर्षक से रचित लम्बी कविता में ईश्वर की मृत्यु का समाचार नाटकीय ढंग से वर्णित किया है। इसके अतिरिक्त 'दि बर्थ आफ ट्रेजडी', 'ओडिपस', 'नौसिया', आदि साहित्यिक रचनायें है जिनमें साहित्य के माध्यम से दार्शनिक चिन्तन सैद्धान्तिक दर्शन की तुलना में अधिक प्रभावोत्पादक रहा है। इसी प्रकार अधुनातन हिन्दी साहित्य में सामाजिक और ऐतिहासिक परम्परा के बाद मनोवैज्ञानिकता का प्रभाव रहा है। इसके पीछे फ्रायड, एडलर और जुंग की विचार धारा का प्रभाव रहा है। जैनेन्द्र कुमार, और